राजकमल अमर साहित्य—४

महाकवि प्रवरसेन कृत

सेतुबन्ध

भूमिका और अनुवाद

डॉ० रघुवंश

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

निवेदन

कसी काव्यकृति का अनुवाद आसान काम नहीं है । किसी काव्यात्मक भाव अथवा कल्पना को किसी प्रकार दूसरी भाषा के माध्यम से व्यक्त कर देना दूसरी बात है, पर उस काव्यात्मक अभिव्यक्ति को यथावत् बिना कवि की कल्पना को खंडित किये प्रस्तुत कर सकना बिल्कुल भिन्न बात है । संस्कृत अथवा प्राकृत के काव्य का हिन्दी में अनुवाद करना एक दृष्टि से और भी कठिन है । इन भाषाओं की समासपद्धति इनके काव्य की चित्रमय शैली के बहुत अनुकूल है । प्रायः सम्पूर्ण समास-पद विशेषण के समान वाक्यांश होता है जिसमें सम्पूर्ण चित्र का एक अंश अंकित होता है और इन्हीं विभिन्न चित्र-खंडों से पूरा चित्र बनता है । यदि इन चित्र-खंडों को अलग-अलग रख दिया जाय तो सारा काव्य-सौन्दर्य ही बिखर जायगा । हिन्दी की प्रकृति समास-पद्धति के बिल्कुल विपरीत है । इसके अतिरिक्त हिन्दी में विशेषण वाक्यांशों का प्रयोग अधिक नहीं चल पाता । यदि विशेषण वाक्य रखे जायँ तो भी भाषा में 'जो' 'जिनका' 'जिसका' आदि के प्रयोग से प्रवाह बाधित होता है । परिणाम है कि अनुवादक के सामने दुहरी कठिनाई है, एक ओर काव्यचित्रों के खंडित और भंग होने का डर है तो दूसरी ओर भाषा के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने की चिन्ता है ।

मैंने 'सेतुबंध' के अनुवाद में इसी समस्या का सामना किया है । बहुत विचार करके भी मैं काव्य-चित्रों के मोह को नहीं छोड़ सका, मुझे लगा कि काव्य के अनुवाद में कवि की कल्पना और उसके चित्रों की रक्षा ही अधिक महत्वपूर्ण है । यद्यपि मेरा यह प्रयत्न रहा है कि इसके साथ ही भाषा के प्रवाह की रक्षा भी हो सके, पर मैं मानता हूँ कि सदा

ऐसा नहीं कर सका हूँ । अनेक स्थलों पर भाषा कुछ लड़खड़ा गई है, विशेषण वाक्यों में उलझाव आ गया है। पर मैंने सदा ही यह प्रयत्न किया है कि कवि का चित्र खंडित न होने पाये। संभव है कि मुझसे अधिक अच्छा सामंजस्य किसी प्रतिभाशील लेखक के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता। पर उसकी आशा और प्रतीक्षा में मैं जो इस कार्य को स्थगित नहीं रख सका, उसका एक मात्र कारण है इस काव्य का सौन्दर्य जो मुझे इस प्रकार अभिभूत करता रहा है कि मैं इस लोभ को अधिक संवरण नहीं कर सका। इससे अधिक मेरा दोष इस विषय में नहीं है।

अनुवाद के साथ एक भूमिका भी जोड़ दी गई है। पहले इच्छा थी कि इसके माध्यम से उस युग का एक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करूँगा, पर अन्ततः केवल सामग्री का विभाजन और अध्ययन भर कर सका हूँ। इस कार्य में रामप्रिय देवाचार्य जी से जो यत्किंचित सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं 'राजकमल प्रकाशन' का व्यक्तिगत रूप से आभारी हूँ, क्योंकि उनके प्रयत्न से इसका प्रकाशन सम्भव हो सका।

—रघुवंश

जिनसे

मुझे यह विश्वास मिला है—

ज्ञान के क्षेत्र का प्रत्येक प्रयत्न

भविष्य की सम्भावनाओं की

पीठिका मात्र है—

उन

उच्चाशय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को

सादर

समर्पित।

अध्याय-सूची

भूमिका : रचयिता का व्यक्तित्व—सेतुबन्ध की कथा का विस्तार—सेतुबन्ध की कथा का आधार—सेतुबन्ध के चरित्र और उनका व्यक्तित्व, कथोपकथन—भावात्मक परिस्थितियाँ तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति—सेतुबन्ध में प्रकृति—रस, अलंकार और छन्द—सांस्कृतिक सन्दर्भ १-६५

प्रथम आश्वास : विष्णु-वन्दना—शंकर-वन्दना—काव्य-परिचय—कथारम्भ—शरदागमन—हनूमान-आगमन—लंकाभियान के लिए प्रस्थान—यात्रा-वर्णन ६६-१०८

द्वितीय आश्वास : सागर-दर्शन—उसका प्रभाव १०६-११४

तृतीय आश्वास : सुग्रीव का प्रोत्साहन—सुग्रीव का आत्मोत्साह ११५-१२३

चतुर्थ आश्वास : वानर सैन्य में उल्लास और उत्साह—जाम्बवान की शिक्षा—राम की वीर वाणी—विभीषण का अभिषेक १२४-१३२

पंचम आश्वास : राम की व्यथा और प्रभात—राम का रोष और धनुषारोप—रामबाण से विक्षुब्ध सागर १३३-१४३

षष्ठ आश्वास : सागर का प्रवेश—सागर की याचना—वानर सैन्य का प्रस्थान—पर्वतोत्पाटन का प्रारम्भ—उत्पाटन के समय का दृश्य—उखाड़े हुए पर्वतों का चित्रण—कपि सैन्य का प्रत्यावर्तन १४४-१५५

सप्तम आश्वास : सेतु-निर्माण का प्रारम्भ—निर्माण के समय सागर का दृश्य—सागर में गिरते हुए पर्वतों का चित्रण १५६-१६५

अष्टम आश्वास : कपि सैन्य का कार्य-विरत होना तथा समुद्र का विश्राम—सुग्रीव की चिता और नल का वीरदर्प—सेतु-निर्माण की प्रक्रिया—बनते हुए सेतु-पथ का दृश्य

—सम्पूर्ण सेतु का रूप—वानर सैन्य का प्रस्थान और सुवेल पर डेरा १६६-१७६
नवम आश्वास : सुवेल दर्शन—सुवेल का आदर्श सौन्दर्य —पर्वतीय वनों के दृश्य १८०-१६१
दशम आश्वास : सूर्यास्त—अंधकार-प्रवेश—चंद्रोदय—निशाचरियों का संभोग वर्णन १६२-२०१
एकादश आश्वास : रावण की काम व्यथा—रावण के मन में तर्क-वितर्क—सीता की विरहावस्था—माया जनित राम-शीश को देखकर सीता की दशा—सीता का विलाप —त्रिजटा का आश्वासन देना—सीता का पुनः विलाप और त्रिजटा का आश्वासन—सीता का विश्वास २०२-२१८
द्वादश आश्वास : प्रातःकाल—युद्ध के लिए राम का प्रस्थान —वानर सैन्य भी चल पड़ा—राक्षस सैन्य की रण के लिए तैयारी—दोनों सैन्यों का उत्साह २१६-२३२
त्रयोदश आश्वास : आक्रमण : युद्ध का आरम्भ—युद्ध का आरोह—युद्ध का आवेग—द्वन्द्व-युद्ध २३३-२४६
चतुर्दश अश्वास : राम द्वारा राक्षस सैन्य-संहार—नागपाश का बन्धन—वानर सेना की व्याकुलता—राम की निराशा, सुग्रीव का वीरदर्प, और गरुड़ का प्रवेश—धूम्राक्ष तथा अन्य सेनापतियों का निधन २४७-२५७
पंचदश आश्वास : रावण रणभूमि-प्रवेश—कुम्भकर्ण की रणयात्रा—मेघनाद का प्रवेश—मेघनाद-वध तथा रावण का रण-प्रवेश—इन्द्र की सहायता—लक्ष्मण का निवेदन —युद्ध का अन्तिम आरम्भ—युद्ध का अन्तिम प्रकोप—विभीषण की वेदना—राम-सीता-मिलन तथा अयोध्या-आगमन। २५८-२६६

भूमिका

रचयिता का व्यक्तित्व

'सेतुबन्ध' का 'दशमुखवध' तथा 'रामसेतु' के नाम से भी उल्लेख किया जाता है। 'रामसेतु' नाम का उल्लेख रामदास भूपति की टीका के प्रारम्भिक छंदों में है :—

तद्व्याख्या सौष्ठवार्थं परिषदि कुरुते रामदासः स एव ।
ग्रन्थं जल्लालदीन्द्रक्षितिपतिवचसा रामसेतुप्रदीपम् ॥

इसका उल्लेख अलवर के केटलॉग में भी है। 'रावणवध' तो प्रचलित नाम है जिसका उल्लेख 'अपरनाम' के रूप में हुआ है। 'सेतु-बन्ध' के लेखक की स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। वैसे संस्कृत के अन्य कई कवियों के सम्बन्ध में भी हमको बहुत अधिक ज्ञात नहीं है। कवि-गुरु कालिदास के बारे में अभी तक बहुत निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता के सम्बन्ध में एक उलझन और है। इस महाकाव्य के रचयिता के रूप में प्रवरसेन तथा कालिदास दोनों का नाम लिया जाता है।

'सेतुबन्ध' के व्याख्याकार रामदास भूपति ने कालिदास को इसका रचयिता माना है :—

धीराणां काव्यचर्चाचतुरिमविषये विक्रमादित्यवाचा ।
यं चक्रे कालिदासः कविकुमुदविधुः सेतुनामप्रबन्धम् ॥

आगे स्पष्ट शब्दों में वह फिर मंगलाचरण को प्रस्तुत करते हुए कहता है—'कविचक्रचूडामणिः कालिदास महाशयः सेतुबन्धप्रबन्धं चिकीर्षुः।' रामदास का समय १६५२ वि० अथवा १५६२ ई० है। 'सेतु-बन्ध' की कई प्राचीन प्रतियों के कतिपय आश्वासों के अन्त में कालि-

दास का कथाकार के रूप में निर्देश किया गया है । परन्तु इन प्रतियों में प्रवरसेन का नाम भी है, जब कि शेष प्रतियों में केवल प्रवरसेन का नाम है ।[१] इस स्थिति में यह तो निश्चित है कि 'सेतुबन्ध' का रचयिता प्रवरसेन सर्वमान्य है, पर कालिदास के नाम से यह भ्रम सम्भव हो सका है कि यह महाकाव्य कालिदास की रचना है और कालिदास ने प्रवरसेन को समर्पित कर दिया है; अथवा कालिदास तथा प्रवरसेन दोनों ने मिल कर इसकी रचना की है या कालिदास ने प्रवरसेन को इसकी रचना में सहायता दी है । इस तीसरी संभावना के लिये सेतुबन्ध के छंद १ : ९ को अन्तर्साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर इसमें ऐसा अर्थ नहीं है । इसमें केवल यह कहा गया है कि रचना में बाद में संशोधन और सुधार किये गये हैं । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह कार्य कालिदास ने किया । पर कवि स्वतः भी यह कार्य कर सकता है ।

डॉ० राम जी उपाध्याय ने अपनी थीसिस 'प्राकृत महाकाव्यों का अध्ययन' में रामदास भूपति के इस भ्रम के सम्बन्ध में कहा है—'कि वह सम्भवतः 'कुन्तलेश्वरदौत्य' पर आधारित भ्रामक परम्परा से प्रभावित हुआ है । क्षेमेन्द्र के अनुसार इसकी रचना कालिदास ने विक्रमादित्य द्वारा प्रवरसेन के पास दूत रूप में भेजे जाने के बाद की है । और प्रवरसेन तथा कालिदास की यह मित्रता इस भ्रम का मूल कारण हो गई होगी ।' इस तर्क में बल है । क्योंकि यदि कालिदास और प्रवरसेन में इस प्रकार का सम्बन्ध होता तो पहले किसी संदर्भ में इसका उल्लेख होना चाहिए था । परन्तु इसके विपरीत जिन स्थलों पर 'सेतुबन्ध' का उल्लेख हुआ है वहाँ प्रवरसेन के साथ कालिदास का बिल्कुल नाम नहीं लिया गया है । दण्डी के 'काव्यादर्श' से तो केवल यह सूचना मिलती है :—

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः ।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम् ।। १ : ३४ ।।

इसमें कवि का उल्लेख नहीं किया गया है । बाण 'सेतुबन्ध' के

---

१ डॉ० राम जी उपाध्याय की थीसिस के आधार पर ।

रचना काल से बहुत दूर नहीं पड़ते हैं और यदि इस महान रचना से कालिदास का किसी प्रकार का सम्बन्ध होता तो वह कालिदास का उल्लेख करना भूल नहीं सकते थे। यदि उनके समय तक यह बात भी प्रचलित होती कि कालिदास ने रचना करके प्रवरसेन को समर्पित कर दी है तब बाण प्रवरसेन की इन शब्दों में प्रशंसा न करते :—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ हर्षचरित ॥

बाण के बाद क्षेमेन्द्र ने 'औचित्याविचार चर्चा' में 'सेतुबन्ध' के रचयिता के रूप में प्रवरसेन को स्वीकार किया है।

इन संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रवरसेन के साथ कालिदास का नाम बाद में जोड़ा गया है और यह किसी भ्रम पर आधारित है। इस सम्बन्ध में डॉ० उपाध्याय का यह सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि संभवतः कालिदास नामक कोई व्यक्ति प्रवरसेन के महाकाव्य का लिपिकार रहा होगा और इसी रूप से धीरे-धीरे इस भ्रम की उत्पत्ति हुई। महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी ने इस तथ्य की ओर ध्यान भी आकर्षित किया है कि प्रवरसेन द्वितीय के पट्टन के ताम्र लेख में उसके लेखक का नाम कालिदास दिया गया है। बाद की प्रतियों के लिपिकारों ने कालिदास लिपिकार को रचयिता होने की गरिमा प्रदान की होगी और क्योंकि यह उत्कृष्ट काव्य है, बाद में इस कालिदास को महाकवि कालिदास से अभिन्न मान लिया गया। यदि कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन स्वीकार किया जाय तो वह प्रवरसेन के समसामयिक भी ठहरते हैं। और इनके इस प्रकार समसामयिक होने पर इस भ्रम को और भी अधिक पुष्टि मिल गई होगी। परन्तु समकालीन मान लेने पर इस बात की सम्भावना को बिल्कुल निराधार नहीं माना जा सकता कि प्रवरसेन के इस महाकाव्य का संशोधन कालिदास ने किया था क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय तथा चन्द्रगुप्त का अत्यंत घनिष्ट सम्बन्ध इतिहास-सिद्ध है। डॉ० अल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'वाकाटक-गुप्त

एज' में इस संभावना की ओर संकेत किया है। रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी प्रभावती ने अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के संरक्षण में राज्य का कार्यभार संभाला। उस समय उसके दोनों पुत्र दिवाकर सेन तथा दामोदर सेन (बाद में राजा होने पर प्रवरसेन) छोटे थे, इनकी शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख समुद्रगुप्त ने की थी। ऐसी स्थिति मे यह असंभव नहीं कि कालिदास प्रवरसेन के काव्य-शिक्षक रहे हों।

परन्तु अन्य अनेक ऐसे तर्क हैं जिनके द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि कालिदास प्रवरसेन के महाकाव्य को संशोधित करने की स्थिति में नहीं थे। कालिदास का क्षेत्र प्राकृत नहीं है और प्रवरसेन का महाराष्ट्री प्राकृत पर पूर्ण अधिकार है। 'सेतुबन्ध' कालिदास के महाकाव्यों के टक्कर का महाकाव्य है, उसके रचयिता को कालिदास से संशोधन करवाने की क्या आवश्यकता हो सकती है ? विचारों, कल्पनाओं तथा उद्भावनाओं की दृष्टि से दोनों कवियों के क्षेत्र नितान्त भिन्न हैं। इनकी समता केवल प्रतिभा सम्बन्धी है। कालिदास सामान्यतः कोमल कल्पना के सौन्दर्य के कवि हैं, प्रवरसेन प्रायः विराट कल्पना के सौन्दर्य के कवि। 'सेतुबन्ध' में अलंकृत शैली का अधिक प्रयोग हुआ है।

इतिहास में प्रवरसेन नाम के चार राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख है। इनमें से दो काश्मीर के इस नाम के राजा हैं और दो दक्षिण के वाकाटक वंश के राजा हैं। काश्मीर के राजाओं के सम्बन्ध में कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' की तीसरी तरंग में उल्लेख है। पहले प्रवरसेन का समय ईसा की प्रथम शताब्दी (राज० ३ : ९६-१०१) और दूसरे प्रवरसेन का समय दूसरी शताब्दी ठहरता है (राज० ३ : १०९-१२५)। रामदास भूपति के 'रामसेतु प्रदीप' के अनुसार प्रवरसेन निमित्त महाराजाधिराज विक्रमादित्य की आज्ञा से कालिदास ने इसकी रचना की है। इस पर हम पहले विचार कर चुके हैं। पर रामदास की इस बात से

काश्मीर के द्वितीय प्रवरसेन का संकेत अधिक मिलता है, क्योंकि यही प्रवरसेन विक्रमादित्य के समाकालीन ठहरते हैं। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है। परन्तु विक्रमादित्य के राज्य के समय राजतरंगिणी के अनुसार प्रवरसेन तीर्थयात्रा के लिये गया हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद मातृगुप्त ने काश्मीर मण्डल छोड़ा है और तभी प्रवरसेन ने काश्मीर का राज्य प्राप्त किया। इस प्रकार यह बात सिद्ध नहीं होती और काश्मीर के प्रवरसेन से 'सेतुबन्ध' का सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं जान पड़ता।

वाकाटक वंश में भी दो प्रवरसेन हुए हैं। डॉ० अल्तेकर के अनुसार इस वंश के आदि पुरुष विन्ध्यशक्ति का नाम व्यक्तिवाची न होकर उपाधिसूचक है। वाकाटकों का कार्यक्षेत्र इन्होंने बुन्देलखण्ड अथवा आन्ध्र न मानकर विदिशा और विदर्भ माना है। विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रवरसेन प्रथम ने २७५ ई० से ३३५ ई० तक शासन किया। इस वंश में केवल यही राजा है जिसने सम्राट की उपाधि धारण की है और इसी ने वाकाटक राज्य को समस्त दक्षिण में विस्तार दिया। इसके बाद रुद्रसेन प्रथम ने अपने पितृव्य का स्थान ग्रहण किया (३३५ ई० से ३६० ई०) और फिर उसके पुत्र पृथ्वीसेन प्रथम ने ३६० ई० से ३८५ ई० तक राज्य किया। इसी के समय कुन्तल (दक्षिणी महाराष्ट्र) वाकाटक राज्य में मिलाया गया। यद्यपि अब यह माना जाता है कि कुन्तल राज्य को वाकाटक वंश की दूसरी शाखा के विन्ध्यसेन ने पराजित किया था, पर इस वंश के प्रमुख होने के नाते पृथ्वीसेन को कुन्तलेश कहा गया है। पृथ्वीसेन के समय में ही राजकुमार रुद्रसेन द्वितीय से गुप्तसम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती का विवाह हो चुका था। इस प्रकार वाकाटक तथा गुप्त शक्ति का सहयोग हो गया था। रुद्रसेन द्वितीय केवल ५ वर्ष राज्य कर सका और उसकी मृत्यु के साथ प्रभावती ने अपने पिता के संरक्षण में राज्य का भार सँभाला। सन् ४१० ई० में प्रभावती के द्वितीय पुत्र ने प्रवरसेन द्वितीय के नाम से राज्य-भार सँभाला, और उसका

राज्यकाल ४४० ई० तक रहा। इस बीच किसी युद्ध का उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि प्रवरसेन द्वितीय का राज्यकाल शान्तिपूर्ण था और उसको साहित्य तथा कला प्रेम के लिये समय मिल सका होगा।[1]

वस्तुतः यही प्रवरसेन द्वितीय 'सेतुबन्ध' का रचयिता माना जा सकता है। रामटेक के रामस्वामी का इस वंश में अत्यधिक सम्मान था। इस वंश पर वैष्णव धर्म का प्रभाव अधिक था। प्रवरसेन ने वैष्णव होने के नाते विष्णु के अवतार के रूप में राम की कथा को अपने महाकाव्य का विषय बनाया है। आगे के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि 'सेतुबन्ध' में विष्णु और उनके अवतारों का अत्यधिक महत्त्व है। जितनी पौराणिक कल्पनाएँ हैं वे प्रायः विष्णु के किसी न किसी अवतार से सम्बद्ध हैं। यहाँ तक कि सूर्य तथा यम का सम्बन्ध विष्णु से स्थापित किया जा सकता है। इन पौराणिक कथाओं के विकास, तथा इस महाकाव्य में चित्रित सांस्कृतिक वर्णनों से भी यही सिद्ध होता है कि इसकी रचना लगभग ५वीं शताब्दी में ही सम्भव हो सकती है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य का वातावरण बाण की रचनाओं के अधिक निकट है।

इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य के कथानक तथा शैली के निर्वाह से भी यही सिद्ध होता है कि इसकी रचना कालिदास के बाद तथा अन्य

---

१ कृष्ण कवि ने अपने 'भरत चरित' में प्रवरसेन को 'कुंतलेश' कहा है:—
जलाशयस्यान्तर्गाढमार्गम्,
अलब्ध रन्ध्रं गिरिचौर्यवृत्या।
लोकेथलं कान्तमपूर्वसेतुं
बबन्ध कीर्त्या सह कुन्तेलशः॥ १ : ४॥ और द्वितीय प्रवरसेन ही 'कुन्तलेश' कहे जा सकते हैं।

संस्कृत के महाकाव्यों के पूर्व हुई होगी। प्रकृति चित्रण की शैली से भी यही सिद्ध होता है। इसमें प्रकृति का जो रूप उपस्थित किया गया है, उससे स्पष्टतः यह जान पड़ता है कि इसका रचयिता दक्षिण का है, उत्तर का नहीं। इस प्रकार वाकाटक वंश के प्रवरसेन द्वितीय को 'सेतुबन्ध' का वास्तविक रचयिता मानने की ओर ही तर्क हमको ले जाते हैं।[1]

सेतुबन्ध की कथा का विस्तार

प्रथम आश्वास : 'सेतुबन्ध' में मंगलाचरण के रूप विष्णु तथा शिव की स्तुति की गई है (१-८)। इसके बाद कथा-निर्वाह की कठिनाई का उल्लेख (९), काव्य का माहात्म्य (१०), काव्य-निर्वाह की दुष्करता (११), कथा का संकेत (१२) है। मुख्य कथा का प्रारम्भ इस सूचना से होता है कि राम ने बालि का वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और वर्षा-काल बीत चुका है। राम ने वर्षा-ऋतु को निष्क्रियता की स्थिति में क्लेशपूर्वक बिताया है (१३-१५)। शरद ऋतु का आरम्भ नवीन प्रेरणा के रूप में होता है, शरद का चित्रमय वर्णन (१७-३४) है। हनूमान को गये अधिक दिन हो जाने के कारण राम सीता-वियोग में दुःखी हैं (३५), हनूमान वापस आते हैं (३६), वे समाचार तथा मणि प्रदान करते हैं (३७-३९)। राम सीता की स्मृति से रोमांचित होते हैं, पर क्रुद्ध भी (रावण के प्रति) होते हैं (४०-४५), और अपने धनुष पर दृष्टि-पात करते हैं, इससे सुग्रीव को संतोष होता है (४६-४७)। लंकाभियान की भावना से राम की दृष्टि लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनूमान पर पड़ी (४८)। तदन्तर राम सेना सहित लंकाभियान के लिए यात्रा करते हैं और विन्ध्य, सह्य पर्वतों को पार करते हुए दक्षिण सागर-तट पर पहुँच जाते हैं (४९-६५)।

द्वितीय आश्वास : राम अपने सामने फैले हुए विराट सागर के अद्भुत सौन्दर्य को देखते हैं (१) और इसी रूप में सागर का वर्णन किया जाता है। सभी सागर को देख रहे हैं (२-३६)। सागर-दर्शन

---

१ इन समस्त तर्कों की स्थिति आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगी।

का प्रभाव सब पर भिन्न-भिन्न प्रकार का पड़ता है (३७-४२)। त्रस्त और आकुल वानरों का निश्चल नेत्र-समूह हनूमान पर पड़ा (४३-४५)। और वे अपने आपको किसी-किसी प्रकार ढाढ़स बँधा रहे हैं (४६)।

तृतीय आश्वास : 'समुद्र किस प्रकार लाँघा जाय' इस भावना से चिन्तित वानरों को सम्बोधित करके सुग्रीव ने ओजस्वी भाषण दिया, जिसमें राम की शक्ति, अपनी प्रतिज्ञा तथा सैनिकों के वीर-धर्म की भावना से वानर-सैन्य को उत्साहित करना चाहा (१-५०)। पर इस वीर-वाणी से भी कीचड़ में फँसे हाथी के समान जब सैन्य-दल नहीं हिला तब सुग्रीव ने पुनः कहना प्रारम्भ किया (५१-५२)। इस बार सुग्रीव ने आत्मोत्साह व्यक्त करके सेना को उत्साहित करना चाहा (५३-६३)।

चतुर्थ आश्वास : सुग्रीव के वचनों से निश्चेष्ट सेना जाग्रत हुई और उनमें लंकाभियान का उत्साह व्याप्त हो गया (१-२)। वानर सैन्य में हर्षोल्लास आ गया। ऋषभ ने कन्धे पर रखे हुए पर्वत-शृंग को ध्वस्त कर दिया, नील रोमांचित हुए, कुमुद ने हास किया, मैन्द ने आनन्दोल्लास से चन्दन वृक्ष को झकझोर दिया, शरभ घनघोर गर्जन करने लगा, द्विविद की दृष्टि शीतल हुई, निषध के मुख पर क्रोध की लाली झलक आई, सुषेण का मुखमण्डल हास से भयानक हो गया, अंगद ने उत्साह व्यक्त किया, पर हनूमान शान्त हैं (३-१३)। अपने वचनों का प्रभाव देखकर सुग्रीव हँस रहे हैं, राम-लक्ष्मण रावण सहित सागर को तृण समझ कर नहीं हँसते। राम ने केवल सुग्रीव को देखा (१४-१६)। वृद्ध जाम्बवान् ने हाथ उठा कर वानरों को शान्त करते हुए और सुग्रीव की ओर देखते हुए कहना प्रारम्भ किया (१७-१६)। अपने अनुभवों के आधार पर जाम्बवान् ने शिक्षा दी कि अनुपयुक्त कार्य में नियोजित उत्साह उचित नहीं, जल्दबाजी करना ठीक नहीं (२०-३६)। पुनः राम की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा कि तुम्हारे विषय में समुद्र क्या करेगा (३७-४१)। इस पर राम ने कहा कि इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में कार्य की धुरी सुग्रीव पर ही अवलम्बित है। पुनः उन्होंने प्रस्ताव

किया कि पहले हम सब समुद्र की प्रार्थना करें, पर यदि वह फिर भी न माने तो मेरे क्रोध का भागी बनेगा (४२-५०)। इसी बीच आकाश मार्ग से विभीषण आता है, परिचित हनूमान उसको राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। चरणों पर झुके हुए विभीषण को राम ने उठा लिया और सुग्रीव ने पवनसुत द्वारा प्राप्त विश्वास से उसको आलिंगित किया। राम ने विभीषण की प्रशंसा करके उसका अभिषेक कर दिया (५१-६५)।

पंचम आश्वास : रात्रि-काल में चन्द्र-प्रकाश में राम सीता के वियोग से व्यथित हैं। वे दुःखित होकर मारुति से सीता की कुशल पूछते हैं। सीता को उपलक्ष्य करके राम वस्तुओं की चिन्ता करते हैं और क्लेश पाते हैं (१-८)। प्रातःकाल होता है, चारों ओर प्रकाश छा जाता है (६-१३)। जब अवधि बीतने पर भी समुद्र अचल रूप में स्थिर रहा तो राम को क्रोध आ गया और उन्होंने अपने धनुष पर बाण आरोपित किया। बाण के आरोपित किये जाने और खींचे जाने का वर्णन चलता है (१४-३२)। सागर पर बाण गिरता है (३३)। बाण की ज्वाला से सागर अत्यन्त संक्षुब्ध होता है और उसके सभी जीव-जन्तु व्याकुल हो उठते हैं। उथल-पुथल मच जाती है (३४-८७)।

षष्ठ आश्वास : व्याकुल सागर बाहर निकल कर राम के सम्मुख प्रणत होकर काँपने लगा (१-६)। सागर ने प्रार्थना की उसकी मर्यादा की रक्षा हो, उसे सुखाया न जाय। उसने पर्वतों से सेतु-निर्माण का प्रस्ताव किया (१०-१७)। तब राम ने सुग्रीव को आज्ञा दी जो वानर सैन्य द्वारा ग्रहण की गई (१८-१६)। आज्ञा पाकर वानर सैन्य ने हर्षोल्लास के साथ प्रस्थान किया (१६-२८)। वानर पर्वतों को उखाड़ते हैं (३०-८१) और सागर-तट की ओर ले आते हैं (८१-६५)। अन्त में वानर सैन्य सागर-तट पर पहुँच जाता है (६६)।

सप्तम आश्वास : सेतु का निर्माण प्रारम्भ होता है। वानरों ने सागर-तट पर पर्वतों को कुछ क्षणों के लिए रख कर सागर में छोड़ना प्रारम्भ किया (१-२)। पर्वतों के गिरने से सागर अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठा

(३-५४)। सागर में गिरते हुए पर्वतों का दृश्य उपस्थित होता है (५५-५६)। वानरों के इस प्रकार प्रयत्नशील होने पर भी सेतु निर्मित नहीं हुआ और सारी सेना हतोत्साहित हो गई (७०-७१)।

अष्टम आश्वास : भारी-भारी पर्वतों से भी जब सागर नहीं बँधा तब वानर सेना ने निराश होकर लाये हुए पर्वतों को सागर-तट पर ही फेंक दिया (१-२)। धीरे-धीरे सागर शान्त हो चला (३-१२)। सुग्रीव अपनी चिन्ता नल पर प्रकट करते हैं और विस्तृत सेतु निर्मित करने के लिए कहते हैं (१३-१७)। नल ने विश्वास दिलाते हुए वीर वचन कहे (१८-२६)। नल के वचनों से उत्साहित होकर वानर सैन्य पुनः पर्वतों को सागर में डालने चल पड़ा (२७)। नल ने नियमपूर्वक बड़ों को प्रणाम करके (अपने पिता विश्वकर्मा को प्रथम और बाद में राम तथा सुग्रीव को) सेतु-निर्माण प्रारम्भ किया (२६)। सेतु-पथ के बनाने के समय का सागर का दृश्य उपस्थित होता है (३०-६०)। आगे बनते हुए सेतु-पथ का वर्णन किया गया है (६१-८१)। फिर सम्पूर्ण सेतु-पथ का रूप सामने आता है (८१-६६)। वानर सेना सेतु-पथ द्वारा सागर पार करती है और सुवेल पर्वत पर डेरा डालती है। वानर•सेना के उस पार पहुँच जाने से राक्षस रावण की आज्ञा की अवहेलना करने लगते हैं और राम का प्रताप बढ़ जाता है (६७ १०६)।

नवम आश्वास : वानर सेना सुवेल के रमणीय दृश्यों का अवलोकन करती है। चतुर्दिक प्रकृति की सुरम्यता का दृश्य है (१-२५)। सुवेल का सौन्दर्य आदर्श है (२६-६२)। पर्वतीय वन चारों ओर फैले हैं (६३-६६)।

दशम आश्वास : वानर सेना ने सुवेल की चोटियों पर डेरा डाला। राम के दृष्टिपात से सुवेल के साथ ही रावण कॉप उठा (१-४)। सन्ध्या हुई और धीरे-धीरे अन्धकार हुआ और फिर चन्द्रोदय होने से चाँदनी फैल गई (६-५५)। प्रदोषकाल में निशाचरियों का संभोग प्रारम्भ होता है (५६-८२)।

एकादश आश्वासन : रात्रि बीत गई, पर रावण की काम-वासना शान्त नहीं हुई। वह काम-व्यथा से पीड़ित है (१-२१)। रावण के मन में वानर सेना तथा सीता के विषय में तर्क-वितर्क चल रहा है और वह अन्त में निर्णय करता है कि सीता राम के कटे हुए सिर को देख कर ही वश में हो सकती है। वह सेवकों को बुला कर आदेश देता है और वे मायाशीश को लेकर सीता के पास पहुँचते हैं (२२-३९)। सीता विरहावस्था में व्याकुल हैं (४०-५०)। उसी समय राक्षस राम का मायाशीश सीता को दिखाते हैं। इस दृश्य का प्रभाव सीता पर अत्यन्त करुण पड़ता है (५१-६०)। सीता होश में आकर शीश को देखती है (६१-६४)। सीता भूमि पर गिर पड़ती है और शीश को देखने के लिए पुनः उठती हैं (६५-७४)। सीता मूर्च्छा से जाग कर विलाप करती हैं (७५-८६)। त्रिजटा सीता को आश्वासन देती है (८७-९९)। सीता विश्वास नहीं करतीं और विलाप करने लगती हैं। वे विलाप करते-करते मूर्च्छित हो जाती हैं। मूर्च्छा से जागने के बाद सीता मरने का निश्चय करती हैं। पर त्रिजटा पुनः आश्वासन देती है (१००-१३२)। सीता वानरों के प्रातःकालीन कल-कल नाद को सुन कर ही विश्वास कर पाती हैं कि यह राक्षसी माया है (१३३-१३७)।

द्वादश आश्वास : उसी समय प्रभात काल आ गया (१-११)। प्रातःकाल संभोग सुख त्यागने में राक्षस कामिनियों को क्लेश हो रहा है (११-२१)। राम प्रातःकाल उठते हैं और युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं (२२-३१)। राम के साथ वानर सेना भी चल पड़ी (३२-३४)। सुग्रीव राम के उपकार से मुक्त होने के लिए चिन्तित होते हैं और विभीषण को राक्षस वंश की चिन्ता है (३५)। राम धनुष टंकारते हैं और सीता सुनती हैं (३६-३७)। वानर कल-कल ध्वनि करते हैं (३८-४०)। इसको सुनकर रावण जागता है और अँगड़ाई लेता हुआ उठता है (४१-४४)। रावण का युद्धवाद्य बजना प्रारम्भ होता है (४५)। युद्ध को देखने की आकाँक्षा से देवांगनाएँ विमानों में उत्सुक हो रही हैं (६७)। राक्षस जाग पड़ते हैं

और अपनी संभोग-रत ललनाओं से अलग होते हैं (४६-५२)। वे युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय कवच आदि धारण करते हैं (५३-६६)। उत्साह और आवेग से भरी हुई वानर सेना लंका को घेर लेती है और आक्रमण तथा ध्वस्त प्रारम्भ करती है (६८-८०)। राक्षस सेना प्रस्थान करती है (८१-९४)। राम और रावण की सेनाएँ आमने-सामने उपस्थित होती हैं और युद्ध प्रारम्भ होता है (९५-९८)।

त्रयोदश आश्वास : सेनाओं में संघर्ष प्रारम्भ होता है और आक्रमण और प्रत्याक्रमण होते हैं और भयानक युद्ध होता है (१-८०)। विभिन्न योद्धाओं में द्वन्द्व-युद्ध होते हैं—सुग्रीव-प्रजङ्घ; द्विविद-अशनिप्रभ; मैन्द वज्रमुष्टि, सुषेण-विश्नुन्माली; नल-तपन ; पवनपुत्र-जम्बालीके द्वन्द्व में राक्षस योद्धाओं का वध हुआ (८१-८६)। अंगद तथा इन्द्रजीत के द्वन्द्व-युद्ध में इन्द्रजीत पराजित होता है (८७-९९)।

चतुर्दश आश्वास : रावण को सम्मुख न पाकर राम खिन्न होते हैं और वे राक्षसों पर बाणों का प्रहार करते हैं (१-१३), मेघनाद राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँधता है। नागपाश में बँधे हुए राम-लक्ष्मण को देखकर देवता व्याकुल हो जाते हैं और वानर सेना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है (१४-३६)। विभीषण के अभिमंत्रित जल से धुले नेत्रोंवाले सुग्रीव ने मेघनाद को देखकर उसका पीछा किया (३८-३९)। रावण को इस समाचार से प्रसन्नता हुई (४०), सीता ने मूर्च्छित राम को देखा (४१)। इधर राम की मूर्च्छा जब दूर हुई तब वे विलाप करने लगे। (४२-४८)। इस पर सुग्रीव ने वीर-वचनों से सबको सान्त्वना दी (४९-५५)। राम गरुड़ का आवाहन करते हैं (५६)। गरुड़ का आगमन और नाग-पाश से मुक्ति (५७-६१)। हनूमान-धूम्राक्ष द्वन्द्व और उसका निधन (६२-६९)। अकम्पन से युद्ध और उसका निधन (७०-७१); नल तथा प्रहस्त का द्वन्द्व और प्रहस्त का निधन (७२-८४)।

पंचदश आश्वास : सभी बन्धुजनों के निधन के बाद रावण अट्टहास करता हुआ रथ पर आरूढ़ होकर युद्धभूमि में प्रवेश करता है

(१-३) । वानर रावण को देखते हैं, रावण वानर सेना के सम्मुख जाता है और उसको देखकर वानर पीछे भागते हैं (४-६) । नल वानरों को प्रोत्साहित करते हैं (७-८) । रावण राम को देखता है (६) । रामवाण से आहत होकर लंका भाग आता है और कुम्भकर्ण को जगाता है (१०-११) । असमय जागकर कुम्भकर्ण लंका से निकला, उसने लंका की खाई पार की और वानर सेना भाग चली। उसने वानर सेना का नाश करना प्रारम्भ किया, परन्तु राम के वाणों के आघात से व्याकुल होकर उसने अपने-पराये सभी को खाना प्रारम्भ किया। अन्त में उसके हाथ और उसका सिर काट दिया गया और वह जमीन पर गिर पड़ा। कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुख-समूह धुन रहा है (१२-२३)। वह युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहता है पर इन्द्रजीत उसे मना करके स्वयं रणभूमि में आता है (२४-३२)। नील तथा अन्य वानर उसे घेर लेते हैं और वह सब से युद्ध करता है (३३-३५)। विभीषण की मंत्रणा के अनुसार लक्ष्मण उसे निकुम्भ नामक स्थान पर जाने से रोकते हैं और उसका वध करते हैं (३६-३७)। इन्द्रजीत की मृत्यु पर रावण रोता है (३८-३६) और वह रथारूढ़ होकर रणभूमि के लिए प्रस्थान करता है (४०-४२)। रावण की स्त्रियाँ प्रस्थान के समय रो पड़ती हैं (४३)। रावण वानर सेना को देखता है, विभीषण को देखता है (४४-४५)। वह लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करता है (४६)। लक्ष्मण हनूमान द्वारा लाई हुई औषधि से ठीक होते हैं (४७)। राम इन्द्र के रथ को स्वर्ग से उतरते हुए देखते हैं (४८-५०)। राम ने मातलि से मिलकर इन्द्र के कवच को स्वीकार किया। वे कवच धारण करते हैं (५१-५४)। लक्ष्मण राम से रावण-वध करने की आज्ञा माँगते हैं, पर राम लक्ष्मण को यह अवसर न देकर स्वयं लेना चाहते हैं (५५-६१)। राम-रावण का युद्ध प्रारम्भ होता है, और राम रावण के सिरों और हाथों को काटते हैं पर वे पुनः निकल आते हैं। परन्तु अन्त में एक ही बाण से राम ने उसके दसों सिरों को काट गिराया। रावण की मृत्यु होती है (६२-८२)। रावण की लक्ष्मी तब भी उसे नहीं

छोड़ रही है (८३)। विभीषण रुदन करता है (८४-९०)। राम ने रावण के अन्तिम संस्कार की आज्ञा दी (९१)। सुग्रीव उपकार का बदला चुका कर सन्तुष्ट हुए (९२)। राम से विदा होकर मातलि रथ वापस ले गया (९३)। अग्नि से विशुद्ध हुई सीता को लेकर राम अयोध्या आ गये (९४)। ग्रन्थ समाप्ति (९५)।

सेतुबन्ध की कथा का आधार

'सेतुबन्ध' की कथा वाल्मीकीय रामायण से ग्रहण की गई है। व्यापक कथा-विस्तार की दृष्टि से 'आदि रामायण' तथा 'सेतुबन्ध' की कथा में मौलिक अन्तर नहीं है। डॉ० कामिल बुल्के अपनी 'राम-कथा' में इसकी कथावस्तु के सम्बन्ध में लिखते हैं—'रावणवह' के पंद्रह सर्गों में वाल्मीकि-कृत युद्धकांड की कथावस्तु का अलंकृत शैली में वर्णन मिलता है। कथानक में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। समुद्र-बंधन के वर्णन में मछलियों के सेतु को नष्ट करने का उल्लेख है। आगे चल कर इस घटना के विषय में अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गई है। 'रावणवह' की एक विशेषता यह है कि 'कामिनी केलि' नामक दसवें सर्ग में राक्षसियों का संभोग वर्णन मिलता है। बाद में इस वर्णन का अनुसरण 'जानकी हरण', अभिनन्द कृत 'रामचरित', कम्बनकृत 'तमिल रामायण' तथा जावा के प्राचीनतम 'रामायण' आदि में किया गया है।" परन्तु प्रवरसेन ने 'आदि रामायण' से कथा लेकर उसको अपनी कल्पना से अधिक सुन्दर रूप प्रदान किया है। यह प्रभाव कवि ने बहुत साधारण परिवर्तनों तथा उद्भावनों से सम्पन्न किया है।

इस महाकाव्य का प्रारम्भ शरद ऋतु के वर्णन से हुआ है। इसके पूर्व केवल दो छंदों में कवि ने यह सूचना दी है कि राम ने बालि-वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और निष्क्रियता की स्थिति में वर्षा-काल अत्यंत क्लेश के साथ बिताया है। 'आदि रामायण' में शरद-वर्णन का स्थान किंचित भिन्न है। यह वर्णन किष्किन्धा के अन्तर्गत आया है। उसमें वर्षा तथा शरद ऋतुओं के वर्णन के बाद सीता की खोज के लिए

वानरों को भेजा गया है। यहाँ शरद ऋतु के साथ ही हनूमान का प्रवेश होता है। शरद् काल के सुखद वर्णन के साथ यह प्रवेश अधिक कलात्मक बन पड़ा है :—

णवरि अ जहासमत्थिअणिव्वत्तिअकज्जणिव्वलन्तच्छाअम् ।
पेच्छइ मारुअतणअं मणोरहं जेअ चिन्तिअसुहोवणअम् ॥१:३६॥

आशा-सूत्र के अदृश्य होने के कारण राम शरद के वातावरण में भी व्यथित हैं और उसी समय मनोरथ के समान हनूमान उपस्थित हो जाते हैं। उनका यह प्रवेश नाटकीय है। 'आदि रामायण' में शरद का वर्णन किष्किन्धा काण्ड के सर्ग ३० में है और हनूमान् का आगमन सुन्दर काण्ड के सर्ग ६४ में होता है। महाकाव्य में महा प्रबन्ध काव्य की विस्तृत कथावस्तु को काव्यात्मक ढंग से संक्षिप्त कर दिया है। इस प्रयोग के माध्यम से कवि ने समस्त कथा के सन्तुल की रक्षा की है और साथ ही अपने महाकाव्य के कथा-केन्द्र की स्थापना भी की है।

इसके बाद की 'सेतुबन्ध' में वर्णित समस्त कथा 'आदि रामायण' के लंकाकाण्ड के अन्तर्गत आती है। प्रस्तुत महाकाव्य में समाचार पाकर राम लंका अभियान के लिये वानर सेना के साथ चल पड़ते हैं, पर 'आदि रामायण' में कथा अपने मन्थर प्रवाह से चलती है। 'सेतु-बन्ध' में सीता के क्लेश की बात सुनकर राम की भृकुटियाँ चढ़ जाती हैं, वे वीर-दर्प से धनुष को देखते हैं और दृष्टि से ही वे लंकाभियान की आज्ञा लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनूमान द्वारा प्रचारित करते हैं। पर एपिक के नायक राम पहले हनूमान की प्रशंसा करते हैं और फिर उसी समय उनके मन में सागर पार जाने की चिन्ता भी है: :—

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महांभसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यंति समागताः ॥स० १;१७॥

राम की चिन्ता को दूर करने के लिए इसी प्रसंग में सुग्रीव प्रोत्साहित करते हैं (स० २), और हनुमान लंका की रचना का वर्णन करते हैं (स० ३)। मार्ग का वर्णन किंचित विस्तार से किया है, पर चतुर्थ सर्ग

में समाप्त हो जाता है। मार्ग में सह्याचल और मलयाचल को पार कर वानर सेना महेन्द्र पर्वत पर पहुँची जहाँ से सागर दिखाई पड़ता है। 'सेतुबन्ध' का वर्णन संक्षिप्त है पर 'आदि रामायण' के समान ही है।

'सेतुबन्ध' में सागर-तट पर पहुँच कर सारा वानर सैन्य सागर के विस्तार को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और हतप्रभ दिखाई देता है। पर 'आदि रामायण' की कथा में समस्त सेना के व्यवस्थित होने के बाद राम लक्ष्मण से अपने सीता विषयक वियोगजन्य शोक का वर्णन करते हैं। 'सेतुबन्ध' के कवि ने अपनी कथा में सागर को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि उसके सम्मुख अन्य किसी बात की चर्चा की नहीं जा सकी। 'आदि रामायण' के लंकाकाण्ड के छठे सर्ग से सोलहवें सर्ग तक की कथावस्तु 'सेतुबन्ध' में अप्रासंगिक होने के कारण छोड़ दी गई है। इनमें रावण की सभा का वर्णन है। सत्रह, अठारह तथा उन्नीसवें सर्गों में राम से विभीषण के मिलने के प्रसंग का विस्तार है जो 'सेतुबन्ध' में केवल १५ छन्दों में उपस्थित कर दिया गया है। विभीषण को लेकर राम की सेना में जो तर्क-वितर्क 'आदि रामायण' मे हुए हैं, 'सेतुबन्ध' में केवल उनका अत्यंत सूक्ष्म संकेत है। बीसवें सर्ग के रावण द्वारा दूत भेजे जाने का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में नहीं है।

'सेतुबन्ध' में प्रायोपवेशन का प्रस्ताव राम द्वारा ही किया गया है। जाम्बवान् ने जब राम के सामर्थ्य का उल्लेख किया तब राम ने कार्य का उत्तरदायित्व सुग्रीव पर डालते हुए यह प्रस्ताव किया। परन्तु 'आदि रामायण' में सुग्रीव तथा हनूमान ने विभीषण से सागर संतरण का उपाय पूछा; और विभीषण से जानकर सुग्रीव ने राम से समुद्र की उपासना के लिए कहा (स० २०) 'सेतुबन्ध' के कवि ने प्रायोपवेशन काल में रात्रि की चाँदनी में राम के सीता-वियोग का चित्रण किया है, जब कि 'आदि रामायण' में सागर-तट पर पहुँचते ही राम के वियोग-जन्य क्लेश का वर्णन विलाप-रूप में किया गया है। आगे अवधि बीतने पर भी सागर के अचल रहने पर राम को रोष आता है, वे धनुष पर बाण

आरोपित कर चलाते हैं। सागर बाण से विकल हो राम के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और सेतु-निर्माण का प्रस्ताव करता है (स० २१,२२)। यह सारा प्रसंग दोनों में समान है। 'आदि रामायण' में समुद्र ही नल का परिचय देता है, और तब नल अपना वृत्तान्त बताता है। इसके बाद इसी सर्ग बाईस में नल द्वारा सेतु की रचना हो जाती है और वानर सेना सागर पार उतर जाती है।

सेतु-रचना का यह प्रसंग 'सेतुबन्ध' में पर्याप्त विस्तार से वर्णित है। सागर प्रकट होकर पर्वतों से सेतु-निर्माण का प्रस्ताव अवश्य करता है, परन्तु 'आदि रामायण' के समान निश्चित विधि नहीं बताता। जब वानर-सेना सागर को पर्वतों से पाटते-पाटते थक जाती है, उस समय सुग्रीव नल से सेतु-रचना के लिए कहते है और नल विश्वकर्मा के पुत्र होने के कारण सेतु बनाने में सफल होता है। वस्तुतः जैसा इस महाकाव्य के नाम से स्पष्ट है कि इसकी प्रमुख घटना सेतु-निर्माण है, अतएव इसमें सागर-वर्णन, पर्वतोत्पाटन तथा सेतु-रचना आदि का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है। 'सेतुबन्ध' में कई आश्वासों में यह कथा-वस्तु चलती है, जब कि 'आदि रामायण' में केवल एक सर्ग में इतनी घटनाएँ एकत्र कर दी गई हैं।

आगे फिर 'आदि रामायण' के विस्तार को 'सेतुबन्ध' में छोड़ दिया गया है। सर्ग तेईस से लेकर तीस तक के प्रसंगों का उल्लेख प्रस्तुत काव्य में नहीं है जिनमें प्रमुखतः राम तथा रावण एक दूसरे की सैनिक शक्ति का पता चलाने का प्रयत्न करते हैं, विशेषकर रावण के दूतों की चर्चा है। 'सेतुबन्ध' में सुवेल पर वानर सेना के डेरा डालने के बाद रात में निशाचरियों के संभोग का वर्णन है। वस्तुतः यह 'सेतुबन्ध' के कवि की मौलिक कल्पना है, जहाँ तक राम-कथा का सम्बन्ध है। आगे चलकर इसी के आधार पर राम-कथा के अन्तर्गत राक्षसियों के संभोग की परम्परा का विकास हुआ है। 'भट्टि काव्य' सर्ग ११; 'रामायण काकाविन' सर्ग

१२; 'जानकीहरण' सर्ग १६; अभिनन्द कृत 'रामचरित' सर्ग १८; कम्बन-कृत 'रामायण' ६, २४;तथा 'रामलिंगामृत' सर्ग ८ में इस प्रसंग का विकास विशेष रूप से देखा जा सकता है। प्रस्तुत महाकाव्य में भी आश्वास ११ के अन्तर्गत रावण की काम-व्यथा तथा आश्वास १२ के अन्तर्गत प्रातः वर्णन मे भी सुखोपरान्त कामिनियों की दशा का वर्णन किया गया है जिसका मुख्य दृष्टिकोण समान है। रात्रि मे रावण राम के माया निर्मित सिर को सीता के पास भेजता है जिसे देख कर सीता की व्यथा का पार नहीं रह जाता। सीता बार-बार मूर्च्छित होती हैं और त्रिजटा आश्वासन देती है। 'आदि रामायण' में रावण राम का समाचार सुन कर घबरा जाता है और विद्युज्जिह्व नामक मायावी राक्षस से राम के सिर की रचना के लिए कहता है (स० ३१)। सिर को लेकर स्वयं रावण सीता के पास जाता है। सीता का विलाप विस्तार के साथ इसमें भी है (स० ३२), परन्तु त्रिजटा के स्थान पर विभीषण की पत्नी सरमा सीता को समझाती है (स० ३३), तथा सरमा रावण के गुप्त कार्यों की सूचना सीता को देती है (स० ३४)। 'आदि रामायण' में सरमा सीता को विश्वास दिलाने में इस प्रकार सफल होती है, पर इसमें सेना के घोर शब्द से सीता के विश्वास को दृढ़ किया गया है। 'सेतुबन्ध' में त्रिजटा सीता को अन्ततः तभी विश्वास दिला पाती है जब वह वानर सेना का कलकल नाद सुनती हैं :—

माआमोहम्मि गए सुए अ पवआण समरसंणाहरवे।
जणअतणआइ दिट्ठं तिअडाणेहाणुराअभणिअस्स फलम्॥ ११:१३७॥

'आदि रामायण' का माल्यवान प्रसंग भी 'सेतुबन्ध' में नहीं लिया गया है (स० ३५, ३६)। आगे युद्ध के विभिन्न वर्णनों में अनेक स्थलों पर संक्षेप तथा परिवर्तन किया गया है। अधिकांश परिवर्तन 'आदि रामायण' के वर्णनों को संक्षिप्त करने की दृष्टि से हुए हैं। 'सेतुबन्ध' में प्रातःकाल से निश्चित युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और राम-रावण की सेनाएँ आमने-सामने आ जाती हैं। बीच-बीच में प्रमुख-प्रमुख सेना-

पतियों और योद्धाओं के युद्ध और मरण का चित्रण भी किया गया है। पर 'आदि रामायण' में युद्धारम्भ का क्रम इस प्रकार है। सर्ग ३७ में राम वानर सेना की व्यूह रचना करते हैं, सर्ग ३८ में सुवेल पर्वत पर चढ़ते हैं। वे सब वहाँ से लंका की शोभा देखते हैं (स० ३६)। वस्तुतः 'सेतुबन्ध' में केवल सुवेल के सौन्दर्य का वर्णन (आ० ६) किया गया है। सुग्रीव और रावण का द्वंद्व होता है (स० ४०)। तदनन्तर लंकावरोध प्रारम्भ होता है, लेकिन इसी बीच अंगद दूत-कार्य के लिए रावण की सभा में जाते हैं (स० ४१)। वस्तुतः 'आदि रामायण' में प्रमुख रूप से युद्ध का आरम्भ सर्ग ४८ से होता है। उसके पूर्व की सभी घटनाएँ 'सेतुबन्ध' में नहीं ली गई हैं।

'सेतुबन्ध' में युद्ध-वर्णन के क्रम में मौलिक अन्तर नहीं है। परन्तु महाकाव्य में महाप्रबन्ध काव्य के विस्तार को संक्षिप्त करना स्वाभाविक था। इसी दृष्टि से कवि ने आदि कथा की अनेक बातों और घटनाओं को छोड़ दिया है या उनको संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया है। 'सेतुबन्ध' के आश्वास १३ का द्वंद्व युद्ध प्रायः 'आदि रामायण' के स० ४३ के समान है। इनमें कुछ वीरों के जोड़े भी समान हैं जैसे—अंगद-इन्द्रजीत, हनूमान-जम्बुमाली, मैन्द-वज्रमुष्टि, द्विविद-अशनिप्रभ, नल-प्रतपन, सुषेण-विद्युन्माली। कुछ अन्तर भी है जैसे 'आदि रामायण' में सुग्रीव-प्रघस, सम्पाति-प्रजङ्घ, लक्ष्मण-विरूपाक्ष का द्वंद्व वर्णित है। मेघनाद के युद्ध का वर्णन दोनों में समान है और इसी प्रकार मेघनाद राम-लक्ष्मण को नागपाश में भी बाँधता है। मूर्च्छित भाइयों को सीता को दिखलाये जाने का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में है, परन्तु 'आदि रामायण' में सीता को पुष्पक विमान में चढ़ा कर संग्राम-भूमि में गिरे हुए दोनों भाइयों को दिखाया जाता है। इस प्रसंग में त्रिजटा सीता को समझाती है (सर्ग ४७, ४८)। राम का मूर्च्छा से जागने पर विलाप दोनों काव्यों में है (स० ४६)। सुग्रीव का वीर-दर्प भी दोनों में समान है परन्तु 'सेतुबन्ध' में अधिक काव्यात्मक है। इसके बाद 'आदि रामायण' में विभीषण, सुग्रीव, सुषेण

आदि के वार्तालाप के मध्य में गरुड़ का प्रवेश आकस्मिक रूप से होता है, और वे दोनों भाइयों को स्वस्थ कर देते हैं। बाद में राम द्वारा पूछे जाने पर गरुड़ अपना परिचय देते हैं (स० ५०)। जबकि 'सेतुबन्ध' में विभीषण के यह संकेत करने पर कि वे सर्प बाण हैं, राम स्वयं गरुड़ का आवाहन करते हैं।

रावण को जब समाचार मिलता है तब वह दुःखी होकर धूम्राक्ष को भेजता है। युद्ध में धूम्राक्ष का हनूमान द्वारा वध होता है (स० ५१, ५२)। हनूमान द्वारा वज्रदंष्ट्र का भी वध होता है, परन्तु 'सेतु-बन्ध' में यह प्रसंग नहीं है (स० ५३, ५४)। हनूमान ही अकम्पन का द्वंद्व युद्ध में वध करते हैं (स० ५५, ५६)। 'सेतुबन्ध' में नल-प्रहस्त का द्वंद्व होता है, परन्तु 'आदि रामायण' में नील द्वारा प्रहस्त का निधन होता है (स० ५७, ५८)। इसके बाद रावण स्वयं युद्ध भूमि में जाता है और हार कर वापस लंका लौट आता है, यह दोनों में समान है (स० ५९)। इसी प्रकार लौट कर वह कुम्भकर्ण को जगाता है। 'आदि रामायण' में यह प्रसंग एक विस्तृत सर्ग (स० ६०) में है और उसको रावण की आज्ञा से राक्षस जगाते हैं, जबकि 'सेतुबन्ध' में रावण द्वारा ही वह जगाया जाता है। असमय जगने के कारण उसके बढ़े हुए क्रोध का वर्णन दोनों में है। 'आदि रामायण' में राम के पूछने पर विभीषण उसके बल और पराक्रम का वर्णन करते हैं (स० ६१)। इसके सर्ग ६२ में रावण ने कुम्भकर्ण के सम्मुख सारी परिस्थिति रक्खी। अनन्तर कुम्भकर्ण ने रावण को नीति की शिक्षा दी, परन्तु रावण के क्रुद्ध होने पर उसने अपने पराक्रम के कथन द्वारा उसको आश्वासन दिया (स० ६३)। इस बीच महोदर मंत्रणा देकर रावण को सीता-प्राप्ति का उपाय सुझाता है (स० ६४)। अगले तीन सर्गों में कुम्भकर्ण के युद्ध का सविस्तार वर्णन है जिसके अन्त में वह राम द्वारा मारा जाता है। इनमें से 'सेतुबन्ध' में केवल युद्ध और उसके वध का संक्षेप में वर्णन है। कुम्भकर्ण के वध पर रावण के विलाप और रुदन का वर्णन समान है

(स० ६८)। 'आदि रामायण' में त्रिशरा, अतिकायी, देवान्तक, नरान्तक, महोदर तथा महापार्श्व, इन छः वीरों की युद्ध-यात्रा से लेकर इनके वध तक का प्रसंग विशिष्ट है जो प्रस्तुत काव्य में नहीं है (स० ६९-७१)।

'सेतुबन्ध' में रावण कुम्भकर्ण के वध के बाद युद्ध के लिए स्वयं तैयार होता है और उसी समय इन्द्रजीत इसे मना करके स्वयं युद्ध-भूमि में जाता है। पर 'आदि रामायण' में उपर्युक्त छहों वीरों की मृत्यु के बाद रावण अत्यन्त चिन्तित है, उसी समय इन्द्रजीत पिता से युद्ध के लिए आज्ञा माँगता है (स० ७२)। 'सेन्तुबन्ध' में मेघनाद-युद्ध की कथा भी संक्षिप्त की गई है। ये अंश 'सेतुबन्ध' में नहीं हैं—इन्द्रजीत का अदृश्य युद्ध, राम-लक्ष्मण का ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित होना (स० ७३); हनूमान का ओषधि लाना और सबको स्वस्थ करना (स० ७४); सुग्रीव की आज्ञा से लंका का भस्म किया जाना (स० ७५); मुख्य-मुख्य वीरों का द्वन्द्व-युद्ध; निकुंभ का मरण (स० ७७); मकराक्ष की युद्ध-यात्रा और उसका वध (स० ७८,७९)। इतने अवान्तर के बाद मेघनाद के अन्तर्धान होकर युद्ध करने का पुनः वर्णन किया गया है (स० ८०)। इसी बीच 'आदि रामायण' में इन्द्रजीत युद्ध-भूमि में राम के सम्मुख माया सीता का वध करता है (स० ८१) और इसी के अनुकूल इस समाचार को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं और लक्ष्मण उनको सान्त्वना देते हैं (स० ८३)। पर 'सेतुबन्ध' में विभीषण की मंत्रणा से लक्ष्मण मेघनाद को निकुम्भ नामक स्थान पर जाने से रोकते हैं जबकि 'आदि रामायण' में मेघनाद निकुंभिला में जाकर यज्ञ करता है (सं० ८२) और विभीषण की सलाह से लक्ष्मण सेना सहित वहाँ जाकर मेघनाद का यज्ञ ध्वस्त कर उसका वध करते हैं (सं० ८४-९१)। प्रसंग को अधिक विस्तार दिया गया है; इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मेघनाद और विभीषण एक दूसरे को धिक्कारते हैं (स० ८७)। रावण का विलाप तथा रुदन पुनः दोनों में वर्णित है (स० ९३)। रावण द्वारा सेना का युद्ध भूमि में भेजा जान

तथा राक्षसियों का विलाप 'सेतुबन्ध' में नहीं है (स० ६४,६५)। रावण युद्ध-भूमि के लिए प्रस्थान करता है (६६)। इस बीच फिर 'आदि रामायण' की ये घटनाएँ अतिरिक्त हैं—विरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व का युद्ध तथा वध (स० ६७-६६)। इसके बाद रावण का युद्ध प्रारम्भ होता है (स० १००), रावण की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित होते हैं पर हनूमान द्वारा (पर्वत से) लाई हुई ओषधि से लक्ष्मण आरोग्य होते हैं (स० १०१, १०२), संक्षेप में इस कथा का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में हुआ है। मातलि द्वारा इन्द्र अपना रथ भेजते हैं। राम उसका कवच आदि धारण कर रथ पर चढ़ते हैं और युद्ध प्रारम्भ होता है (स० १०३)। रावण-वध की कथा भी 'सेतुबन्ध' में संक्षिप्त है, पर 'आदि रामायण' के कई सर्गों में फैली हुई है—सर्ग १०४ में रावण अत्यधिक मूर्च्छित होता है, सर्ग १०५ में वह अपने सारथि से कठोर वचन कहता है और वह रावण को समझाता है (स० १०५); अगस्त्य मुनि राम को आदित्य हृदय स्तोत्र सिखाते हैं (स० १०६); शकुन-अपशकुन का वर्णन (स० १०७); राम-रावण द्वन्द्व-युद्ध (सं० १०८) से कथावस्तु पुनः 'सेतुबन्ध' में समान है। रावण के सिर कट-कट कर बढ़ते जाते हैं, अन्त में राम ने बाण (ब्रह्मास्त्र) से रावण के हृदय को विदीर्ण कर डाला (स० ११०)। 'सेतुबन्ध' में किंचित अंतर है कि राम एक ही बाण से उसके दसों सिरों को काट डालते हैं। रावण-वध के बाद 'सेतुबन्ध' (रावण-वध) की कथा समाप्त हो जाती है। केवल 'आदि रामायण' के समान विभीषण के रुदन तथा रावण के (विभीषण द्वारा) अन्तिम संस्कार का उल्लेख और किया गया है। अन्त में कवि ने इस बात का संकेत भी कर दिया है कि अग्नि शुद्धि के बाद सीता सहित राम पुष्पक विमान पर अयोध्या लौट आये।

महाकाव्य के रूप में सेतुबन्ध

महाकाव्यों को सर्गबन्ध कहने की परम्परा बहुत प्राचीन है। महाभारत की कथावस्तु का विभाग प्रसंगों और पर्वों में है, परन्तु रामायण की कथावस्तु काण्डों में विभाजित होकर सर्गों में विभाजित है। 'आदि रामायण' एक ही

कवि द्वारा रचित काव्य माना जाता है, इससे यह कल्पना सहज में की जा सकती है कि सर्गबन्ध काव्यों की परम्परा का विकास वाल्मीकि रामायण से हुआ है। काव्यशास्त्र में महाकाव्यों की परिभाषा निर्धारित होने के पूर्व महाकाव्यों की निश्चित परम्परा विकसित हो चुकी थी। आचार्य भामह ने सर्व प्रथम महाकाव्य की परिभाषा दी है और बाद में दण्डी, हेमचन्द्र, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों ने उन्हीं का प्रायः अनुसरण किया है। भामह के पूर्व अश्वघोष के 'बुद्ध-चरित', 'सौन्दरनन्द' तथा कालिदास के 'कुमारसम्भव', 'रघुवंश' महा-काव्यों की रचना हो चुकी होगी। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन काव्यों को प्रारम्भ से महाकाव्य कहा जाता था या नहीं। सातवीं शताब्दी के कवि माघ ने अपने 'शिशुपाल वध' में काव्य के इस रूप का उल्लेख अवश्य किया है :—

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्दुलभ्॥१४:४१॥

और इसी समय तक काव्यशास्त्र ग्रन्थों में भी साहित्य के इस रूप की व्याख्या-विवेचना की जाने लगी थी।

महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं में उसका सर्गबन्ध होना कहा गया है। भामह ने 'सर्गबन्धो महाकाव्यं' कहा है, दण्डी ने सर्गों के अधिक विस्तृत न होने का निर्देश किया है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में आठ सर्ग से अधिक होने चाहिए और प्रत्येक सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा का संकेत निहित होना चाहिए। भामह के अनुसार नायक ऐश्वर्यशाली और प्रसिद्ध होना चाहिए और उसका वर्णन वंश-परिचय, उसकी शक्ति तथा योग्यता से प्रारम्भ करना चाहिए और समस्त महा-काव्य में उसका महत्त्व बना रहना चाहिए। दण्डी ने नायक को महान और विद्याबुद्धि से युक्त माना है और रुद्रट के अनुसार नायक राजा होता है। वह ऐतिहासिक व्यक्ति हो सकता है और काल्पनिक व्यक्ति भी। वह धर्म, अर्थ तथा काम को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है।

वह वीर विजयी तथा गुणी होता है। उसका प्रतिनायक भी शूर तथा गुणी होना चाहिए और यशस्वी वंश का होना चाहिए। विश्वनाथ का कहना है कि नायक देवता अथवा किसी प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल का होता है और कभी-कभी एक वंश के कई राजा कथानायक होते हैं। सम्भवतः विश्वनाथ की दृष्टि में 'रघुवंश' जैसे महाकाव्य थे जब उन्होंने कई नायकों की सम्भावना महाकाव्य में बतलाई है।

भामह के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु नायक के चरित्र को प्रस्तुत करती है। कथावस्तु में पाँच सन्धियाँ (नाटक के समान) मानी गई हैं। नायक की मृत्यु का उल्लेख वर्जित है। दण्डी ने भी सन्धियों को स्वीकार किया है, पर उन्होंने कथावस्तु के ऐतिहासिक होने पर बल दिया है। नायक को अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध में सफलता मिलनी चाहिए, इस विषय में लगभग सभी काव्य-शास्त्री सहमत हैं। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु काल्पनिक भी हो सकती है और यथार्थ भी, अथवा कुछ यथार्थ और कुछ काल्पनिक। हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ कथा-वस्तु के विकास में पाँचो नाटकीय सन्धियों के प्रयोग को स्वीकार करते हैं।

रस, अलंकार तथा छंदों के सम्बन्ध में भी काव्य-शास्त्र में निश्चित निर्देश हैं। महाकाव्यों में सभी प्रमुख रसों को स्थान मिलना चाहिए। विश्वनाथ ने अवश्य महाकाव्य में वीर, शृंगार तथा शांत रसों में से एक को प्रमुखतः स्वीकार किया है। सभी काव्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य की शैली को अलंकृत माना है, और अनेक छंदों के प्रयोग को स्वीकार किया है। दण्डी के अनुसार सर्ग के अन्त में छन्द बदलता है। हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ के अनुसार प्रत्येक सर्ग में एक छन्द रहता है परंतु कुछ सर्गों में छन्दों की विविधता भी रहती है। महाकाव्य के रूप में वर्णनों का निर्देश भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दण्डी ने सर्वप्रथम वर्णनों की सूची दी है :—

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥

भामह ने सभा, दूत-कार्य, युद्ध-यात्रा, युद्ध तथा नायक का अभ्युदय आदि का उल्लेख पहले ही किया था। परन्तु कथा-विस्तार के साथ वर्णनों के सजाने की प्रकृति जिस प्रकार महाकाव्यों में बढ़ती गई है, उसी के अनुसार काव्य-शास्त्रों में उनका निर्देश भी हुआ है। बाद के कवियों ने तो अपने महाकाव्यों में शास्त्रों के अनुसार वर्णनों को जानबूझ कर सजाया है और उसके लिए कथा-वस्तु की अवहेलना भी की है।

'सेतुबन्ध' महाराष्ट्री प्राकृत का महाकाव्य है। इसकी कथा पन्द्रह आश्वासों में समाप्त हुई है। प्राकृत महाकाव्यों में सर्ग के स्थान पर आश्वास का प्रयोग होता है। हेमचन्द्र ने इस बात का निर्देश किया है। इनके अनुसार इन विभागों को संस्कृत में सर्ग, प्राकृत में आश्वास, अपभ्रंश में सन्धि तथा ग्राम्यभाषा में अवस्कन्ध कहते हैं। 'सेतुबन्ध' की कथा प्रसिद्ध रामायण की कथा से ली गई है। राम इसके योग्य नायक हैं, उनमें नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। यह महाकाव्य वीर रस प्रधान है, पर शृंगार, करुण रस आदि भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुए हैं। इसकी शैली संस्कृत की अलंकृत शैली ही है। कल्पना और सौन्दर्य-सृष्टि की दृष्टि से 'सेतुबन्ध' संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों के समकक्ष रखा जा सकता है।

परन्तु 'सेतुबन्ध' उन महाकाव्यों के अन्तर्गत आता है जिनके आधार पर काव्य-शास्त्र के लक्षण भले ही निर्धारित किये गये होंगे, पर उनकी रचना काव्य-शास्त्र के लक्षणों को दृष्टि में रखकर नहीं हुई है। साथ ही यह भी स्पष्ट जान पड़ता है कि 'सेतुबन्ध' की रचना के समय कालिदास जैसे महाकवि के महाकाव्य उदाहरण रूप में अवश्य रहे होंगे। अश्वघोष तथा कालिदास के महाकाव्यों में वर्णन का आग्रह इतना नहीं है कि मुख्य कथा-वस्तु के सूत्र एकदम छोड़ दिये जायँ अथवा कथा के विकास की नितान्त अपेक्षा की जाय। इस दृष्टि से प्रवरसेन ने अपने महा-

काव्य में प्रबन्ध-कल्पना को अधिक महत्त्व दिया है। यह भिन्न बात है कि 'सेतुबन्ध' की कथावस्तु में कवि को स्वतः ही वर्णना का अधिक अवसर मिल गया है। वस्तुतः देश-काल का वर्णन कथा को आधार तथा वातावरण प्रदान करने के लिए ही अपेक्षित होता है। परन्तु काव्यात्मक दृष्टि से देश-काल के नानाविध प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि का आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। 'आदि रामायण' के कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण इसी सीमा तक है। फिर क्रमशः काव्योत्कर्ष के स्तर पर प्रकृति का सौन्दर्य वर्णना की प्रेरणा बन गया। अश्वघोष में और प्रमुखतः कालिदास में प्रकृति का सौन्दर्य स्वतः कवि की कल्पना को प्रोत्साहित करता है। फिर भी कालिदास ने अपने महाकाव्यों में कथा-सूत्र कहीं भी टूटने नहीं दिया है। प्रकृति के प्रत्येक वर्णन को कथा के प्रवाह में इस प्रकार संजो दिया है कि वह उसका अंग बन गया है।

कथानक के विकास की दृष्टि से तथा प्राकृतिक वर्णनों को प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रवरसेन कालिदास के अत्यधिक निकट हैं। इतना ही नहीं, 'सेतुबन्ध' की कथावस्तु के चयन में प्रवरसेन ने स्वतः इस बात का ध्यान रखा है। जो विस्तृत वर्णना इस महाकाव्य में पाई जाती है, उसमें से अधिकांश प्रमुख घटना अर्थात् 'सेतुबन्ध' का रूप है। अतः उस अंश को प्रकृति की स्वतन्त्र अथवा मुक्त वर्णना नहीं कहा जा सकता। इस महाकाव्य में मुख्य दो घटनाएँ हैं—प्रथम सेतुबन्धन और द्वितीय रावण-वध। इन्हीं दोनों के नाम पर इसका नामकरण 'सेतुबन्ध' तथा 'रावण-वध' हुआ है। वस्तुतः जिस उत्साह और विस्तार से सेतु-रचना का वर्णन कवि करता है, उससे यही लगता है कि इस महाकाव्य का परिणाम रावण-वध भले ही हो, पर इसका घटना केन्द्र सेतु-रचना ही है। इसका यह नाम अधिक प्रसिद्ध रहा है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि कवि ने मुख्य कथा-वस्तु सेतु-रचना को चुना है, रावण-वध तो उसकी अनिवार्य परिणति है। समस्त महाकाव्य में लगभग सात आश्वासों (दूसरे से लेकर आठवें तक) में सेतु-रचना का प्रसंग है, जबकि युद्ध का

वर्णन अन्तिम तीन आश्वासों में है। इन दोनों अंशों में भी कथा का आग्रह और विकास समुचित रूप में पाया जाता है। वर्णन प्रथम अंश में अपेक्षाकृत अधिक हैं, पर, जैसा हम देखेंगे, इसमें से अधिकांश वर्णन कथा के लिए प्रासंगिक ही नहीं वरन् उसका घटनात्मक अंग भी है। दूसरे अंश में घटनाएँ पर्याप्त गति से संचालित हुई हैं। कथात्मक संगठन तथा घटनात्मक विकास में संस्कृत का कोई भी महाकाव्य इसकी तुलना में नहीं ठहर सकता।

प्रारम्भ में कवि ने विष्णु तथा शिव की स्तुति मंगलाचरण के रूप में की है और कथा-निर्वाह की कठिनाई का निर्देश किया है। इस संबंध में 'रघुवंश' के वर्णन करने में कालिदास के संकोच का स्मरण आ जाता है। इसके बाद कवि नाटकीय ढंग से कथा को प्रस्तुत करता है। कवि यह समाचार दे कर कि राम ने बालि का वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और उन्होंने वर्षा काल निष्क्रियता की स्थिति में क्लेश से काटा है, कथा की स्थापना के रूप में शरद-वर्णन करता है। परन्तु यह वर्णन महाकाव्यों में ऋतुओं के वर्णन की परम्परा से भिन्न है। इस महाकाव्य में ऋतु के रूप में केवल इसी ऋतु का वर्णन है और यह भी कथानक का अंग है। शरद ऋतु के सुन्दर और सुखद वातावरण के विरोध में राम का विरहजन्य क्लेश बढ़ता है। परन्तु कवि ने इसी स्थल पर हनूमान का प्रवेश कराया है। हनूमान का यह प्रवेश नाटकीय है। यहाँ की समस्त घटना को कवि कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है और इसी कारण बहुत संक्षेप में उसने सारी परिस्थिति को सँभाल लिया है। यात्रा के बीच मार्ग-वर्णन में प्रवरसेन ने कालिदास के समान संक्षेप तथा संकेत से काम लिया है।

सागर-तट पर पहुँचते ही कवि ने सेतु-रचना के लिए विस्तृत भूमिका तैयार करनी प्रारम्भ की है, जैसे अभी तक की घटनाएँ केवल कथा-प्रवेश की अंग थीं। यहाँ सागर का वर्णन महाकाव्यों में निर्दिष्ट सागर-वर्णन के रूप में नहीं है। इस महाकाव्य में सागर कथा का अंग है और

इस कारण उसका वर्णन, बानरों पर उसका प्रभाव आदि, कथानक के अन्तर्गत आयेगा। सुग्रीव का ओजस्वी भाषण, जाम्बवान् की शांत वाणी आदि का प्रयोग करके कवि ने महाकाव्य की कथावस्तु को अधिक आकर्षक तथा प्रवाहपूर्ण बनाया है। विभीषण के आगमन के प्रसंग को संक्षिप्त करके कवि ने प्रमुख कथा के विकास को अबाधित रखा है। कथा अग्रसर होती है और सागर सेतु-पथ निर्माण का प्रस्ताव करता है। यहाँ कवि आदि कवि के समान सागर द्वारा नल से सेतु-निर्माण की योजना का प्रस्ताव नहीं कराता। पहले वानर सेना पर्वत लेने जाती है, पर्वतों को उखाड़ कर आकाश मार्ग से लाकर सागर में डालती है। और इस प्रकार जब कार्य की सिद्धि नहीं होती और वानर थक कर शिथिल तथा हताश हो जाते हैं, तब सुग्रीव नल से सेतु-निर्माण की प्रार्थना करते हैं। अनन्तर वानर पुनः उत्साहित होकर पर्वत लाते हैं और नल सेतु-पथ का निर्माण करते हैं। इस बीच में पर्वतों, नदियों, वनों आदि का विस्तृत वर्णन है पर, जैसा कहा गया है, यह सब सेतु-पथ के निर्माण का अंग बन गया है।

दक्षिण सागर-तट पर पहुँच जाने के बाद सुवेल पर्वत का अवश्य विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कथा के विकास की दृष्टि से इतना लम्बा वर्णन व्यवधान उत्पन्न करने वाला ही कहा जायगा। परन्तु सेतु-निर्माण के कठिन कार्य के सम्पन्न होने के बाद और राम-रावण के कठिन युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व यह अन्तराल कथा के लिए जैसे एक उचित विराम बन गया है। इसके बाद पुनः घटनाएँ क्षिप्रगति से आगे बढ़ने लगती हैं और कवि ने व्यर्थ के वर्णनों से अपनी कथा को कहीं भी शिथिल नहीं होने दिया है। दसवें आश्वास में सायंकाल, रात्रि, चन्द्रोदय के वर्णन किंचित विस्तार से हैं। परन्तु इनका उपयोग कवि ने राक्षस कामिनियों के संभोग-वर्णन के आधार रूप में किया है। पर संभोग-शृंगार का यह प्रसंग भी कथानक में कहाँ तक उपयुक्त है—यह भी प्रश्न उठ सकता है। निश्चय ही यह अंश वर्णन के मोह से जोड़ा

गया है जो किसी परम्परा के अनुसार रखा गया होगा। साथ ही इस प्रसंग के साथ रावण की काम-पीड़ा को जोड़ा जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप सीता के सम्मुख राम के माया शीश के प्रस्तुत किये जाने का प्रसंग है। और यह घटना 'सेतुबन्ध' के कथानक में काफी सजीव सिद्ध हुई है। कवि ने इस प्रसंग में अपने काव्य-कौशल तथा अनुभूति दोनों का परिचय दिया है। बारहवें आश्वास का प्रातःकाल वर्णन संक्षिप्त है जो युद्ध-प्रारम्भ की समुचित पीठिका प्रदान करता है।

इस प्रकार प्रवरसेन के इस महाकाव्य में कथानक का आग्रह सदा बना रहता है। घटनाओं के क्रम में अन्य वर्णन आ गये हैं। वर्णन के लिए वर्णन की जो प्रवृत्ति बाद के महाकाव्यों में विकसित हुई है वह 'सेतुबन्ध' में नहीं पाई जाती। इसका घटना क्रम सुचिन्तित और संगठित है। 'आदि रामायण' और इसकी कथावस्तु की तुलना से भी यही बात स्पष्ट हो जाती है। प्रवरसेन ने केवल उन्हीं घटनाओं को चुना है जिनसे कथानक की गति तेज़ रहे और अनेक घटनाओं तथा प्रसंगों को इसी उद्देश्य से संक्षिप्त कर दिया है। जैसा आगे स्पष्ट होगा, 'सेतुबन्ध' अलंकृत काव्य होने पर भी उसमें चमत्कार-वादिता तथा ऊहात्मकता का आग्रह नहीं है। इसकी कल्पना में सौन्दर्य की रक्षा सदैव हुई है। इस दृष्टि से 'सेतुबन्ध' प्रारम्भिक महाकाव्यों में ही गिना जायगा, जैसा कि इसके रचनाकाल से भी सिद्ध है।

सेतुबन्ध के चरित्र और उनका व्यक्तित्व

'सेतुबन्ध' की कथावस्तु 'आदि रामायण' से ली गई है, अतएव उसके समस्त चरित्र आदि कवि के चरित्र हैं। परन्तु जिस प्रकार प्रवरसेन ने कथावस्तु को अपने काव्य के अनुरूप बनाकर स्वीकार किया है, उसी प्रकार उन्होंने चरित्रों को भी किंचित भिन्न रूप प्रदान किया है। और न केवल इन चरित्रों को एक पूर्णव्यक्तित्व प्रदान किया है, वरन् उनकी सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण में भी कवि ने सफलता प्राप्त की है। प्रबन्ध काव्यों में चरित्रों का विस्तार जीवन-व्यापी घटनाओं में होता है, और इस कारण

इनमें चरित्र अधिक पूर्ण रूप में सामने आते हैं। परन्तु घटनाओं के विस्तार में अनेक बार ये चरित्र अधिक संघटित तथा एकरूप नहीं जान पड़ते। उनका चरित्र घटनाओं के घटाटोप में खो जाता है। इसी तरह महाकाव्यों में चरित्रों की कल्पना पूर्ण एकाई के रूप में प्रतिघटित नहीं होती। उनमें चरित्र प्रायः वर्ग (type) के रूप में आते हैं जैसा कि शास्त्रीय परिभाषाओं में निर्दिष्ट है, और इन चरित्रों की बँधी-बँधाई अभिव्यक्ति होती है। अधिकतर किसी चरित्र की एक विशेषता व्यक्त हो पाती है। इन महाकाव्यों में नायक-नायिका तथा प्रतिनायक से भिन्न सामान्य चरित्र की अवतारणा कम होती है, और होने पर भी उनको विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं होता।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सेतुबन्ध' की स्थिति अन्य महाकाव्यों से कुछ भिन्न है। इस काव्य के नायक राम हैं जो अनेक काव्यों तथा नाटकों के नायक हैं। परन्तु यह कहना ग़लत न होगा कि प्रवरसेन के राम का अपना व्यक्तित्व है जो अन्य काव्यों से भिन्न है। प्रायः राम की कल्पना आदर्श धीरोद्दात्त नायक की की जाती है। इस दृष्टि से 'सेतुबन्ध' में राम की भिन्न स्थिति नहीं है। पर प्रवरसेन ने राम को अधिक स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है, इसमें सन्देह नहीं। वह वीर हैं, दुर्धर्ष वीर हैं। उनमें शत्रु को पराजित करने की अदम्य इच्छा है। परन्तु उनके चरित्र में कमज़ोरी के क्षण भी आते हैं। कोई कितना ही वीर क्यों न हो पर जहाँ वह अपने को निरुपाय पायेगा, वहाँ वह निराश होगा ही। 'सेतुबन्ध' में वीर राम ऐसे क्षणों में निराश चित्रित किये गये हैं। परन्तु कार्य की दिशा ज्ञात हो जाने पर, सिद्धि का उपाय स्पष्ट हो जाने पर वे क्षण भर का विलम्ब नहीं करते हैं। वर्षाकाल में निष्क्रियता की स्थिति है, और राम ने समय बहुत कठिनाई से व्यतीत किया :—

ववसाअरइपओसो रोसगइन्ददिढसङ्खलापडिबन्धो।
कह कह वि दासरहिणो जअकेसरिपञ्जरो गओ घणसमओ ॥१:१४॥

यहाँ कवि ने राम को अर्गलाबन्ध सिंह तथा पिंजर में पड़े हुए सिंह के समान कह कर राम के बाधित शौर्य को भली प्रकार व्यक्त किया है। परन्तु हनूमान के द्वारा सीता का समाचार प्राप्त कर लेने पर राम की भ्रुकुटि चढ़ जाती है और उन्होंने वीर भाव से अपने धनुष को इस प्रकार देखा कि मानो वह प्रत्यंचावाला हो गया (१ : ४५)। अर्थात् राम के सम्मुख रावण को पराजित करने का एक मात्र उद्देश्य स्थिर हो गया। कवि ने राम की दृष्टि संचालन मात्र से युद्ध-यात्रा की आज्ञा प्रचारित करायी है जिससे राम का दृढ़ संकल्प स्पष्टतः परिलक्षित होता है :—

सोह व्व लक्खणमुहं वणमाल व्व विअडं हरिवइस्स उरम्।
कित्ति व्व पवणतणअं आण व्व बलाइँ से विलग्गइ दिट्ठी ॥
१:४८॥

'आदि रामायण' में राम समाचार पाकर सागर पार उतरने के संबंध में सोच विचार करते हैं। यह राम की दूरदर्शिता कही जा सकती है, पर प्रवरसेन के राम में वीरोचित उत्साह विशेष परिलक्षित हुआ है। सागर के सम्मुख राम किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवश्य जान पड़ते हैं, पर अधिकतर यही लगता है कि वे गम्भीर भाव से इस समस्या पर विचार कर रहे हैं। जाम्बवान द्वारा सम्बोधित किये जाने पर भी राम कार्य की धुरी सुग्रीव पर अवलम्बित करते हैं (४ : ४४)। परन्तु इसका भाव यह नहीं है कि राम में आत्मविश्वास की कमी है। वस्तुतः सैन्य के प्रधान सेना पति सुग्रीव हैं, अतएव सागर संतरण का कोई भी उपाय सुग्रीव द्वारा ही कार्यान्वित किया जा सकता है। अन्यथा राम ने स्वयं सागर से प्रार्थना का भार लिया, और सागर के न मानने पर बाण द्वारा उसको शासित भी किया। और इस बात की घोषणा राम ने प्रारम्भ में ही कर दी है :—

अह णिक्कारणगहिअं मए वि अब्भत्थिओ ण मोच्छिहि धीरम्।
ता पेच्छह बोलीणं विहुओअहिजन्तणं थलेण बइबलम् ॥ ४:४६ ॥

राम वीर होने के साथ ही नीति कुशल हैं। विभीषण का स्वागत उन्होंने

जिन शब्दों में किया है और उसको आश्वासन दिया है, वह इस बात का साक्षी है। राम सीता को पूर्णतः प्रेम करते हैं। सीता वियोग में वे पीड़ित और दुःखित भी हैं। परन्तु प्रवरसेन ने राम के चरित्र में वियोग-जन्य कातरता का निर्वाह उनकी वीरता के साथ बहुत कौशल के साथ किया है। राम एकान्त तथा निष्क्रियता के क्षणों में ही कातर तथा दुःखी होते हैं। वह चाहे शरद-ऋतु का सुन्दर वातावरण हो अथवा प्रायोपवेशन के समय चन्द्र-दर्शन हो, राम सीता के वियोग का अनुभव करते हैं, परन्तु कार्य करने के अवसर पर तुरंत क्रियाशील हो जाते हैं। रात में उनके लिए सीता-वियोग को झेलना कठिन हो जाता है, परन्तु दिन युद्ध की कल्पना (उद्यम) में बीत जाता है। राम सीता के बिना अपना जीवन-शून्य मानते हैं :—

काहिइ पिअं समुद्दो गलिहिइ चन्दाअवो समप्पिहिइ णिसा।
अवि णाम धरेज्ज पिआ ओ णे विरहेज्ज जीवि अं तिविसरणो॥
५:४॥

परन्तु राम को अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास है, 'आज्ञा मानकर समुद्र मेरा प्रिय करेगा ही' से यही भाव व्यंजित होता है। नाग-पाश में बँधे हुए राम अवश्य निराशा की भावना से निर्बल जान पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार की निष्क्रियता की परिस्थिति में प्रवरसेन के राम की उद्विग्न हो उठने की प्रवृत्ति है। साथ ही इस प्रकार के प्रयोगों से चरित्र में सहज व्यक्तित्व की स्थापना की जा सकी है। ऐसी ही बातों से इस महाकाव्य में राम का चरित्र अधिक मानवीय बन पड़ा है।

राम के चरित्र में क्षमाशीलता तथा अपने प्रियजनों की प्रति कृत-ज्ञता की भावना विशेष रूप से पाई जाती है। राम अपने शत्रु पर भी उसी सीमा तक क्रुद्ध रहते हैं जब तक वह हठ करता है, एक बार प्रणत हो जाने पर राम समुद्र के अपराधों को भूल जाते हैं। इसी प्रकार नाग-पाश में बद्ध होने की स्थिति में राम अपनी विवशता के साथ लक्ष्मण के मरण के विश्वास के कारण, अत्यंत मानसिक क्लेश में पड़ जाते हैं।

इस स्थिति में वे सीता को भी भूल गये, पर लक्ष्मण के स्नेह, सुग्रीव की मित्रता तथा विभीषण को दिये हुए वचन को नहीं भूलते हैं (१४: ४६-४७)। रावण की मृत्यु के बाद राम उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया की व्यवस्था करवा देते हैं। यह उनके चरित्र की महानता ही है।

'सेतुबन्ध' में सीता नायिका हैं। वस्तुतः सेतु-रचना तथा रावण-वध की प्रमुख घटनाओं का केन्द्र सीता ही हैं। इस महाकाव्य में सीता का चरित्र अनेक बार सामने नहीं आया है। वस्तुतः राम के माया-शीश के प्रसंग में ही सीता प्रत्यक्ष रूप में सामने आती हैं। पर सीता की भावना सारे महाकाव्य में परिव्याप्त है, क्योंकि इस काव्य की समस्त कार्य-योजना में वे प्रमुख प्रेरणा के रूप में विद्यमान हैं। रावण के अशोक-वन में वन्दिनी सीता की विरह-वेदना तथा उनके मलिन स्वरूप की कल्पना प्रवरसेन ने प्रथम सर्ग में हमारे सामने साकार कर दी है। हनूमान द्वारा स्मृति-चिह्न के रूप में लाई गई मणि के वर्णन में कवि ने सीता के विरहिणी रूप को प्रत्यक्ष कर दिया है :—

चिन्ताहअप्पहं मिव तं च करे खेअणीसहं व णिसण्णम ।
वेणीबन्धणमइलं सोआकिलन्त व से पणामेइ मणिम् ॥१:३९॥

सीता के क्लेश की भावना ने राम को युद्ध के लिए निरन्तर प्रेरित किया है। सीता के प्रति रावण के अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिए राम स्वयं ही रावण से युद्ध करना चाहते हैं और उसका वध भी स्वयं ही करना चाहते हैं। इसके बिना राम को सन्तोष नहीं, वे सीता के अपमान का प्रतिकार इसी में मानते हैं :—

दसकण्ठं मुहवडिअं केसरिणो वणगअं व मा हरह महम् ॥१५:६१॥

राम के इस संकल्प में सीता के चरित्र की दृढ़ता भी परिलक्षित होती है। सीता राम के प्रति अपने प्रेम में दृढ़ हैं। स्वयं रावण स्वीकार करता है :—

कह विरहप्पडिऊला होहिइ समुहहिअआ पइम्मि उवगए ॥ ११:२६ ॥

'कमलिनी वैसे भी चन्द्रमा को नहीं चाहती, फिर सूर्य को देख कर कैसे चाहेगी ?' रावण ने सीता को वश में करने के लिए सभी उपायों का आश्रय लिया होगा, पर अन्त में वह समझ जाता है कि सीता त्रिभुवन के वैभव से भी लुभाई नहीं जा सकती है और उसको शरीर नाश की चिन्ता भी भयभीत नहीं कर सकती। रावण के इस विश्वास में सीता का चरित्र अधिक उभर कर सामने आता है। राम के मायाशीश के प्रसंग में कवि ने प्रारम्भ में सीता का अत्यन्त करुण चित्र अंकित किया है। अशोक-वन में सीता किस त्रास, आतंक तथा क्लेश में अपने दिन बिता रही हैं, इसका आभास इस चित्र से मिल जाता है। उनका वेणीबन्ध पीठ के पीछे बिखरा हुआ है, उनका वक्ष अश्रुप्रवाह से प्रक्षालित हो गया है, बाल रूखे हैं, मुखमण्डल आँसू से धुले अलकों से ढका हुआ है। और सीता की सूनी दृष्टि में उनका विरह, उनका दैन्य तथा उनकी प्रतीक्षा न जाने कितने करुण भाव अभिव्यक्त होते हैं :—

थोअमउआअअद्विअपिअअमगअहिअअसुएणणिच्चलणअणम् ।
कइवलसद्दाअण्णणवाहतरङ्गपरिघोलमाणपहरिसम् ।। ११:४२ ।।

वानर सैन्य के कोलाहल को सुन कर अपने प्रिय के सामीप्य का अनुभव करती हुई सीता का हर्षातिरेक में अश्रुप्रवाह करना स्वाभाविक है।

कवि प्रवरसेन ने सीता का चित्रण साधारण नारी के स्तर पर ही किया है। युद्ध के सम्बन्ध में उनकी चिन्ता से यह स्पष्ट है। राम के पराक्रम पर उनको विश्वास है और इस भाव से उनके मन का संताप शान्त हो गया है, पर रावण की कल्पना से वे चिन्तित और व्याकुल भी कम नहीं हैं। इसी मानसिक पृष्ठिभूमि के कारण जब रावण की आज्ञा से राक्षस राम का मायाशीश सीता के सम्मुख लाये, उसको देखते ही वे म्लानमुख हो गईं, समीप लाये जाने पर काँपने लगीं और यह कहे जाने पर कि यह राम का शीश है, वे मूर्च्छित हो गईं (११:५३)। इस बात पर इतनी आसानी से विश्वास कर लेने के कारण सीता के चरित्र को कमज़ोर कहा जा सकता

है। परन्तु मानवीय हृदय के लिए यह बहुत स्वाभाविक परिस्थिति है। सीता जिस मानसिक उत्पीड़न तथा वेदना की स्थिति में थीं, उसमें इस प्रकार की माया का प्रभाव ऐसा ही पड़ना संभव था। सीता का राम की अपराजेय शक्ति के प्रति सन्देहशील हो उठना, इस मानसिक स्थिति में उचित है। इसको मूल चरित्र की निर्बलता नहीं कहा जा सकता, वरन् परिस्थिति की विशिष्टता ही मानना चाहिए। अपने प्रिय के कटे हुए सिर की कल्पना मात्र से कोई भी स्त्री इतनी अभिभूत हो उठेगी कि उसमें अधिक तर्क करने की शक्ति नहीं रह जायगी। यही कारण है कि त्रिजटा के समझाने से भी सीता के मन का आवेग कम नहीं होता। सीता के विलाप में अनन्त करुणा है। उनको पश्चात्ताप है कि इस स्थिति में प्रिय को देख कर भी वह प्राण धारण किये हुए है। वियोग के बाद ही यदि जीवन का अन्त हो जाता तो प्रिय का मिलन हो ही जाता, यह भावना उनके मन को मथ रही है। सीता प्राण धारण किये रहने की अपनी कठोरता को स्त्री स्वभाव का त्याग मानती हैं। अपनी प्रस्तुत स्थिति के कारण रूप रावण के प्रति उनके मन में अत्यन्त घृणा है। सीता के मन की प्रतिशोध की भावना इस अवसर पर भी वर्तमान है। राम के मरने के बाद सीता के मरण का मार्ग प्रशस्त हो गया है, पर इस स्थिति में भी सीता को रावण-वध न हो सकने का दुःख हो रहा है। प्रतिशोध पूरा न हो सकने का क्लेश भी सीता को कम नहीं है :—

तुह वाणुक्खअणिहअं दच्छिम्मि दहकण्ठमुहणिहाअं ति कआ।
मह भाअधेअवलिआ विवराहुत्ता मणोरहा पल्हत्था ॥११ : ८५॥

त्रिजटा कई तर्कों से सीता को समझाने का प्रयत्न करती है कि यह राम का सिर माया द्वारा निर्मित है। पर सीता का विलाप कम नहीं होता, उनकी व्यथा दूर नहीं होती। वे मरण के लिए कृतसंकल्प होती हैं। त्रिजटा ने गम्भीर शब्दों में पुनः सीता को समझाने का प्रयत्न किया। इतने विश्वास भरे वचनों का भी सीता पर प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने उसकी बात पर तभी विश्वास किया कि जब वानरों का कलकल और

राम का प्राभातिक मंगल-पटह सुना। इस अवसर पर सीता के चरित्र को आवश्यकता से कुछ अधिक भावावेश में चित्रित किया गया है जिससे वह निर्बल जान पड़ता है।

राम के साथ उनके प्रतिनायक रावण का चरित्र राम-कथा की विस्तृत परम्परा का प्रधान चरित्र है जिसका मूल 'आदि रामायण' ही माना जाता है। व्यापक रूप में समान होते हुए-भी 'सेतुबन्ध' का रावण 'आदि रामायण' के रावण से भिन्न है। वाल्मीकि ने रावण की उग्र-वीरता, मायावी राक्षसत्व आदि पर अधिक बल दिया है। उसने सीता का अपहरण विशेष परिस्थिति में किया है। सीता को वह अपनाना भी चाहता है। परन्तु 'सेतुबन्ध' के रावण में सीता के प्रति अत्यन्त उग्र आकर्षण है। कथा में ऐसा जान पड़ने लगता है, जैसे रावण के सीता-अपहरण का एक मात्र उद्देश्य सीता के प्रति उसका आकर्षण है। वह कामुक प्रेमी के रूप में अधिक उपस्थित किया गया है। ग्यारहवें आश्वास के प्रारम्भ में सीता-विषयक उसकी काम-व्यथा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। सीता के सम्बन्ध में उसकी यह वेदना तीखी और गहरी है। जैसे उसको बिना सीता को प्राप्त किये किसी प्रकार चैन नहीं है। सीता के प्रति उत्कट प्रेम होने के कारण ही रावण राम को सम्मान की भावना से देखता है :—

सीआहिअहि अएण अ अह सो त्ति दसाणणेण सारहिसिट्ठो।
ण वि तह रामो त्ति चिरं अह तीअ पिओ त्ति सुबहुमाणं दिट्ठो॥
१५:६॥

परन्तु प्रवरसेन ने रावण को अपेक्षाकृत निर्बल चरित्र और कायर दिखलाया है। वैसे राम के समान रावण ने भी कभी सन्धि की बात नहीं सोची है और राम को पराजित करने का विश्वास उसके मन में अन्त तक बना रहा है। कई स्थलों पर ऐसा जान पड़ता है रावण राम से भयभीत है और लंका में उनके प्रवेश पर काँप उठा है। दशवें आश्वास में कहा गया है कि राम के आगमन का समाचार सुन कर

क्रुद्ध हो उठा रावण धैर्य्यहीन होकर आक्रान्त शिखरों वाले सुवेल के साथ ही काँप उठा। परन्तु यहाँ रावण का काँपना शत्रु के प्रति क्रोध की भावना तथा उसके आतंक दोनों की मिश्रित भावना से उत्पन्न है। साथ ही शत्रु का सागर पर सेतु बाँध लेने का समाचार निश्चय ही रावण जैसे वीर के लिये भी आतंक का विषय हो सकता है। इसी प्रकार ग्यारहवें आश्वास में त्रिजटा सीता से कहती है :—

मोत्तूण अ रहुणाहं लज्जागअसेअबिन्दुइज्जन्तमुहो।
केण व अण्णेण कअ पाआरन्तरिअणिप्पहो दहवअणो॥
११:१२५॥

परन्तु इस स्थिति में त्रिजटा के वचनों के आधार पर रावण के चरित्र की विवेचना नहीं की जा सकती है। वह सीता को समझाने के उद्देश्य से कह रही है और रावण के लज्जाजनक कार्य से वह असन्तुष्ट भी है।

लेकिन प्रवरसेन के रावण के चरित्र में कायरता का अंश जड़मूल है, इसमें सन्देह नहीं। पन्द्रहवें आश्वास में अपने वंशजों तथा परिजनों की मृत्यु से दुखित और क्रुद्ध होकर रावण युद्ध-भूमि के लिए प्रस्थान करता है। युद्ध में जाने के लिए ऐसा जान पड़ता है वह टालता है। इस बार युद्ध में राम के बाणों से भयभीत होकर वह लंका भाग आता है। भागते समय वानरों की हँसी को वह चुपचाप सह लेता है :—

अह रामसराहिअओ पवएहि परंमुहोहसिज्जन्तरहो।
छिण्णपडिआअवत्तो लङ्काहिमुहो गओ णिसाअरणाहो॥१५:१०॥

परन्तु जब वह युद्ध में प्रवृत्त होता है तब राम का समर्थ प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होता है। उसके बाणों से त्रिभुवन के साथ राम कम्पित हो गये। कवि ने राम-रावण के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन किया है, पर यह प्रदर्शित किया है कि वे समान योद्धा हैं। राम रावण के साथ युद्ध करने में गौरव का अनुभव करते हैं, क्योंकि उन्होंने लक्ष्मण को रावण से युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी, वे स्वयं रावण से युद्ध करना चाहते हैं। प्रवरसेन ने युद्ध करते हुए रावण की वीरता को स्वीकार किया है :—

भिण्णो णिडालवट्टो ण अ से फुडभिउडिविरअणा विद्दविआ ॥
१५:७१॥

मस्तक कट जाने पर भी रावणकी भ्रुकुटियाँ चढ़ी की चढ़ी रहती हैं। वह राम पर बाणों की भीषण वर्षा करता है और राम के बाणों का तीखा उत्तर भी देता है।

रावण के चरित्र में उदारता भी है, और यह गुण 'आदि रामायण' में भी विद्यमान है। रावण सीता का अपहरण करने के बाद भी उन पर बल प्रयोग नहीं करता। वह सीता को प्रसन्न किये बिना अपनाना नहीं चाहता। यह बात दूसरी है कि सीता से अपनी बात स्वीकार करवाने के लिए उसने अनेक मायावी उपायों का आश्रय लिया। उसके हृदय में कोमलता भी है। वह अपने परिवार और परिजनों से स्नेह करता है। वह अपने सेनापतियों की मृत्यु पर दुःखी तथा क्रुद्ध होता है। इन्द्रजीत तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु पर वह रोया है और विलाप करता है। यद्यपि विभीषण ने उसके साथ विश्वासघात किया है, पर वह उस पर दया ही करता है। सामने आ जाने पर भी रावण अपने इस भाई पर घातक प्रहार नहीं करता :—

पासावडिअम्मि वि से विहीसणे पवअसेण्णकअपरिवारे।
दीणो त्ति सोअरो त्ति अ अमरिसरससन्धिओ वि उल्ललइ सरो ॥१५:४५॥

'सेतुबन्धु' की एक विशेषता यह भी है कि इस महाकाव्य में प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त अन्य चरित्रों को भी समान महत्त्व मिल सका है। वस्तुतः प्रवरसेन ने अपने काव्य में कथा-वस्तु के विकास को दृष्टि में सदा रखा है। इसी कारण कथात्मक योजना में आनेवाले सभी पात्रों का चरित्र अपने-अपने स्थान पर सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मण सुग्रीव, हनूमान, जाम्बवान्, विभीषण आदि ऐसे चरित्र हैं जिनको कवि अपने महाकाव्य में व्यक्तित्व प्रदान कर सका है। यही नहीं नल जैसे 'रामायण' के अप्रमुख चरित्रों को कवि ने किंचित स्पर्श मात्र से स्पन्दित कर दिया है। लक्ष्मण राम-कथा के अपरिहार्य चरित्र हैं। राम जैसे लक्ष्मण

के बिना अधूरे रह जाते हैं। इस महाकाव्य में लक्ष्मण का चरित्र इस दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं प्राप्त कर सका है, पर वह राम की छाया के समान उनके साथ हैं। सबसे पहले लक्ष्मण का उल्लेख कवि उस स्थल पर करता है जब उसने राम की लंकाभियान की भावना से प्रेरित दृष्टि का वर्णन किया है। 'राम की दृष्टि वानरराज सुग्रीव के कठोर वक्षस्थल पर वनमाला की तरह, पवनसुत हनूमान पर कीर्ति के समान, वानर सेना पर आज्ञा की भाँति तथा लक्ष्मण के मुख पर शोभा की तरह पड़ी' (१:४८)। वस्तुतः यहाँ इस प्रकार लक्ष्मण के वीर स्वभाव को अभिव्यक्त किया गया है। कथा के विस्तार में लक्ष्मण अधिकतर मौन हैं और यह कुछ खटकता है। सागर दर्शन करके लक्ष्मण बिल्कुल विचलित नहीं होते। आगे चलकर युद्ध में राम के साथ लक्ष्मण भी नागपाश में मेघनाद द्वारा बाँध दिये जाते हैं। नागपाश में बँधने के समय राम-लक्ष्मण के बाधित शौर्य का वर्णन साथ ही किया गया है :—

ताण भुअङ्गपरिगआ दुक्खपहुव्वन्तविअडभोगावेढा।
जाआ थिरणिक्कम्पा मलअअडुप्पण्णचन्दणदुम व्व भुआ ॥१४:२५॥

राम मूर्च्छा से जागने के बाद लक्ष्मण को संज्ञाहीन देख कर जिस प्रकार विह्वल हो उठते हैं उससे भाई के प्रति उनके प्रेम का परिचय मिलता है। राम ने लक्ष्मण के सम्बन्ध में उस अवसर पर जो कुछ कहा है उससे भी उनके अप्रतिम शौर्य का परिचय मिलता है—'जिसके धनुष की प्रत्यंचा के चढ़ने पर त्रिभुवन संशय में पड़ जाता था' (१४:४३)। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध के प्रसंग का कवि ने सूचना के रूप में उल्लेख भर कर दिया है। अन्त में लक्ष्मण राम से रावण-वध के लिये आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए उपस्थित किये गये हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि 'आप किसी महान शत्रु पर क्रोध करें, तुच्छ रावण पर क्रोध न करें' (१५:५४)। सम्पूर्ण महाकाव्य में लक्ष्मण के उत्साह का एक यही क्षण कवि ने उपस्थित किया है।

'सेतुबन्ध' में सुग्रीव का चरित्र महत्त्वपूर्ण है। कवि ने सुग्रीव को

सम्पूर्ण वानर सेना का सेनापति मान कर उनका चरित्र प्रस्तुत किया है। सुग्रीव कपिराज भी है, परन्तु यहाँ उसका महत्व सेनानी के रूप में अधिक है। सुग्रीव को राम ने बालि-वध के बाद किष्किन्धा का राजा बनाया है। और सुग्रीव राम के उपकार को कभी नहीं भूलते, वह उससे उऋण होने के लिए सदा चिन्तित हैं। हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिल जाने पर राम लंकाभियान की इच्छा से धनुष को देखते हैं, उस समय सुग्रीव का हृदय बदला चुका सकने की भावना से उच्छ्वसित हो उठता है (१:४६)। इसी प्रकार रावणवध के बाद सुग्रीव अपने प्रत्युपकार को सम्पन्न हुआ जान सन्तुष्ट होते हैं :—

णिहअम्मि अ दहवअणे आसंवन्तेण जणअतणआलम्भम्।
सुग्गीवेण वि दिट्ठो पच्चुबअरस्ससाअरस्स व अन्तो ॥१५:९२॥

सुग्रीव वानर सैन्य के प्रधान सेनापति है। सेना संचालन की प्रत्येक आज्ञा राम सुग्रीव द्वारा ही प्रचारित कराते हैं। वह बहुत सफल सेनापति के रूप में उपस्थित किये गये हैं। सुग्रीव में ओजस्वी भाषण देने की अपूर्व क्षमता है। उसमें अपने बल-पराक्रम को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति भी है, पर सेना को निराशा के क्षणों में उत्साहित करने के लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। सागर के विराट विस्तार को देख कर वानर-सेना निराश तथा हतोत्साह हो जाती है। इस अवसर पर वानरराज ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण दिया है। वानर सेना के सम्मुख अनेक पक्ष रखकर सुग्रीव ने यह प्रभाव डालना चाहा कि सागर-संतरण तथा युद्ध के अतिरिक्त उसके सामने दूसरा मार्ग नहीं है। फिर अपने पराक्रम के वर्णन द्वारा वह अपनी सेना में आत्मविश्वास का संचार करते हैं। परन्तु सुग्रीव के स्वभाव में अहम्मन्यता तथा जल्दबाज़ी भी है। वह उत्साह में बात को बढ़ाकर कहते हैं, यह प्रवृत्ति उनके स्वभाव में सर्वत्र परिलक्षित होती है। राम-लक्ष्मण के नागपाश में बँध जाने के अवसर पर सुग्रीव अपने उत्साह को इन्हीं शब्दों में व्यक्त करते हैं :—

इअ अज्जं चेअ मए णिहअम्मि दसाणणे णिआ किक्किन्धम् ।
अणुमरिहिइ व मरन्तं दच्छिहि व जिअन्तराहवं जणअसुआ ॥
१४:५५॥

परन्तु प्रवरसेन ने इस प्रकार के भाषणों के बहुत उपयुक्त अवसर चुने हैं। सेना में जब निराशा और हतोत्साह फैला हो उस समय सेनापति के इस प्रकार के वचनों का बहुत प्रभाव पड़ सकता है।

इस महाकाव्य में हनूमान का चरित्र अत्यन्त गंभीर, संयत और वीर चित्रित किया गया है। कथावस्तु में हनूमान के आगमन से गति आती है। इस पात्र के प्रति वानर सेना का आदर भाव होना स्वाभाविक है। हनूमान ने अकेले सागर पार जाकर सीता का समाचार प्राप्त किया है। वानर सेना ने जब सागर को सामने फैला हुआ देखा तब उनका यह भाव अधिक स्पष्ट होकर व्यक्त हुआ है :—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्हअरसत्थिमिओ ।
हणुमन्तम्मि णिवडियो सगोरवं वाणराण लोअणणिवहो ॥२:४३॥

इसी प्रकार जाम्बवान् का चरित्र एक अनुभवी गंभीर व्यक्ति का है। सुग्रीव को जिन शब्दों में उन्होंने समझाया, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि उनमें अनुभव की गहराई के साथ सन्तुलन की शक्ति भी है। उन्होंने सुग्रीव को अत्यंत उत्साह से रोका है। इसी प्रकार वह राम को उनकी शक्ति का स्मरण दिलाते हैं। उनकी वाणी में शालीनता और मर्यादा का गौरव ध्वनित होता है। नल के चरित्र में भी उचित मर्यादा है। जब तक उससे सेतु-निर्माण के लिए कहा नहीं जाता, वह अपनी शक्ति और कौशल के विषय में कुछ कहने में संकोच करता है। परन्तु आज्ञा पाकर वह अपनी शक्ति का उद्घोष आत्मविश्वास भरे शब्दों में करता है :—

तं पेक्खसु महिविअलं महिवट्टम्मि व महं महोअहिवट्ठे ।
घडिअं घडन्तमहिहरघडिअसुवेलमलन्तरं सेउवहम् ॥८:२१॥

'सेतुबन्ध' में विभीषण का चरित्र उज्ज्वल नहीं है। वह रावण के

पास से शत्रुपक्ष में चला आता है। यह ठीक है कि वह भक्त है और अन्याय के विपक्ष में है, परन्तु उसके मन में राज्याभिलाषा अधिक प्रत्यक्ष है। राम ने उसको इस इच्छा के माध्यम से ही अपना लिया है। यही कारण है कि रावण की मृत्यु पर उसका रुदन और विलाप कृत्रिम जान पड़ता है। राम के सम्मुख हनूमान ने विभीषण को प्रस्तुत किया, और राम ने विभीषण को सात्विक प्रकृति का कहा और प्रशंसा की। पर हम यह नहीं भूल सकते कि सिर पर अभिषेक के जल के साथ विभीषण के नेत्रों में आनन्दोल्लास भी छा गया (४:६४)। आगे इस बात को समझना भी सरल हो जाता है। अत्यन्त पीड़ा और निराशा की स्थिति में भी राम को विभीषण के सम्बन्ध में यही दुःख है कि रावण की राजलक्ष्मी उसको नहीं मिल सकी :—

आबद्धबन्धुवेरं जं मे ण णिआ विभीसणं राअसिरी।
दुक्खेण एण अ महं अविहाविअबाणवेअणरसं हिअअम्॥१४:४७॥

इस प्रकार विभीषण के चरित्र की प्रमुख विशेषता यही लगती है कि उसने राज्य प्राप्त करने के लिए ही राक्षस-कुल के प्रति विश्वासघात किया। उसने अनेक रहस्यों का उद्घाटन करके राम की सहायता की है। यद्यपि विभीषण रावण-वध पर विलाप करते हुए कहता है कि तुम्हारा पक्ष न ग्रहण करने वाला मैं यदि धार्मिक गिना जाऊँगा तो अधार्मिक कौन गिना जायगा, पर यह अपने आप पर किया गया व्यंग जान पड़ता है।

'सेतुबन्ध' में प्रत्येक पात्र सजीव हैं। उनका अपना व्यक्तित्व है। राम-कथा के प्रसिद्ध और प्रचलित पात्र होकर भी वे सभी प्रवरसेन की उद्भावना के पात्र एक सीमा तक जान पड़ते हैं। जिस प्रकार कवि ने कथात्मक घटनाओं की योजना में सफलता प्राप्त की है उसी प्रकार चरित्रों के निर्माण में भी।

कथोपकथन

महाकाव्यों में कथोपकथन का महत्त्व नाटक के समान नहीं होता है, फिर भी कवियों ने इसका सुन्दर प्रयोग

तथा भाषणशैली किया है। महाकाव्यों के चित्रांकन तथा वर्णना के अन्तर्गत कथोपकथन का प्रयोग आकर्षक बन जाता है। साथ ही पात्रों के चारित्रिक विकास की दृष्टि से इसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है। अन्य प्रयोगों के समान महाकाव्यों के विकास काल में कथोपकथन का प्रयोग अधिक स्वाभाविक तथा सहज रूप में हुआ है, परन्तु बाद के परम्परावादी महाकाव्यों में इसका प्रयोग रूढ़िग्रस्त होता गया है। चारित्रिक विकास के स्थान में इसका उद्देश्य चमत्कृत उक्तियाँ रह गया है। कालिदास के महाकाव्यों में वार्तालाप का स्तर स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है। कालिदास स्वयं उच्चकोटि के नाटककार हैं, यही कारण है कि कथोपकथन का सुन्दर प्रयोग वे अपने महाकाव्यों में भी कर सके हैं। कालिदास अपनी अन्तर्दृष्टि से मानवीय जीवन की सूक्ष्म परिस्थितियों को समझ सकने में समर्थ हुए हैं और वार्तालाप में उनको सजीव भी कर सके हैं। 'सेतुबन्ध' महाकाव्य कथोपकथन तथा भाषण शैलियों की दृष्टि से कालिदास के अधिक निकट है। प्रवरसेन ने भी जीवन के अधिक सहज स्तर पर कथोपकथनों को प्रस्तुत किया है। अपनी गहन चित्रांकन शैली के बीच में कवि ने वार्तालाप तथा भाषणों को स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत कर दिया है, जिससे कथावस्तु में एकरसता नहीं आने पाई है और चरित्रों के निर्माण में पूरी सहायता मिली है।

प्रवरसेन भावात्मक परिस्थितियों के सफल कलाकार हैं, यह बात उनके कथोपकथनों से भी सिद्ध हो जाती है। कवि ने हनूमान के आने की परिस्थिति को लिया है, हनूमान राम से सीता का समाचार कह रहे हैं, पर राम पर प्रत्येक बात का भिन्न प्रभाव पड़ता है; हनूमान ने कहा—'मैंने देखा है', इस पर राम को विश्वास नहीं हुआ। हनूमान ने फिर बतलाया—'सीता क्षीण शरीर हो गई हैं', यह जान कर राम ने अश्रु से आकुलित होकर गहरी साँस ली। और जब हनूमान ने समाचार दिया—'सीता तुम्हारी चिन्ता करती हैं', प्रभु रोने लगे। तथा हनूमान ने

सूचना दी—'सीता सकुशल जीवित हैं', यह सुन कर राम ने हनूमान का गाढ़ालिंगन किया (१ : ३८)। यहाँ हनूमान के प्रत्येक वाक्य का राम पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव अभिव्यंजित किया गया है। इस संक्षिप्त वार्तालाप में कवि ने भावात्मक परिस्थिति को प्रत्यक्ष कर दिया है। कार्य को गति देने की दृष्टि से कवि ने इस अवसर पर अधिक कथोपकथन का आश्रय नहीं लिया है।

सागर-तट पर एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न होती है। सागर के विराट रूप को देख कर सारा कपि-सैन्य हतोत्साह होकर स्तब्ध रह जाता है। ऐसे अवसर पर सेना के प्रधान नायक सुग्रीव पर गम्भीर उत्तरदायित्व आ पड़ता है। सारी सेना को उत्साहित करके कार्य में नियोजित करना है। सुग्रीव ने इसी प्रयोजन से तीसरे आश्वास में लम्बा भाषण दिया है। वस्तुतः यह भाषण बहुत ही सफल है, इसकी तर्कशैली तथा ओजस्विता में बहुत अधिक आग्रह और प्रभाव है। सुग्रीव वानर वीरों के शौर्य की प्रशंसा करके उनमें आत्मविश्वास जगाना चाहते हैं, राम की शक्ति का स्मरण दिला कर उनके मन से भय और सन्देह दूर करना चाहते हैं, हनूमान के बल पराक्रम का उल्लेख कर उनको वर्तमान मनःस्थिति के प्रति लज्जित करके उत्साहित करने का प्रयत्न करते हैं, कार्य सम्पादन से प्राप्त होने वाले यश का उल्लेख करके उनको आकर्षित करना चाहते हैं तथा वापस लौट जाने की लज्जा की भावना उनके मन में जगाने का उपक्रम करते हैं। इस प्रकार वानर सैनिकों के मनोभावों को पूर्णतः आक्रान्त करके सुग्रीव उनको कार्य में लगाना चाहते हैं, और यही श्रेष्ठ वक्तृता की मूल प्रेरणा होती है। सुग्रीव कहते हैं—'इस दुःसाध्य और गुरु कार्य को राम ने पहले हृदय रूपी तुला पर तौला और फिर तुम वानर वीरो पर छोड़ा है।' इस प्रकार एक ओर सुग्रीव राम के सामर्थ्य को प्रकट करते हैं और दूसरी ओर—'हे वानर वीरो, प्रस्तुत कार्यभार तुम्हारा ही है' कह कर उनकी वीरता की प्रशंसा भी करते हैं। वे वानर-वीरो को इस बात का स्मरण भी दिलाते हैं कि राम तुम्हारा उपकार

करनेवाले हैं। वीर पुरुषों के चरित्र की व्याख्या करते हुए सुग्रीव सैनिकों को जैसे चुनौती देते हैं :—

सीहा सहन्ति बन्धं उक्खअदाढा चिरं धरेन्ति विसहरा।
ण उण जिअन्ति पडिहआ अक्खरिडअववसिआ खणं पि समत्था॥
३ : २२॥

सुग्रीव ने वानर वीरों से घर वापस लौट जाने की लज्जा को विशेष व्यंजना के साथ कहा है—'बिना कार्य सम्पादित किये वापस लौटे आप लोग दर्पण के समान निर्मल, अपनी पत्नियों के मुख पर प्रतिविम्बित विषाद को किस प्रकार सहन करेंगे ?' इस तर्क में गहरी मार्मिकता है, भागे हुए योद्धा की पत्नी उसका स्वागत नहीं कर सकेगी और इस प्रकार की प्राणरक्षा से क्या लाभ ? फिर सुग्रीव सेना को यह भी विश्वास दिलाते हैं कि सागर दुस्तर नहीं हैं, वरन् वीर के लिए लज्जा का लाँघना ही अधिक कठिन है। इस प्रकार अनेक तर्कों से वह वानर सेना के भय को दूर करना चाहता है और उसमें आत्मविश्वास जगाना चाहता है (३-५०)। परन्तु जब इस पर भी सेना का सम्मोह भंग नहीं हुआ, तब सुग्रीव ने गर्वोक्ति के साथ आत्म-शक्ति का कथन प्रारम्भ किया। यह अन्तिम उपाय है जिससे वह समस्त सेना में उत्साह भर सका है। प्रारम्भ वह भर्त्सना से करता है :—

इअ अत्थिरसामत्थे अण्णस्स वि परिअणम्मि को आसङ्गो।
तत्थ विणाम दहमुहो तस्स ठिओ एस पडिहडो मज्झ भुओ॥
३ : ५३॥

उसका भाव है कि तुम्हारे जैसे परिजनों का भरोसा करके कोई सेनापति विजय प्राप्त नहीं कर सकता। आगे वह वानर सेना की स्थिति पर तीखा व्यंग करता है—'जहाँ प्राण-संशय की स्थिति में भयवश लोग एक दूसरे से चिपके हुए हैं, कौन किसका सहायक हो सकता है ?' फिर अपने ऊपर भरोसा करने की बात कहता है। अपने पराक्रम के कथन में अत्युक्तिपूर्ण गर्वोक्ति है, पर परिस्थिति को देखते हुए यह अस्वाभाविक

नहीं जान पड़ती—'हे वानर वीरो, किंकर्तव्यविमूढ़ न हो! मेरे रोषयुक्त चरणों से आक्रान्त पृथ्वीतल जिधर नत होगा उधर समुद्र फैल जायगा' (३:५१-६३)। इस प्रकार की आत्मश्लाघा में वानर सैन्य को उत्साहित करके कार्य में नियोजित करने का प्रयत्न छिपा हुआ है।

सुग्रीव की ओजस्वी तथा दर्पपूर्ण वाणी से निराश तथा हतोत्साहित वानर सैन्य में उत्साह और आत्मविश्वास का जागरण तो हुआ, पर सागर-संतरण का यह कोई उपाय नहीं था। ऐसी स्थिति में जाम्बवान् गम्भीर तथा संयत वाणी में वास्तविक स्थिति पर विचार करते हैं और सुग्रीव को समझाते हैं। जाम्बवान् के कथन में विचारों की प्रौढ़ता और अनुभवजन्य गम्भीरता परिलक्षित होती है। पहले जाम्बवान् अपने को वयोवृद्ध सिद्ध करते हैं, पर साथ ही उनमें अपनी बात को अधिक बल प्रदान करने वाली नम्रता भी है :—

धीरं हरइ विसाओ विणअं जोव्वणमओ अणङ्गो लज्जम्।

एक्कन्तगहिअवक्खो किं सीसउ जं ठवेइ वअपरिणामो ॥४:२३॥

'एकपक्षी निर्णयबुद्धिवाले बुढ़ापे के पास कहने को बचा ही क्या है' इतना कह कर भी वह अपनी बात को आन्तरिक विश्वास के साथ स्थापित भी करते हैं—'जरावस्था के कारण परिपक्व तथा अनुभूत ज्ञान वाले मेरे वचनों का अनादर न कीजिए; मेरे वचन अपसिद्धान्त की व्याख्या करके भी व्यवस्थित अर्थ वाले हैं' (४:२४)। इस प्रकार अपने कथन की सार्थकता की स्थापना करने के बाद जाम्बवान् ने सुग्रीव की गर्वोक्ति का प्रत्याख्यान किया और उसको कार्य-सिद्धि के लिये अनुपयुक्त सिद्ध किया। अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से उन्होंने सतर्क किया है—'हे वानरपति, राम का प्रिय कार्य है, इस भाव से रावणवध की इच्छा करते हुए तुम उसके लिए स्वयं शीघ्रता करनेवाले रघुपति का कहीं अप्रिय तो नहीं करना चाहते' (४:३६)। सुग्रीव को इस प्रकार समझा कर जाम्बवान् ने राम को कार्य के लिए मार्ग निकालने की प्रेरणा दी है। राम के उत्तर में उनके चरित्र के अनुकूल संयम है, वे कार्य की धुरी सुग्रीव पर ही अव-

लम्बित मानते हैं, पर साथ ही ऋक्षपति के वचनों का भी उचित समादर करते हैं।

राम-बाण से व्याकुल होकर सागर ने जो राम से कहा है उसमें संयम और तर्क का अद्भुत संयोग हुआ है। वह सबसे पहले राम के उपकार का स्मरण करता है, और कहता है कि 'तुमने गौरव प्रदान किया है, स्थिर धैर्य्य का संग्रह किया है, मैं तुम्हारी आज्ञा न मान कर तुम्हारा अप्रिय कैसे करूँगा' (६:१०)। फिर वह अपने प्रति किये गये अन्याय का स्मरण दिलाता है—'हे राम, सदा मुझे ही विमर्दित किया गया है। मधु दैत्य के नाश के लिए निरन्तर संचरणशील गति से और पृथ्वी के उद्धार के समय दाढ़ों के आघात से मैं ही पीड़ित किया गया हूँ' (६:१३)। आगे वह यह भी कहता है कि धैर्य मेरा स्वभाव है और इस समय उसी से यह अप्रिय कार्य हुआ। यह कितना अच्छा तर्क है! अपनी रक्षा के लिये वह और अधिक संगत तर्क देता है :—

अपरिट्ठिअमूलअलं जत्तो गम्मइ तहिं दलन्तमहि अलम्।
ण हु सलिलणिब्भरं चिअ खविए वि ममम्मि दुग्गमं पाआलम्॥
६:१६॥

पानी के सूख जाने पर भी सागर संतरणशील नहीं हो सकता, उसको सेतु द्वारा अधिक सुगमता से पार किया जा सकता है।

वानर सेना असंख्य पर्वतों को सागर में डाल चुकी, पर सागर पर सेतु बनता नहीं दिखाई दिया। तब वानर पति ने चिन्ता प्रकट की, राम के क्रुद्ध हो जाने की संभावना की ओर संकेत किया। सुग्रीव सागर द्वारा सेतु प्रदान न किये जाने पर क्षुब्ध जान पड़ते हैं, इसी कारण राम के बाणों का उल्लेख करते हैं—'सागर के पाताल रूपी शरीर में गहराई से धँसे हुए और उबलते हुए जल से आहत होकर शब्दायमान तथा मन्द शिखावाले राम के बाण अब भी धूमायित हो रहे हैं' (८:१६)। सुग्रीव द्वारा प्रस्तावित होने पर नल ने सेतु-निर्माण सम्बन्धी अपने कौशल को बड़े शालीन ढंग से स्वीकार किया। उसकी वाणी में आत्मविश्वास

है—'महासमुद्र के ऊपर, सुवेल और मलय के बीच पर्वतों को जोड़-जोड़ कर मेरे द्वारा बनाये सेतु पथ को आप सब देखें' (८:२१)। आगे उसकी वाणी मे वीर-दर्प तथा अत्युक्ति का अंश अधिक आ गया है। इस आवेश मे वह मेघो के ऊपर वानरो के संचरण योग्य सेतु-पथ बनाने की बात कह जाता है, पर अन्त मे उसकी वाणी मे संयम पुनः आ जाता है और सेतु-निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया का निर्देश देता है :—

तं मह मग्गा लग्गा विरएह जहाणिओअमुक्कमहिहरा।
अणुवाअदिट्ठदोसं अइराहोन्तसुहबन्धणं सेउवहम् ॥८:२६॥

ग्यारहवें आश्वास मे रावण के मन का तर्क-वितर्क दिया गया है, जिसमे उसके मन की स्वाभाविक स्थिति है। काम-पीड़ा से उद्वेजित होकर वह समीप आये हुए वानर सैन्य पर कुपित होता है, क्योकि उसकी इच्छा में बाधा उपस्थित होने का सीधा कारण वही जान पड़ता है। वह सोचता है—'पति के विरह मे भी प्रतिकूल रहनेवाली सीता भला पति की उपस्थिति मे मेरी ओर आकर्षित होगी' (११:२६)। यह विचार तर्क संगत है। अन्त मे वह हार कर सीता के संमुख राम के माया शीश को उपस्थित करने की बात सोचता है। वह राक्षसो को अत्यन्त संक्षिप्त आज्ञा देता है। आगे इसी आश्वास मे सीता का विलाप है। राम के माया शीश को देख कर पहले सीता मूर्च्छित हो जाती है, बाद मे उनको होश आता है तो वे अत्यन्त करुण विलाप करती है। सीता का हृदय वेदना से अभिभूत हो गया है। वे सोचती है कि 'इस दुःख का आरम्भ ही भयंकर है, अन्त होना तो अत्यन्त कठिन है' (११:७५)। उनको विगत जीवन की सुधि आती है—'घर के निकलने के समय से ही आरम्भ तथा अश्रु प्रवाह से ऊष्ण अपने हृदय के दुःख को, सोचा था, तुम्हारे हृदय से शात करूँगी, पर अब किसके सहारे उसे शात करूँ' (११ : ७७)। उनको सबसे अधिक ग्लानि यही है कि ऐसी स्थिति मे भी वे जीवित है क्योकि उनको विश्वास है कि 'तुम्हारा मिलन हो जाता यदि इस जीवन का अन्त हो जाता' (११ : ८०)। उनके मन

में भर्त्सना का भाव है कि 'स्त्री-स्वभाव को त्याग देनेवाली मुझ जैसी की कोई बात भी नहीं करेगा' (११ : ८४)। इस विलाप में स्त्रीजन सुलभ कोमल संवेदना के चरित्र के अनुरूप गरिमा भी है। त्रिजटा ने सीता को समझने में तर्क तथा गहरी सहानुभूति का आश्रय लिया है। उसने प्रारम्भ में ही स्त्री मात्र के भीरु स्वभाव का उल्लेख करके अपनी बात के लिये आधार प्रस्तुत किया है :—

अवरिगलिओ विसाओ अखण्डिआ मुद्धआ ण पेच्छइ पेम्मम्।
मूढो जुवइसहाओ तिमिराहि वि दिणअरस्स चिन्तेइ भअम्॥
११:८८॥

आगे त्रिजटा राम के असाधारणत्व का उल्लेख करती है, प्रमद-वन के श्रीविहीन होने का निर्देश करती है तथा शिव द्वारा भी जिसके कण्ठच्छेद की कल्पना नहीं की जाती है, इस प्रकार के उल्लेखों द्वारा सीता को विश्वास दिलाना चाहती है। वह राक्षसों की माया का उद्-घाटन भी करतो है। परन्तु उसका सबसे प्रबल तर्क है कि 'यह तो राम के प्रति तुम्हारा अनादर भाव है' (११ : ६६) और इससे वह सीता के मन को जीतना चाहती है। सीता की मनःस्थिति ऐसी नहीं है कि वह तर्क समझ सके, वह पुनः उसी प्रकार का विलाप करती है। उसके मन में निराशा-जन्य मरण की प्रबल आकांक्षा जाग्रत हुई है—'हे नाथ, मैंने राक्षसगृह का निवास सहन किया और आपका इस प्रकार का अन्त भी देखा, फिर भी निन्दा से धुधुँआता हुआ मेरा हृदय प्रज्वलित नहीं हो रहा है' (११ : १०४)। जब सीता ने मरण का अन्तिम निश्चय कर लिया, उस समय त्रिजटा ने बड़े ही मार्मिक और मानवीय तर्क का आश्रय लिया :—

जाणइ सिणेह भणिअं मा रअणिअरि त्ति मे जुउच्छसु वअणम्।
उज्जाणम्मि वणम्मि अ जं सुरहि तं लआण गेह्णइ कुसुमम्॥
११:११६॥

उसका कहना है कि राक्षसी होने के कारण उसकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिए; इस तर्क में त्रिजटा की व्यथा और उसका प्रयत्न दोनों ही अन्तर्निहित हैं। वह अपने आत्मगौरव की बात भी कहती है—'यदि वैसा होता तो क्या साधारण जन के समान जीवित रहने के लिये आश्वासन देना मेरे लिये उचित होता' (११:१२१)। उसके मन का आत्मगौरव का यह भाव तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब वह कहती है कि—'मैं आपके कारण इतनी दुःखी नहीं हूँ, जितना राम के जीवित रहते लज्जा त्याग कर इस तुच्छ कार्य को करते हुए रावण के पलटे स्वभाव के विषय में चिन्तित हूँ' (११ : १२७)। पर इस सब के साथ ही उसका यह प्रयत्न तो है ही कि किसी प्रकार वह सीता को आश्वासन दे सके।

नाग-पाश बन्धन में राम के वचनों में निराशा अधिक है। वे स्थिति से अत्यधिक प्रभावित हैं। यही कारण है कि उनके वचनों में भाग्यवाद है—'संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसके पास संसार का परिणाम उपस्थित न होता हो' (१४ : ४४)। इस अवसर पर उनके मन में सबके उपकारों का ध्यान है। वे इस सीमा तक निराश हैं कि सुग्रीव को सेना सहित सेतु-मार्ग से वापस जाने को कहते हैं और सीता के विषय में बिल्कुल निरपेक्ष ही गये हैं। इस अवसर पर पुनः सुग्रीव की वीर-दर्प की वाणी समयानुकूल है। इनके कथनोपकथनों के अतिरिक्त कुछ संक्षिप्त उल्लेख और भी हैं जो परिस्थिति और मनोभावों के अनुकूल हैं। लक्ष्मण राम से रावण से युद्ध करने की आज्ञा माँगते हैं, इस पर राम अपने सहज भाव को व्यक्त करते हैं—'आप लोगों के पराक्रम से मैं परिचित हूँ, पर रावण का वध बिना स्वयं किये क्या यह बाहु भारस्वरूप नहीं हो जायगा ?' (१५ : ६०)। राम की वाणी में जैसे याचना-भाव हो :—

कुम्भस्स पहत्थस्स अ दूसह णिहणेण इन्दइस्स अ समरे।
दसकण्ठं मुहवडिअं केसरिणो वणगअं व मा हरह महम् ॥१५:६१॥

रावण के प्रति प्रतिशोध की भावना इस कथन में स्पष्ट व्यंजित

है। अन्त में विभीषण के विलाप में उसके मन की ग्लानि है। वह अपने भाई के पक्ष को छोड़कर आया है और यह बात उसके मन को अन्त में पीड़ा अवश्य पहुँचाती है—'तुम्हारा पक्ष न ग्रहण करने वाला मैं यदि धार्मिकों में प्रमुख गिना जाऊँगा तो भला अधार्मिकों में प्रमुख कौन गिना जायगा ?' (१५ : ८८)। यद्यपि विभीषण के चरित्र के साथ उसका यह कथन व्यंग्य के समान ही अधिक जान पड़ता है।

भावात्मक परिस्थितियाँ तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति

मानवीय मनोभावों के चित्रण की दृष्टि से कालिदास के समकक्ष यदि कोई दूसरा कवि पहुँच सका है तो प्रवरसेन ही। रस के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव तथा संचारियों आदि के वर्णन की बात दूसरी है। इस प्रकार के वर्णनों में अन्य कवियों ने सूक्ष्मदृष्टि का परिचय दिया है। पर मानवीय जीवन के सहज तथा स्वाभाविक स्तर पर भावात्मक परिस्थितियों तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति और उसका निर्वाह बिल्कुल भिन्न बात है। इस क्षेत्र में कालिदास संस्कृत के कवियों में अद्वितीय हैं। पर अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता की दृष्टि से प्राकृत कवि प्रवरसेन कालिदास के निकट पहुँच जाते हैं। आगे के कवियों में मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों तथा सूक्ष्म मनोभावों के चित्रण के स्थान पर रूपात्मक स्थितियों तथा अनुभावों का चित्रमय वर्णन मिलता है। परन्तु प्रवरसेन ने मनुष्य के मन के नानाविध भावों को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। और इस प्रकार के चित्रणों में भावों के सूक्ष्म छायातपों (shades) को कवि उतार सका है।

प्रवरसेन ने अनेक स्थलों पर भावों को व्यक्ति के बाह्य रूपाकार में अभिव्यक्त किया है। मनुष्य के आन्तरिक भावों की छाया उसके मुखादि पर प्रतिघटित हो जाती है। कवि इस प्रकार के चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सका है—'हनूमान के जाने के बहुत समय बीत जाने पर सीता-मिलन के आशा-सूत्र के अदृश्य होने के कारण अश्रु-प्रवाह के रुक जाने

पर भा उनके मुख पर रुदन का भाव घना था' (१ : ३५)। इस चित्रमें राम के मन की निराशा, पीड़ा, क्लेश तथा निरुपायता प्रकट हो जाती है। आगे इसी प्रकार राम के आन्तरिक क्रोध को कवि ने भंगिमा में व्यंजित किया है :—

बाहमइलं पि तो से दहमुहचिन्ताविअम्भमाणामरिसम्।
जाअं दुक्खालोअं जरढाअन्तरविमण्डलं विअ वअणम् ॥१:४३॥

सुग्रीव के ओजस्वी भाषण के बाद जाम्बवान् की गम्भीर तथा विचारशील मुद्रा का अंकन कवि ने किया है—'निकटवर्ती छोटे श्वेत मेघखण्ड से जिसकी ओषधि की प्रभा कुछ खिन्न सी हो गई है ऐसे पर्वत के समान जाम्बवान् की दृष्टि बुढ़ापे के कारण झुकी हुई भौंहों से अवरुद्ध हुई' (४ : १७)। इस चित्रण में जाम्बवान् के व्यक्तित्व के साथ उनका उस क्षण का आन्तरिक भाव भी व्यक्त हुआ। वे समझ रहे हैं कि केवल साहसपूर्ण वचनों से यह दुष्कर कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। प्रचलित अनुभावों के माध्यम से मनोभावों की व्यंजना में भी कवि सफल हुआ है :—

अह जणिअभिउडिभङ्गं जाअं धणुहुत्तवलिअलोअणजुअलम्।
अमरिसविइण्णकम्पं सिढिलजडाभारबंधणं तस्स मुहम् ॥५:१५॥

राम की वक्र भ्रुकुटियों से, कम्पित होकर ढीली पड़ गई जटाओं से उनका क्रोध प्रत्यक्ष हो जाता है। वानरों के अथक परिश्रम के बाद भी जब सागर पर सेतु न बन सका तब सुग्रीव ने नल से सेतु-रचना के लिए कहा, और उस समय उन्होंने तिरछे करके आयत रूप से स्थित बायें हाथ पर अपनी ठुड्ढी का भार आरोपित कर रखा है, जिससे उनके मन का भाव स्पष्ट हो गया है। यहाँ सुग्रीव के मन का हतोत्साह, चिन्ता तथा व्यग्रता आदि व्यक्त की गई है (८ : १३)। नल के कथन के समय की भंगिमा में उसके मन की भावस्थिति परिलक्षित होती है :—

तो पवअबलाहि फुडं विण्णाणासङ्घणिव्वलन्तच्छाओ।
पवअवइसंभमुम्मुहविइण्णभअहित्थलोअणो भणइ णलो ॥८:१८॥

नल में आत्मविश्वास, उद्विग्नता तथा आदर का भाव एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

'सेतुबन्ध' में न केवल मनोभावों को चरित्रों की बाह्य मुद्राओं में प्रत्यक्ष किया गया है, वरन् मानसिक भाव-स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण यत्र-तत्र किया गया है। इस क्षेत्र में कवि ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के साथ संवेदनशीलता का परिचय भी दिया है। 'राघव द्वारा किये गये उपकार का बदला चुकाने का आकांक्षी सुग्रीव का हृदय उच्छ्वासित हो उठा क्योंकि हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिल जाने पर कार्य की दिशा निश्चित हो गई है' (१:४६)। इसी अवसर पर राम के [illegible] में लंकाभियान की भावना स्थिर हुई है :—

चिन्तिअलद्धत्थं विअ भुमआविक्खेवसूइआमरिसरसम्।
गमणं राहवहिअए रक्खसजीविअहरं विसं व णिहित्तम्॥१:४७॥

इसमें कवि ने रौद्र भाव, आत्मविश्वास तथा राक्षस कुल के नाश की संभावना को एक साथ उपस्थित किया है। सागर दर्शन के अवसर पर सुग्रीव के उत्साह को स्वाभाविक रूप में प्रकट किया गया है—'सुग्रीव का वक्ष प्रदेश उन्नत तथा दीर्घ हो गया है और उन्होंने आधी छलाँग भर कर भी अपने शरीर को रोक लिया है' (२ : ४०)। इस प्रसंग में वानरों के विस्मय, आश्चर्य तथा कौतूहल को कौशल के साथ चित्रित किया गया है। सागर को देख कर वानर वीरों को अपूर्व विस्मय है पर उसको पार करनेवाले हनूमान के प्रति उनके मन में गौरव की भावना जाग्रत होती है :—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्हअरसत्थिमिओ।
हणुमन्तम्मि णिवडियो सगोरवं वाणराण लोअणणिवहो॥
२ : ४३॥

पवन-सुत को देख कर इन वानर वीरों के मोहतम से अंधकारित हृदय में उत्साह भी जाग्रत होता है' (२:४४)। भावों की विषम स्थिति को प्रवरसेन स्वाभाविक रूप में चित्रित करने में समर्थ हैं—

'सागर को देख कर उत्पन्न विषाद से व्याकुल, जिनका वापस लौट जाने का अनुराग नष्ट हो गया है तथा पलायन के मार्ग से लौट आये हैं नेत्र जिनके ऐसे, वीर वानर किसी-किसी प्रकार अपने-आप को ढाँढ़स बँधा रहे हैं' (२:४६)। इस वर्णन में वानरों के मन की व्याकुलता, विषाद, निराशा, आशा आदि को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। राम के सागर पार उतरने के समाचार को पाकर सीता के मन की स्थिति भी इसी प्रकार है, उसमें कई भाव उठते हैं—'निकट भविष्य में युद्ध के कारण सीता अन्यमनस्क हैं, राम के बाहुओं के पराक्रम के परिचय से उनके मन का संताप शान्त हो गया है तथा रावण की कल्पना से चिन्तित और व्याकुल होती हैं' (११ : ४६)। राम लंका में आ गये हैं और युद्ध का निर्णय शीघ्र ही हो जायगा, इस सम्भावना से सीता के मन में अनेक भाव उठ रहे हैं। परन्तु राम उनके निकट आ गये हैं, इस कल्पना से सीता के हृदय में प्रेम की कई मनःस्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं :—

समुहालोअणविडिअं विडिअणिमिल्लपिअदंसणुसु अहिअ अम्।
ऊसूअहिअउम्मिल्लं उम्मिल्लोसरिअपइसुहकिलिम्मन्तिम् ॥
११ : ५० ॥

परन्तु संस्कृत महाकाव्यों की जिस परम्परा में 'सेतुबन्ध' आता है उसमें चित्रांकन की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। इस कारण भावात्मक परिस्थितियाँ भी इन काव्यों में रूपाकार अथवा घटनात्मक परिस्थिति का अंश बन जाती हैं। वर्णना के सौन्दर्य के सम्मुख भाव-व्यंजना का महत्त्व कम हो गया है।

भावात्मक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने की एक शैली 'सेतुबंध' में यह भी है कि पात्रों की विभिन्न क्रियात्मक स्थितियों में उनको व्यंजित किया गया है। वास्तव में ये विभिन्न स्थितियाँ अनुभाव के रूप ही हैं। परन्तु इनका महत्व महाकाव्यों में इस कारण भी विशेष है कि इनके माध्यम से कवि भावों को चित्रमय आधार प्रदान करने में सफल हो सका

है। हनूमान से मणि अपने हाथ में लेकर राम ने 'अपनी अंजलि में आई हुई उस मणि को अपने नयनों से इस प्रकार देखा जैसे पी रहे हों और सीता का समाचार पूछ रहे हों' (१ : ४०)। इस स्थिति के चित्रण में राम के कितने गहरे मनोभाव को कवि प्रस्तुत कर सका है! आगे राम के अपने धनुष पर दृष्टिपात करने की स्थिति को भी कवि ने भाव-व्यंजना के साथ चित्रित किया है :—

तो से चिरमज्झत्थे कुविअकअन्तभुमआलआपापडिरूए।
दिट्ठी दिट्ठत्थामे कज्जधुव्व णिअए धणुम्मि णिसण्णा ॥१:४४॥

राम ने इस प्रकार धनुष को देखा जैसे वह उनके कार्य की धुरी हो अर्थात् उनके आत्म-विश्वास तथा आशा को ध्वनित किया गया है। सागर को देखकर 'राम ने उसकी अगाधता की इयत्ता को अपने नेत्रों से तौल लिया' (२ : ३७)। इस प्रकार कवि ने सागर के व्यापक और गहन प्रभाव का सुन्दर वर्णन किया है। लक्ष्मण द्वारा सागर-दर्शन का प्रभाव किस प्रकार ग्रहण किया गया, इसका कवि ने सूक्ष्म मनोभाव को व्यंजित करते हुए चित्रण किया है— 'जलराशि पर किंचित दृष्टि-निक्षेप कर तथा हँसते हुए वानरराज सुग्रीव से संलाप करते हुए लक्ष्मण ने समुद्र के देख लेने पर भी पहले (जब नहीं देखा था) के समान ही धैर्य को नहीं छोड़ा' (२ : ३६)। लक्ष्मण अपने स्वभाव के अनुकूल सागर के विराट स्वरूप को देख कर भी अविचलित हैं और उनमें आत्मविश्वास है, पर उनकी प्रत्यक्ष उपेक्षा में भी अदृश्य चिन्ता व्यंजित है। इसी अवसर पर वानरों की स्थिति का वर्णन है जिसमें अनुभावों की क्रियास्थिति में उनके मनोभाव प्रतिफलित हो जाते हैं :—

साअरदंसणहित्था अक्खित्तोसरिअवेवमाणसरीरा।
सहसा लिहिअव्व ठिआ णिप्पन्दणिराअलोअणा कइणिवहा ॥२:४२॥

त्रास, आतंक, भय तथा स्तब्धता आदि का सफल अंकन हुआ है। परिस्थिति विशेष में किसी चरित्र को क्रिया-स्थिति के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उस क्षण का उसका मनोभाव स्पष्ट हो गया

है। सुग्रीव के अभिभाषण का विभिन्न वानर-वीरों पर जो प्रभाव पड़ा है। उसका कवि ने सजीव वर्णन किया है। समस्त वानर सेना किंकर्त्तव्य-विमूढ़ और हत्प्रभ थी, पर सुग्रीव के दर्पपूर्ण वचनों को सुन कर उसमें उत्साह का संचार होता है। इसी उत्साह की अभिव्यक्ति अनेक वानर-वीरों में भिन्न प्रकार से हुई है, परन्तु उनकी क्रियाओं से अनेक सूक्ष्म भाव भी साथ-साथ व्यंजित हुए हैं। ऋषभ ने उत्साह के आवेश में अपने बायें हाथ के कन्धे पर रखे हुए पर्वत-शृङ्ग को ध्वस्त कर दिया। नील आन्तरिक हर्ष से रोमांचित अपने वक्ष को बार-बार पोंछ रहे हैं, और इस प्रकार उसके मन में आविर्भूत होती हुई संकल्प की भावना भी व्यक्त हुई है। मैन्द ने दोनों भुजाओं से चन्दन वृक्ष को जोर से झकझोर दिया, जिससे उसका आवेशात्मक उल्लास व्यक्त होता है। शरभ क्रोध की विवशता में अपने शरीर को खुजला रहा है (४:३-१३)। इस प्रसंग में भावों की इस प्रकार की सूक्ष्म व्यंजना के साथ पात्रों के चरित्र भी व्यक्त हुए हैं। सुग्रीव का अपने वचनों के प्रभाव को देख कर आत्मसन्तोष प्रकट करना स्वाभाविक है :—

> णिब्भच्छिओअहिरवं फुडिआहरणिव्वडन्तदाढाहीरम।
> हसइ कइदप्पपसमिअरोसविरज्जन्तलोअणो सुग्गीवो ॥४ : १४॥

दशवें आश्वास के अन्तर्गत संभोग-वर्णन में तथा ग्यारहवें में रावण की विरह-व्यथा में परम्परागत अनुभावों का विस्तार है जिनमें अनेक भावों को प्रकट करनेवाली क्रियास्थितियाँ आ जाती हैं। 'प्रियतमों के दर्शन से नाच उठा युवतियों का समूह विमूढ़ हुआ बालों का स्पर्श करता है, कड़ों को खिसकाता है, बालों को यथास्थान करता है और सखी-जनों से व्यर्थ की बातचीत करता है' (१० : ७०)। इस वर्णन में उल्लास, विमुग्धता, तत्परता तथा विस्मरण आदि भावों को एक साथ अभिव्यक्त किया गया है। रावण के मन की चिन्ता, खिन्नता तथा विवशता आदि इस प्रकार उसकी विभिन्न क्रियाओं से व्यक्त होती है :—

चिन्तेइ ससइ जूरइ वाहुं परिपुसइ धुणइ मुहसंघाअम् ।
हसइ परिओससुण्णं सीआणिप्पसर वम्महोव्हवअणो ॥ ११ : ३ ॥

भावात्मक परिस्थितियों को एक अन्य रूप में भी अंकित किया गया है । ऐसे अंकन समस्त वस्तु-स्थिति के साथ हुए हैं और इनमें कवि की वर्णनों को चित्रमय करने की प्रतिभा का परिचय भी मिलता है । ऐसे चित्र प्रायः किसी एक पात्र के दूसरे पात्र को सम्बोधित करके कथन करने के अवसर के हैं । इनमें पात्र के कथन के समय की भंगिमाएँ, क्रिया-स्थितियाँ तथा मनोभाव एक साथ वस्तु-स्थिति के पूर्ण चित्र के रूप में उपस्थित हुए हैं । सागर को देख कर स्तब्ध हुए वानर सैन्य को सम्बोधित करते हुए सुग्रीव जब कथन आरम्भ करते हैं, उस समय कवि भावमय चित्र प्रस्तुत करता है—'सुग्रीव ने, अपने कथन की ध्वनि से अधिक स्फुट रूप से उच्चारित होते यशनिघोष (साधुवाद) के साथ धैर्य के बल से गौरवयुक्त तथा दाँतों की चमक से धवलित अर्थ वाले वचन कहे' (३ : २) । आगे जाम्बवान् ने सुग्रीव को जब समझाते हुए कहना प्रारम्भ किया, उस समय उनका चित्र भावात्मक रेखाओं में सामने आता है :—

जम्पइ रिच्छाहिवई उण्णामेऊण महिअलद्धन्तणिहम् ।
खलिअवलिभङ्गदाविअवित्थअबहलवणकंदरं वच्छअडम् ॥
४ : १६॥

सुग्रीव से कह चुकने बाद जाम्बवान् रामकी ओर उन्मुख हुए और उस समय (बोलते समय) 'उनका विनय से नत मुख चमचमाते दाँतों के प्रभा-समूह से व्याप्त है, जिसमें किरणें किंजलक सी जान पड़ती हैं और मुड़ते समय सफ़ेद केसर (सटा) उलट कर सामने की ओर आ गई है' (४ : ३८) । इस चित्र में वस्तु-स्थिति के सौन्दर्य के साथ भावमयता की व्यंजना भी है । प्रवरसेन स्थिति के संकेत मात्र से चित्र को भासित करने में समर्थ हैं—'निसर्ग शुद्ध हृदय के धवल निर्झर के समान अपने दाँतों के प्रकाश को एक साथ ही दसों दिशाओं में विकीर्ण करते हुए

राम बोले' (४ : ५८)। राम के इस प्रकार हँस कर विभीषण से बोलने में सुन्दरता के साथ भाव-व्यंजना भी है। मरण की भावना से प्रेरित होकर जब सीता ने त्रिजटा से आदेश माँगा है, उस समय का चित्र ऐसा ही है :—

तो तं दट्ठूण पुणो मरणेक्करसाइ वाहगसारच्छम् ।
आउच्छसुमं ति कअं तिअडागअलोअणाइ दीणविहसिअम् ॥
११ : ११३ ॥

सीता की मुस्कान में कितनी करुणा है और उनके सूने नेत्रों में कितनी निराशा है !

'सेतुबन्ध' में प्रकृति

महाकाव्य की शैली में प्रकृति के प्रमुख रूपों के वर्णन की परम्परा निश्चित हो गई थी। जैसे कहा गया है, धीरे-धीरे बाद के महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन रूढ़िवादी हो गये हैं। परन्तु 'सेतुबन्ध' में प्रकृति का अधिकांश विस्तार प्रमुख कथा से सम्बद्ध होकर प्रस्तुत हुआ है। प्राकृतिक स्थलो में 'सेतुबन्ध' में पर्वत, वन, सागर, सरिता तथा आकाश का वर्णन है। इनमें सेतु-निर्माण की विस्तृत प्रक्रिया को सम्मिलित किया जा सकता है। पर्वतों का वर्णन विभिन्न स्थितियों तथा प्रसंगों में किया गया है। वानर सेना पर्वतों को उखाड़ती है, उनको लेकर आकाश-मार्ग से चलती है, फिर सागर में उनको फेंकती है। इस सारी प्रक्रिया में पर्वतों की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। पर्वतों के साथ ही उसके वनों, नदियो, निर्झरों और पशुओं आदि का भी वर्णन किया गया है। पर्वतों की इन विभिन्न स्थितियों की कल्पना में प्रवरसेन की अद्भुत कल्पना-शक्ति का पता चलता है, साथ ही सौन्दर्य की विराट उद्भावना के दर्शन भी होते हैं। आगे चलकर सुवेल पर्वत का वर्णन किया गया है। सागर पार उतर जाने के बाद वानर सैन्य सुवेल पर्वत को देखता है। इस वर्णन में कवि ने आदर्श-कल्पनाओं का आश्रय लिया है। वनों का वर्णन स्वतन्त्र रूप में केवल मार्ग में किया गया है। वस्तुतः वन पर्वतों

के साथ आ जाते हैं और उनकी कल्पना सरिता, सरोवर तथा निर्झरों से अलग नहीं की जा सकती। ये समस्त प्रकृति रूप इसी प्रकार प्रस्तुत भी हुए हैं। सागर का इस महाकाव्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण इसका वर्णन अधिक विस्तार से किया गया। समुद्र-तट पर पहुँच कर वानर सेना के साथ राम सागर को देखते हैं। सागर अपने विराट विस्तार में फैला है। कवि उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छायातपों और भावों से परिचित है। आगे राम के बाण से विक्षुब्ध सागर का सजीव वर्णन है। बाद में सागर मानव रूप में राम के सम्मुख प्रस्तुत होता है। सेतु-निर्माण के बाद सागर का पुनः वर्णन किया गया है, पर सेतु-निर्माण तथा सेतु-पथ अपने आपमें स्वतन्त्र विषय हैं।

प्रकृति के अन्तर्गत कालों के वर्णन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काल के दो रूप प्रायः पाये जाते हैं। एक तो काल का लम्बा विभाजन जो ऋतुओं के रूप में हैं और दूसरा समय के रात-दिन के बीच के परिवर्तन से सम्बन्धित प्रातः सायं सन्ध्याएँ तथा छाया-प्रकाश की विभिन्न स्थितियाँ हैं। 'सेतुबन्ध' की कथा का प्रारम्भ वर्षा काल के बाद शरद् ऋतु के वर्णन से किया गया है। दसवें आश्वास में कवि सायंकाल तथा रात्रि का वर्णन करता है जिसमें सूर्यास्त, अन्धकार-प्रवेश, चन्द्रोदय के चित्र उपस्थित किये गये हैं। बारहवें आश्वास में प्रातः सन्ध्या का चित्रण किया गया है। इन समस्त प्रकृति सम्बन्धी वर्णनों में बहुत कम स्थान ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध कथा-वस्तु के विकास से बहुत घनिष्ठ नहीं है।

महाकाव्यों के साधारण वर्णन अथवा संश्लिष्ट वर्णना शैली का रूप अधिक नहीं पाया जाता। महाप्रबन्ध काव्य के कथाप्रवाह में इन शैलियों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। पर महाकाव्य काव्यात्मक तथा अलंकृत शैली में लिखे गये हैं। इनमें वर्णित वस्तु, वस्तु-स्थिति, क्रिया-स्थिति अथवा परिस्थिति को चित्रमय आकार प्रदान करने की विशेष

प्रकृति परिलक्षित होती है। महाकाव्यों में प्रत्येक चित्र को समग्रता तथा एकाग्रता के साथ अंकित करते हुए कवि आगे बढ़ता है। यही कारण है कि प्रस्तुत काव्य में (जैसा कि अन्य प्रमुख महाकाव्यों के विषय में भी सत्य है) प्रत्येक वर्णन चित्रों के अंकन की सुंदर शृंखला जान पड़ते हैं। और एक के बाद एक चित्र के सम्मुख आते रहने के कारण इन सबका समवेत प्रभाव दृश्यबोध पर गतिशील रूप में चलचित्र के समान जान पड़ता है। साथ ही इन चित्रों की अंकन शैली आदर्श है। इस सौन्दर्य की आदर्श भावना के कारण अनेक बार यथार्थवादी दृष्टि से इसका मूल्यांकन करने से वास्तविक तथ्य प्राप्त नहीं होता। इस सौन्दर्य के अर्थ को ग्रहण करने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि संस्कृत के कवि और उनके साथ प्राकृत कवि (प्रवरसेन) भी सौन्दर्य्य की उत्कृष्ट उद् भावना कल्पना के आदर्श-चित्रों में ही स्वीकार करते हैं। कवि प्रकृति के सौन्दर्य्य की अनुकृति नहीं करता, वरन् उसके सौन्दर्य्य की कल्पना अपनी प्रतिभा के आधार पर करता है और पुनः उसी सौन्दर्य्य का सादृश्य अपने काव्य में उपस्थित करता है। अतः इन महाकाव्यों के प्रत्येक चित्र के सम्बन्ध में यह विचार करना कि यह यथार्थ जगत् से लिया गया है या नही, उचित नहीं है। प्रवरसेन की उर्वर कल्पना में यथार्थ का आधार होते हुए भी प्रकृति में नवीन सौन्दर्य्य की सृष्टि की गई है। सेतु-बंधन का सारा प्रसंग प्रकृति की नवीन तथा अद्भुत उद्भावना से संयोजित है और सुवेल पर्वत के वर्णन में भी कवि ने आदर्श कल्पना का आश्रय अधिक लिया है।

प्रकृति के क्रिया-व्यापारों की संश्लिष्टता साधारण वर्णना के रूप में महाकाव्यों में नहीं मिलती। प्रस्तुत काव्य अलंकृत काव्यों की परम्परा में आता है, पर स्वभावोक्ति को इसमें विशेष स्थान मिल सका है। यत्र तः अलंकृत-वर्णनों के बीच में सहज वर्णना का सुन्दर रूप मिल जाता है—'किसी एक भाग में वृष्टि हो जाने से किंचित जलकण युक्त तथा धुले हुए शरत्काल के दिन, जिनमें सूर्य का आलोक स्निग्ध हो गया है,

किंचित शुष्क शोभा धारण करते हैं' (१ : २०)। इस ऋतु के कोमल प्रकाशवान् दिनों का स्वाभाविक वर्णन इस प्रकार किया गया है। वस्तु-स्थिति का वर्णन भी मिल जाता है—'अब छितौन का गन्ध मनोहारी लगता है, कदम्बों के गन्ध से जी ऊब गया है, कलहंसों का मधुर निनाद कर्णप्रिय लगता है, पर मयूरों की ध्वनि असामयिक होने के कारण अच्छी नहीं लगती' (१ : २३)। इन वर्णनों में प्रकृति के क्रिया-व्यापारों की संलिष्ट योजना के साथ कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का पता भी चलता है :—

पज्जत्तसलिलधोए दूरालोक्कन्तणिम्मले गअणअले ।
अच्चासण्णं व ठिअं विमुक्कपरभाअपाअडं ससिबिम्बिम् ॥१:२५॥

निर्मल दिशाओं में प्रकाशित चन्द्रमा निकट ठहरा हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार सायं संन्ध्या के वर्णनों में भी ऐसे अनेक चित्र हैं—'दिन की एक हल्की आभा शेष रह गई है, दिशाओं के विस्तार क्षीण से हो रहे हैं, महीतल छाया से अन्धकारपूर्ण हो रहा है और पर्वतों की चोटियों पर थोड़ी-थोड़ी धूप शेष रह गई है' (१० : ६)। परन्तु व्यापक रूप से वर्णन आदर्श वस्तु-स्थितियों के ही हैं (देखिए—सुवेल वर्णन)।

'सेतुबन्ध' की प्रधान शैली चित्रात्मक है। शैली के उत्कर्ष की दृष्टि से प्रवरसेन कालिदास के सबसे अधिक निकट हैं। आगे के कवियों में चित्रात्मक शैली का क्रमशः ह्रास हुआ है। काव्यात्मक सौन्दर्य के लिए स्वतः सम्भावी अप्रस्तुत योजना ही सर्वश्रेष्ठ मानी जा सकती है। काव्य में स्वाभाविक चित्रमयता शैली के उसी रूप में आती है। इस प्रकार के प्रकृति के वर्णनों में कवि प्रकृति के प्रस्तुत दृश्य को अप्रस्तुत दृश्य के आधार पर अधिक व्यक्त तथा व्यंजित करता है। प्रवरसेन की कल्पना में यथार्थ जगत् के स्थान पर आदर्श सौन्दर्य की उद्भावना अधिक है। पर अनेक स्थलों पर चित्रांकन की यह शैली पाई जाती है—'वर्षाकाल में आकाश-वृक्ष की डालियों के समान जो झुक गई थीं और अब मुक्त हो गई हैं तथा जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं, ऐसी दिशाएँ शरद्

ऋतु में पूर्ववत् यथास्थान हो गई हैं' (१ : १९) । आकाश से बादल विलीन हो गये हैं' इस बात को व्यक्त करने के लिए कवि झुकी हुई डालों वाले वृक्ष से भ्रमरों के उड़ जाने की सहज कल्पना करता है। आदर्शीकरण की प्रवृत्ति प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति है, और यह उनके इन चित्रों में भी व्यक्त हुई है—'आकाश रूपी समुद्र के रजनी-तट पर बिखरे हुए शुभ्र किरणवाला तारा रूपी मोतियों का समूह मेघ-सीपी के संपुट के खुलने से बिखरा हुआ सुशोभित है' (१ : २२) । यहाँ कवि ने सहज प्रकृति के लिए स्वतः सम्भावी आदर्श से उपमान ग्रहण किया है, क्योंकि सीपी में मोती की सम्भावना और सागर में सीपी की सम्भावना स्वाभाविक होते हुए भी सागर-तट पर मोतियों का बिखरा रहना आदर्श कल्पना है। परन्तु अनेक बार चित्र और कल्पना दोनों संभावना के प्रकृत क्षेत्र में ही प्रस्तुत-अप्रस्तुत रूप में सामने आते हैं :—

बोलन्ति अ पेच्छन्ता पडिमासंकन्तधवलघणसंघाए ।
फुडफडिअसिलासंकुलखलिओवरिपत्थिए विअ णइप्पवहे ॥
१ : ५७ ॥

नदी के प्रवाह में बादलों की छाया पड़ती है और उसको कवि स्फटिक शिलाओं के समूह से टकरा कर उसके ऊपर से प्रवाहित नदी के समान बता कर चित्र को अधिक व्यंजित करता है।

उपर्युक्त शैली के अन्तर्गत अप्रस्तुत योजना की वह स्थिति है जिसमें कवि अपनी कल्पना में वास्तविक स्थितियों के नवीन संयोग उपस्थित करने के लिए स्वतंत्र होता है। इस स्वतंत्र संयोग को प्रौढ़ोक्ति सम्भव माना गया है। प्रवरसेन ने इस प्रकार के वर्णनों में पूर्ण सफलता प्राप्त की है; विशेषकर वह अपनी आदर्श उद्भावनाओं में इसका आश्रय ले सके हैं। इस प्रकार की कल्पनाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं जिनमें पौराणिक संदर्भ आ गये हैं—'भास्कर की किरणों से चमकने वाला मेघश्री का रत्नजटित काँचीदाम (तगड़ी), वर्षा रूपी कामदेव के अर्द्ध चन्द्राकार बाण-पात्र तथा आकाश रूपी पारिजात के फूल के केसर जैसा इन्द्र-धनुष अब लुप्त

हो गया है' (१ : १८)। इस चित्र में कोमल कल्पना है। इसी प्रकार सन्ध्या वर्णन के प्रसंग में पौराणिक कल्पना का कवि आश्रय लेता है—'सन्ध्या के विपुल राग को नष्ट कर तमाल-गुल्म की भाँति काला-काला अन्धकार फैल गया, जैसे कांचन तट-खंड को गिरा कर कीचड़ लपेटे ऐरावत हाथी के देह खुजलाने का स्थान हो' (१० : २५)। यहाँ प्रौढ़ोक्ति में वैचित्र्य का आग्रह प्रकट हुआ है। इसी प्रकार पद्मरागमणि की शिलाओं पर द्वितीया के चाँद की छाया को सूर्य के घोड़ों की टापों से चिह्नित कहा गया है।

रअणीसु उव्वहन्तं एक्कक्का अम्बमणिसिलासंकन्तम्।
नुद्धमिअङ्कच्छाअं खुरसुहमग्गं व रइतुरंगाण ठिअम्॥ ६: ५४॥

चित्रात्मक शैली का प्रयोग प्रकृति के रूपों को मानवीय जीवन के माध्यम से भावव्यंजित करने के लिये भी किया गया है। इसमें अप्रस्तुत रूप में मानवीय जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ ली जाती हैं। कहीं-कहीं यह अप्रस्तुत विधान प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में मानवीय अनुभावों के आरोप से किया गया है—'सागर से मिल कर फिर पीछे लौटती हुई, मिलन-प्रत्यावर्तन की इच्छा से कम्पित चंचल तरंगों वाली नदी वापस होकर फिर तरंगहीन हो सागर में मिल जाती है'(१ : १६)। यहाँ इस वर्णन में नवयुवती के समागम की कल्पना व्यंजित भर है। इस प्रकार की वर्णन शैली अधिक नहीं अपनाई गई है, काल-वर्णन के प्रसंगों में इसका कुछ प्रयोग अवश्य किया गया है। कभी व्यापक अर्थ में मानव जीवन का आरोप है—'गैरिक पंक से पंकिल मुखवाला दिवस रात्रि भर घूम कर और कमल सरोवरों को संक्षुब्ध कर लौट आया है' (१२:१७)। इस शैली में वैचित्र्य का आग्रह बढ़ जाना सहज हो जाता है— 'प्रवास के समय वर्षा काल रूपी नायक ने दिशा (नायिका) के मेघ रूपी पीन पयोधरों में इन्द्रधनुष के रूप में प्रथम सौभाग्य-चिह्न स्वरूप जो नखक्षत्र लगाये थे, वे अब बहुत अधिक मलीन हो गये हैं' (१ : २४)। इस चित्र में भाव्य-व्यंजना के स्थान पर वैचित्र्य पूर्ण रूपाकार का आरोप ही

प्रधान है। परन्तु प्रवरसेन में ऐसे चित्र बहुत कम हैं; साथ ही अन्य चित्रों में भाव-व्यंजना सुन्दर बन पड़ी है—

सअरङ्गअं विद्दुमपल्लवप्पहाघोलिरसासअरङ्गअम् ।
रविराइअं धरणिअलं व मन्दराअड्ढणदूरविराइअम् ॥ २ : २६ ॥

इस चित्रांकन में पौराणिक कल्पना के साथ प्रकृति में मानवीय भावना को व्यंजित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि कोई नव-वधू संचरण कर रही है और प्रिय-प्रियतम का संलाप चल रहा हो।

कभी प्राकृतिक स्थितियों के लिये अन्य वस्तु-स्थितियों को अप्रस्तुत रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसे चित्रणों में अप्रस्तुत-विधान प्रायः स्वतः सम्भावी है—'दूर तक ऊपर उछलकर वापस आया, सामने से गिरते हुए बाण समूह के आघात से खण्डित समुद्र, कुल्हाड़ी से बिंधे वेग से ऊपर उछलते काठ की भाँति आकाश को दो भागों में बाँट रहा है' (५ : ३५)। इसमें प्रस्तुत आदर्श कल्पना है, पर अपमान, सहज जीवन से ग्रहण किया गया है। कभी अप्रस्तुत कल्पना के रूप में कवि ने भविष्य की घटना की सूचना दी है—'फिर दिन का अवसान होने रुधिरमय पंक सी सन्ध्या-लाली में सूर्य इस प्रकार डूब गया, जैसे अपने रुधिर के पंक में रावण का शिर-मंडल डूब रहा हो' (१० : १५)। कुछ चित्रों में इस प्रकार के प्रयोग से दृश्य अधिक सुन्दर हो गया है :—

अत्थसिहरम्मि दीसइ मेरुअडुग्घुट्ठकणअकद्दमअम्बो ।
वलमाणतुरिअरविरहपडिडढिअधअवडोव्व संझाराओ ॥१० : १६ ॥

यहाँ मेरु के पार्श्व की आदर्श कल्पना के साथ सन्ध्या राग के लिये सूर्यरथ के गिरे हुए ध्वज की उपमा दी गई है। यह अप्रस्तुत का भी प्रौढोक्ति संभव है। कई स्थलों पर सहज कल्पना से कवि ने प्रकृति के चित्र को अत्यंत सुन्दर बना दिया है—'चन्द्रमा ने पूर्ववत् बिखरे हुए शिखर समूह, फैले हुए दिशा मंडल तथा व्यक्त हुए नदी प्रवाह वाले पृथ्वीतल को मानों शिल्पी के समान अंधकार में गढ़कर उत्कीर्ण कर दिया है।' (१० : ३६) इससे स्पष्ट है कि प्रवरसेन की कल्पना में विराट के साथ

कोमल का भी संयोग हुआ है। ऐसे चित्रों में भी वैचित्र्य का रूप परिलक्षित हुआ है, पर उसमें कलात्मकता ही प्रधान है :—

होइ णिराअअलम्बो गवक्खपडिओ दिसागअस्स व ससिणो।
कसणमणिकुट्टिमअले गेह्लन्ती सरजलं व्व करपब्भारो।। १० : ४६ ।।

नीलमणि की फर्श पर किरण समूह को दिग्गज की सूँड़ की तरह लम्बी कहना मात्र ऊहात्मक कल्पना नहीं है।

बाद के महाकाव्यों में चमत्कृत करने वाले वैचित्र्य का जो रूप मिलता है वह उत्कर्ष काल के महाकाव्यों में नहीं मिलता है। वैचित्र्य का मूल रूप इन कवियों में भी मिलता है, पर इसका ऊहात्मक वैचित्र्य के रूप में विकास बाद के कवियों में हुआ है। इस दृष्टि से प्रवरसेन उत्कर्ष काल के कवि हैं और कालिदास के निकट जान पड़ते हैं। प्रवरसेन की आदर्श कल्पनाओं में स्थितिजन्य वैचित्र्य बहुत अधिक है। जैसा कहा गया है उसने अपनी कथा-वस्तु में इन आदर्श कल्पनाओं के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित कर ली हैं। पर वर्णन शैली में वैचित्र्य का आग्रह प्रवरसेन में कम है। वरन् अनेक बार तो कवि ने आदर्श कल्पनाओं को व्यंजित करने के लिए सहज अप्रस्तुत-विधान का आश्रय लिया है। वैचित्र्य का आग्रह मानवीय आक्षेपों में कुछ परिलक्षित हुआ है—'समुद्र के वेलालिंगन से छोड़ी हुई, स्पर्श के अनन्तर संकुचित होकर काँपती हुई, कम्प से हिल रहा है वन-समूह रूपी हाथ जिसका ऐसी पृथ्वी मलय-पर्वत रूपी स्तनों के शीतल हो जाने से सुखी थी' (२:३२)। आगे के कवियों में इस प्रकार के आरोप की प्रवृत्ति अधिक वैचित्र्यमूलक होती गई है। आदर्श वर्णनों के साथ पौराणिक कल्पना के संयोग से भी वैचित्र्य की सृष्टि हुई है :—

कसणमणिच्छाआरसरञ्जमानो परिप्लवमानफेनम्।
हरिनाभिपङ्कजस्खलित शेषनिःश्वासजनितविकटावर्तम् ।।२:२८।।

शेष की निःश्वास से विष्णु की नाभि के कमल के उद्वेलित होने से सागर रूपी भ्रमर की कल्पना ऐसी ही मानी जायगी।

कहा गया है कि संस्कृत के महाकाव्य वर्णना प्रधान होते हैं; प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' भी इसी परम्परा में आता है। इनकी प्रवृत्ति चरित्रों के घटनात्मक विकास की ओर नहीं है; इनमें घटना चरित्र की व्याख्या मात्र करती है। इस दृष्टि से पहले महाकाव्यों में अपेक्षाकृत घटनाओं का आग्रह अधिक है और प्रकृति के वर्णन घटनाओं से सम्बद्ध हैं। प्रकृति मानव जीवन का आधार है, उसके जीवन की समस्त घटनाओं की क्रीड़ा-भूमि प्रकृति है। प्रवरसेन ने देश-काल तथा स्थिति के रूप में प्रकृति का वर्णन घटनाओं की पृष्ठभूमि में किया है। 'सेतुबन्ध' में देश का निर्देश स्थान-स्थान पर हुआ है। राम की सेना सहित यात्रा के वर्णन में कवि ने देश का रूप भली-भाँति अंकित किया है—'इस प्रकार ये वानर वीर सह्य पर्वत जा पहुँचे, जिसकी जल बूँदों से आहत धातुवर्ण की शिलाओं पर स्थित होने के कारण वे किंचित रक्ताभ से शोभित हो रहे हैं तथा जिसके निर्भर रूप में हँसते हुए कन्दरा-मुख से बकुल पुष्प की गंध के रूप में मदिरा का आमोद फैल रहा है।' (१:५६) इसी प्रकार वानर सैन्य जब सागर तट पर पहुँचता है, तो कवि उसका अंकन करता है :—

विअसिअतमालणीलं पुणो पुणो चलतरङ्गकरपरिमट्ठम्।
फुल्लैलावणसुरहिं उअहिगइन्दस्स दाणलेहं व ठिअम् ॥१:६३॥

वैसे तो सागर का आगे विस्तृत वर्णन है, परन्तु यहाँ तट-भूमि को वानर सैन्य के तट पर पहुँचने की घटना के आधार रूप में प्रस्तुत किया गया है।

महाकाव्यों में विभिन्न देशों (पर्वत, सागर आदि) के वर्णनों के समान विभिन्न कालों (ऋतुओं तथा प्रातः सायं सन्ध्याओं आदि) के वर्णन की परम्परा रही है। परन्तु कथावस्तु को आधार प्रदान करनेवाले काल का छायातप अथवा चित्रण कहीं-कहीं ही किया गया है। 'सेतु-बन्ध' की कथा का आरम्भ वर्षाकाल के अन्त तथा शरद् के आगमन से हुआ है। कवि ने इसका सुन्दर आधार प्रस्तुत किया है—'राघव ने वर्षा-

कालीन पवन के झोंके सहे, मेघों से अंधकारित गगनतल को देखा और मेघों के गर्जन को भी सहन कर लिया, पर शरद् ऋतु में जीवन के सम्बन्ध में उनका उत्साह शेष नहीं रहा।' प्रवरसेन ने कई स्थलों पर समय के निर्देश में घटना सम्बन्धी संकेतों को सन्निहित कर लिया है। राम की यात्रा के अनुकूल शरद् को कवि 'सुग्रीव के यश के मार्ग के समान राघव के जीवन के लिये प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं को दूर करने वाले रावण के वध-दिवस के समान आया हुआ' (१:१५,१६) कहता है। आगे सेना के सुवेल पर्वत पर पहुँच जाने के बाद सन्ध्या होती है और इस सन्ध्या के चित्र में रावण की मनःस्थिति को व्यंजित किया गया है :—

ताव अ आसण्णाढिअकइबलणिग्घोसकलुसिअस्स भअअरम् ।
दसवअणस्स समोसरिअपरिअणं मुअइ दिट्ठिवाअं दिवसो ॥१०:५॥

वास्तव में प्रकृति के व्यापक विस्तार में देश काल की स्थिति अलग अलग नहीं होती है। प्रकृति का प्रत्येक दृश्य अपनी रूपात्मक स्थिति में देश-काल दोनों के छाया-प्रकाश से व्यक्त होता है। अधिकांश वर्णनों में कवि का उद्देश्य देश-काल को अंकित करना न होकर केवल प्रकृति-स्थिति को उपस्थित करना होता है। प्रवरसेन ने अपनी कथा में प्रकृति का घटनास्थली के रूप में व्यापक प्रयोग किया है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। यह भी कहा गया है कि प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति प्रकृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने की है। परन्तु कवि ने प्रकृति के स्वाभाविक तथा यथार्थ चित्रों को भी दिया है। काल के वर्णनों में अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ चित्र हैं, जब कि सागर तथा सुवेल के चित्रण में कवि ने आदर्श कल्पनाओं का आश्रय लिया है। शरद् काल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—'वर्षा-काल में आकाश—वृक्ष की डालियों के समान जो झुक गई थीं और अब मुक्त हो गई हैं तथा जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं, ऐसी दिशाएँ अब पूर्ववत् यथास्थान हो गई हैं' (१:१९)। काल सम्बन्धी स्थितियों में सहज चित्र मिल जाते हैं। कवि

ने चाँदनी में वृक्ष की छाया का पर्यवेक्षण यथार्थ रूप में किया है :—

दरमिलिअचन्दकिरणा दरधुव्वन्ततिमिरपरिपण्डुरालोआ ।

दरपाअडतनुविडवा दरबद्धच्छाहिमण्डला होन्ति दुमा ॥१०:३७॥

परन्तु इस प्रकार के स्थल कम हैं । प्रवरसेन में आदर्शीकरण की व्यापक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । पौराणिक संदर्भों और कल्पनाओं से प्रकृति के आदर्श-चित्र परिपूर्ण हैं—'सुवेल शेष के रत्नों से घर्षित अपने मूल भागों की मणियों से पाताल-तल के अन्धकार को दूर करता है तथा अपने ऊँचे शिखरों में सूर्य के भटक जाने पर गगन में अँधेरा कर देता है' (६:६) । आदर्श-रूप का चित्रण कवि वस्तुओं के रूप-रंगों की योजना में करता है—'सागर में अधिक दिनों के प्रवाल के किसलय नीलमणि की प्रभा से युक्त होकर हरित हो रहे हैं, और ऐरावत आदि देवताओं के हाथियों की मद के गन्ध से आकर्षित होकर जब मगरमच्छ सागर से अपना मुख निकालते हैं तब मेघ उन पर वस्त्र की भाँति छा जाते हैं ।' और इस स्थिति-सौन्दर्य के अतिरिक्त कभी रूप-क्रिया तथा परिस्थितियों के माध्यम से आदर्शीकरण हुआ है :—

ससिबिम्बपासणिहसणकसणसिलाभित्तिपसरिआमअलेहम् ।

जोण्हाजलपव्वालिअविसमुम्हाअन्तमुणिअरविरहमग्गम् ॥६:१०॥

सुवेल की काली शिलाओं से चन्द्रमा का घर्षण, अमृत धारा का प्रवाह तथा सूर्य के रथ के निकलने से भाप का मार्ग बन जाना आदि ऐसी ही कल्पनाएँ हैं ।

कथानक के आधार रूप में चित्रित प्रकृति की विभिन्न स्थितियों के अतिरिक्त महाकाव्यों में प्रकृति स्वयं कथानक की घटना के रूप में उपस्थित होती है । मानव-जीवन के व्यापक अंग के रूप में प्रकृति स्वयं भी इतिवृत्ति बन जाती है । प्राकृतिक घटना में प्रकृति के उपकरण कभी पात्रों के समान व्यवहार करते पाये जाते हैं और कभी कथावस्तु के पात्रों के कार्य के साथ प्रकृति घटना-स्थिति का रूप धारण कर लेती है । 'सेतु-बन्ध' की एक प्रमुख घटना सेतु-निर्माण है जो स्वतः प्राकृतिक घटना ही

है। सर्वप्रथम सागर वानर सैन्य के सम्मुख एक विराट बाधा के रूप में उपस्थित होता है—'आकाश के प्रतिबिम्ब के समान, पृथ्वी के निकास के द्वार के समान, दिशाएँ जिसमें विलीन हो जाती हैं ऐसा सागर भुवन-मण्डल की नीलमणि की परिखा के समान प्रलय के अवशेष जल के रूप में फैला है' (२:२)। इस महाकाव्य में सागर का विराट रूप एक घटना के समान है, क्योंकि वानर सेना उसको देख कर भय से आतंकित हो जाती है। यह सागर चरित्र रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। राम के बाण से प्रताड़ित होकर सागर प्रज्वलित और अस्त-व्यस्त हो उठा। इसी व्याकुलता की स्थिति में सागर मानव रूप में राम के सम्मुख उपस्थित हुआ है—'अनन्तर धुआँ से व्याप्त पाताल रूपी वन को छोड़ कर निकले हुए दिग्गज के समान समुद्र, बाण की ज्वाला से झुलसे हुए सर्पों तथा वृक्षों के साथ बाहर निकला'(६:१)। सेतु-निर्माण की सारी प्रक्रिया तो इस महाकाव्य की प्रधान घटना है और यह पूर्णतः प्रकृति के अन्तराल में घटी है। इसमें आदर्श तथा अलौकिक तत्व की अधिकता अवश्य है और यह प्राकृतिक घटना विस्तार के साथ चलती रही है। यह घटना बहुत सघनता के साथ प्रस्तुत की गई है और इतना विस्तार होने पर भी इसमें शिथिलता नहीं आने पाई है। निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया का सूक्ष्म तथा विशद वर्णन कवि ने किया है, पर समान गति के साथ। वानरों का आकाश मार्ग से जाने के बाद से नल द्वारा सेतु-निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया तक यही स्थिति है। प्राकृतिक घटना की इतनी विराट तथा विशद कल्पना अन्य किसी कवि ने शायद ही की हो। सेतु-निर्माण के समय एक ओर तो पहाड़ों के गिरने से उठने वाले कल्लोल से सेतु-पथ में जोड़े गये पत्थर सीधे हो रहे हैं तो दूसरी ओर सागर में गिरे हुए हाथी साँपों के बंधन तोड़ रहे हैं :—

> खुहिअसमुद्दत्थमिआ खुडेन्ति अक्खुडिअमअजलोज्झरपसरा।
> चलणालग्गभुअंगे पासे व्व णिराअकड्ढिए माअङ्गा ॥८:४८॥

'सेतुबन्ध' कथानक की दृष्टि से वातावरण प्रधान महाकाव्य है।

उसका कारण इसकी प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना है। सागर के वर्णन से लेकर सेतु सम्पूर्ण होने तक की समस्त कथा प्राकृतिक घटनाओं की शृङ्खला में फैली है, जो शृङ्खला घटना के स्थान पर वातावरण का आभास अधिक देती है। यह निश्चित है कि घटनाओं की पार्श्वभूमि में प्रकृति की अवतारणा और इस घटनात्मक प्रकृति के वातावरण में अन्तर होता है। पहली स्थिति में वातावरण कथा की घटना को आधार प्रदान करता है अथवा किसी प्रकार का भावात्मक प्रभाव डालता है, पर इस दूसरी स्थिति में वातावरण स्वतः कथा का अंग बन जाता है। प्रवरसेन ने पार्श्वभूमि के रूप में वातावरण का सृजन किया है। प्रथम आश्वास में हनूमान के आगमन के पूर्व शरद् के वर्णन में ऐसा ही वातावरण है। शरद के रमणीय वर्णन में राम की विरही मनःस्थिति से विरोध है और हनूमान द्वारा सोता का सन्देश प्राप्त होने की सुखद मनःस्थिति से साम्य भी है—'भौरों की गुँजार से सचेष्ट हुए, जल में स्थित नालवाले कमल, बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं' (१:२८)। सेतु-बन्धन के प्रसंग में प्राकृतिक वातावरण इसके विप-रीत कथा का अंग है। क्योंकि प्राकृतिक घटना वर्णना के रूप में ही अंकित है, अतः उसमे वाता-वरण का रूप ही प्रधान रहता है। पर्वतोत्पाटन के समय के इस प्रकार के दृश्यो से सजीव वातावरण की सृष्टि हुई है :—

पवअोवऊढकड्ढिअसेलब्भन्तरभमन्तविसमक्खलिआ।
गहिरं रसन्ति वित्थअवच्छुत्थलरुद्धणिग्गमा णइसोत्ता ॥६:३६॥

इन घटनाओ का वातावरण बहुत सघन तथा गतिशील है और इसके माध्यम से प्रवरसेन ने सौन्दर्य के विराट रूप को चित्रित किया है।

अनेक बार कवियो ने प्रकृति-दृश्यों को उपस्थित करते समय अपने पात्रों के चरित्र का संकेत सन्निहित कर दिया है अथवा भविष्य की घटनाओ की सूचना दी है। प्रवरसेन ने इस प्रकार के सफल प्रयोग किये हैं। कथा के आरम्भ में कवि ने शरद् ऋतु का प्रवेश इस प्रकार कराया

है—'वर्षा के उपरान्त, सुग्रीव के यश के मार्ग के समान, राघव के जीवन के प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं के अन्त करनेवाले रावण के वध-दिवस के समान शरद् ऋतु आ पहुँची' (१:१७,१६)। इसी प्रकार द्वितीय आश्वास में समुद्र को 'लंकाविजय रूपी कार्यारम्भ के यौवन के समान' कहा गया है। मलय पर्वत के कन्दरामुख में भर कर पुनः लौटते समय ऊँचे स्वर से प्रतिध्वनित होता हुआ सागर का जल राम के लिये प्राभातिक मंगल-वाद्य की तरह मुखरित हुआ' (५:११)। इसमें राम की विजय का संकेत छिपा है, जो चरित्र-नायक के गौरव को ध्वनित करता है। दसवें आश्वास में सांयकाल के वर्णन में रावण के पराभव की भावना कई स्थलों पर व्यंजित है—'धूल से समाक्रान्त, अस्त होता सूर्य और नाश निकट होने के कारण प्रतापहीन रावण सामने दिखाई पड़ते हैं' (१०:१२)। घटनाओं की गति को परिलक्षित करने के लिये प्रकृति का सुंदर प्रयोग किया गया है। ग्यारहवें आश्वास में रात्रि के वातावरण में सीता के विलाप-कलाप का प्रसंग है, इसके बाद बारहवें आश्वास में सीता के आश्वासन के साथ प्रातःकाल उपस्थित होता है :—

ताव अ दरदलिउप्पलपलोट्ठधूलिमइलन्तकलहंसउलो।
जाओ दरसंमीलिअहरिआअन्तकुमुआअरो पच्चूसो ॥१२:१॥

प्रातःकाल के साथ जैसे युद्ध की संभावनाओं की ओर कवि ने संकेत किया है।

कालिदास प्रकृति को मानवीय सम्बन्धों के धरातल पर प्रस्तुत कर सके हैं। उनके काव्य में प्रकृति और मानव में आत्मीय संबंध है। प्रवरसेन में प्रकृति का व्यापक विस्तार होते हुए भी, मानवीय और प्रकृति का आत्मीय सम्बन्ध नहीं व्यक्त हुआ है। इनके काव्य में प्रकृति इस धरातल पर मानव जीवन से सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकी, यद्यपि उसमें रंग-रूपों की गहराई के साथ जीवन का आरोप मिलता है। राम के सम्मुख सागर का प्रवेश घटना के रूप में अधिक है। आरोप के माध्यम से प्रकृति में मानवीय सहानुभूति के स्थल अवश्य मिल जाते हैं—'यूथ-

पति के विरह में खिन्न मुख और रोती हुई हथिनियों की बरौनियों में आँसू छलक आये और वे नये तृणों के आस्वादन को भी विष समान मान रही है' (६:६८)। एक दूसरे चित्र में हरिण और हरिणियों को मानवीय सहानुभूति के रंग में चित्रित किया गया है—'पर्वतों के डूबने से उठती हुई ऊँची-नीची तरंगों से प्लावित होने से व्याकुल फिर भी एक दूसरे के अवलोकन से सुखी हरिण-समूह, जल के वेग से एक दूसरे से अलग होकर फिर मिलते हैं और मिल कर अलग हो जाते हैं' (७:२४)। नदी तथा पर्वत में संबंधो का आरोप कोमल भावानुभूति से युक्त है—

वडवामुहसंतावे भिण्णअडेअ गरुए तरङ्गप्पहरे।
अविरहि अकुलहराण व सरिआण कए ण साअरस्स सहन्तम् ॥
६:५३॥

पर्वत अपनी पुत्रियों (नदियों) के लिये सागर की तरंगों का आघात सहन कर रहा है। प्रेमी-प्रेमिका के रूप में प्रकृति के पात्रों का चित्रण महाकाव्यों की व्यापक प्रवृत्ति है—'रात में किसी तरह प्रियतम के विरह दुःख को सह कर चक्रवाकी, चक्रवाक के शब्द करने पर उसकी ओर बढ़ती हुई मानों उसका स्वागत करने जा रही है' (१२:६)। यहाँ केवल प्रेम की भावात्मक व्यंजना है। परन्तु जब यह आरोप की प्रवृत्ति मधु-क्रीड़ाओं के चित्रण में विकसित होती है तब प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत अधिक जान पड़ती है।

परन्तु ऐसे स्थल भी हैं जिनमें भावारोप प्रधान है और वे भाव-व्यंजना की दृष्टि से सुन्दर हैं। इस चित्र में कमल की भावना का रूप अन्तर्निहित है—'बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से भौंरों की गुन-गुन से सचेष्ट हुए जल में स्थित नालवाले कमल सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं' (१:२८)। प्रकृति मानवीय भावनाओं से स्फुरित हो रही है। 'सागर का जल-विस्तार सूख रहा है। वह धीरे धीरे तट रूपी गोद छोड़ रहा है और इस प्रकार पग-पग पीछे खिसक रहा है' (५:७३)। इसमें सागर के पग-पग पीछे खिस-

कने में उसके भयभीत होने की व्यंजना है। इसी प्रकार भयभीत तथा उद्विग्न हरिणियों का चित्र भी सजीव है :—

हीरन्तमहिहरांहि मईहि भग्रहित्थपत्थिग्रणिग्रत्ताहिं ।

सोहन्ति खणविवत्तिग्रसरांभमुम्मुहपलोइग्राइ वणाइं ।।६ : ८०।।

'किन्नरों के मन भावने गीतों को सुन कर सुखी हुए खिलती-सी आँखोंवाले हरिणों का रोमांच बहुत देर बाद पूर्वावस्था को प्राप्त होता है' (६:८७)। इस दृश्य में हरिणों की भावास्थिति का कोमल चित्रण किया गया है।

काव्य-शास्त्र में प्रकृति को उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया है। प्रकृति को केवल मानवीय भावों के उद्दीपन रूप में स्वीकार करने की परम्परा बाद में विकसित हुई होगी, क्योंकि बाद के अत्यधिक अलंकृत काव्य में प्रकृति को रूढ़िवादी उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है। प्रवरसेन का प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं है। ऐसे कई अवसर प्रस्तुत महाकाव्य में आये हैं जिनमें प्रकृति-चित्रण के साथ मानवीय भावों का भी वर्णन किया गया है, पर इनमें प्रकृति स्वतन्त्र रूप से अधिक उपस्थित हुई है। आरोप के माध्यम से उद्दीपन की व्यंजना यत्र-तत्र ही है। राम की मनःस्थिति के साथ शरद् के वर्णन में इस प्रकार के संकेत हैं जिनसे उनकी विरह की भावना उद्दीप्त होती है। इस आरोप से यह भाव स्पष्ट हो जाता है—'प्रवास के समय वर्षाकाल रूपी नायक ने दिशा नायिका के मेघ रूपी पीन पयोधरों में इन्द्रधनुष के रूप में जो सुन्दर नख-क्षत लगाये थे, वे अब बहुत अधिक मलीन हो गये हैं' (१:२४)। प्रकृति पर आरोपित वियोग की व्यंजना से राम का विरह बढ़ सकता है। आगे नलिनी को देख कर लोगों के आकर्षित होने में यही भाव सन्निहित है:—

खुडिडप्पइग्रमुणालं दट्ठूण पिग्रं व सिढिलवलग्रं णलिणिम् ।

महुग्ररिमहुरुल्लावं महुमग्रतम्बं मुहं व घेप्पइ कमलम् ।।१:३० ।।

यहाँ प्रियतमा की कल्पना से प्रकृति चित्र शृंगार का उद्दीपन हो गया है। प्रयोपवेशन के समय चन्द्रोदय होता है और उसको देख कर राम

के हृदय की व्यथा बढ़ जाती है और इस कारण सीता विरह से व्याकुल राम को रात्रि भी बढ़ती हुई जान पड़ी' (५:१)। निशाचरियों के संभोग वर्णन की पृष्ठिभूमि में इस प्रकार की व्यंजना प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही अभिव्यक्ति करती हैं—'रात्रि के व्यतीत होने के साथ किंचित विकास को प्राप्त गाढ़ी प्रतीत होने के कारण हाथ से हटाये जाने के योग्य ज्योत्स्ना से बोझिल कुछ-कुछ खिला हुआ कुमुद अपने भार से फैले हुए दलों में काँप रहा है' (१०:५०)। इस दृश्य में मानवीय मधुक्रीड़ा का संकेत व्यंजित है। परन्तु कभी-कभी आरोप स्पष्ट रूप में प्रस्तुत होकर यही कार्य करता है। समुद्र की वेला का यह चित्र संभोगोपरान्त नायिका के समान अंकित किया गया है—'नत उन्नत रूप में स्थित फेनराशि जिसका अंगराग है, जिसका नदी-प्रवेश रूपी मुख विद्रुम-जल रूपी दन्तव्रण से विशेष कान्तिमान है तथा मृदित वन-रूपी कुसुम ग्रथित केशपाश है जिसकी ऐसी, समुद्र-रूपी नायक के संभोग-चिह्नों को वेला नायिका धारण करती है।' इसमें बहुत प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति पर संभोगोपरान्त चिह्नों को आरोपित किया गया है। इस प्रकार प्रकृति को उद्दीपन-विभाव में प्रायः मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1]

रस, अलंकार और छंद भारतीय साहित्य में व्यापक रूप से कथा सम्बन्धी कौतूहल अथवा उत्सुकता के स्थान पर काव्यात्मक रसानुभूति का अधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। यह बात नाटकों के सम्बन्ध में सत्य है और महाकाव्यों के सम्बन्ध में भी। महाकाव्यों में रस की प्रधानता होती है। 'सेतुबन्ध' में अन्य अनेक महाकाव्यों के समान शृंगार रस प्रधान नहीं है। परन्तु इसका वर्णन महत्त्वपूर्ण अवश्य है। संभोग शृंगार के लिये इस काव्य की प्रमुख कथावस्तु में अवसर नहीं था, क्योंकि सीता के वियोग की स्थिति में राम के अध्यवसाय पर इसकी कथावस्तु आधारित है। परन्तु रामकथा के

१—लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और काव्य' (संस्कृत) में इस प्रकरण को अधिक विस्तार दिया गया है।

अन्तर्गत राक्षसियों के संभोग वर्णन की परम्परा का सूत्रपात्र कर प्रवर-सेन ने शृंगार के इस अंग की पूर्ति की है। पर इस प्रसंग में कवि ने अन्तर्दृष्टि तथा पर्यवेक्षण का परिचय दिया है। एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का चित्रण इस प्रकार है—'बिना मनुहार के प्रियजनों को सुख पहुँचाने वाली कामनियाँ सखियों द्वारा एकटक देखी जाने के कारण लज्जित हुई और इस आशंका से त्रस्त हुई कि इन युवतियों का झूठा कोप प्रियतमों द्वारा जान लिया गया है' (१०:७२)। इस प्रसंग में कवि ने विभाव, अनुभाव तथा संचारियों के संयोजन में काव्य-कौशल का परिचय दिया है। अनुभावों के माध्यम से अनेक संचारियों की स्थिति को एक साथ व्यंजित किया गया है—'प्रियतमों के दर्शन से नाच उठा युवतियों का समूह विमूढ़ हुआ बालों को स्पर्श करता है, कड़ों को खिसकाता है, वस्त्रों को यथास्थान करता है और सखी जनों से व्यर्थ की बात करता है' (१०:७०)। इन विभिन्न अनुभावों से युव-तियों के मन का उल्लास, विमुग्धता, उद्विग्नता, लज्जा तथा विभ्रम आदि भाव एक साथ व्यंजित हुए हैं। कहीं-कहीं अनुभावों के सुन्दर चित्रण के साथ सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति की गई है :—

सुरअसुहद्धमउलिअं भमरदरक्कन्तमालईमउलणिहम् ।
साहइ समरुप्पेसं उप्पित्थुम्मिल्लतारअं णअणजुअम् ॥१०:६१॥

यहाँ नेत्रों की भंगिमा से अनुराग तथा भय दोनों की आकुलता व्यक्त हुई हैं।

विप्रलम्भ शृंगार को इस काव्य में अवसर मिला है। सीता के अप-हरण किये जाने के कारण राम वियोग दुःख को सह रहे हैं और सीता भी विरहिणी हैं। परन्तु जैसा कहा गया है, 'सेतुबन्ध' काव्य में प्रमुख कथा राम के अध्यवसाय से सम्बन्धित है, इस कारण विप्रलम्भ के कुछ ही स्थल है। काव्य का प्रारम्भ राम के विरह जन्य क्लेश के वर्णन से किया गया है। शरद् ऋतु का सौन्दर्य राम के विरह को उद्दीप्त करता है—'इस प्रकार सरोवरों में कुमुद विकसित हो गये हैं तथा सूरमाओं

की नासिकाओ के मुख रूपी कमल को म्लान करने वाले चन्द्रमा का आलोक फैलता है, ऐसी चमकते हुए तारो से युक्त तथा शत्रु राज-लक्ष्मी के स्वयंवरण की गोधूली के समान शरद् ऋतु के उपस्थित होने पर राम का दुर्बल शरीर और भी क्षीण हुआ', (१:३४)। परन्तु कवि ने अप्रस्तुत-विधान से राम के शौर्य की तथा भविष्य मे उनकी विजय की व्यंजना भी की है। इसी प्रकार प्रायोपवेशन काल मे रात्रि के समय राम सीता के वियोग का अनुभव करते है—'चन्द्रकिरणो की निन्दा करते है, कुसमायुध पर खीझते है, रात्रि से घृणा करते है तथा 'जानकी जीवित तो रहेगी' इस प्रकार मारुति से पूछते हुए राम विरह के कारण क्षीण होकर और भी क्षीण हो रहे है' (५ : ५)। सीता की विरहावस्था का वर्णन कवि ने कोमल और गहन रंगो मे किया है। सीता के विरही रूप का अत्यन्त द्रावक वर्णन है—'खुला होने के कारण वेणीबन्ध रूखा-सूखा है, मुखमण्डल आँसू से धुले अलको से आच्छादित है, नितम्ब प्रदेश पर करधनी नही है तथा अंगरागो और आभूषणो से रहित होने के कारण उसका लावण्य और भी बढ़ गया है' (११:४१)। रूप के साथ विरहजन्य अनेक भावो की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है :—

थोअमउआअअट्ठिअपिअअमगअहिअअसुएणणिच्चलणअणम्।
कइवलसद्दाअण्णणवाहतरङ्गपरिघोलमाणपहरिसम्॥ ११ : ४२ ॥

वानर सैन्य के कोलाहल को सुन कर मिलन की संभावना के कारण सीता के मन मे दुःख के साथ हर्ष का भाव भी जाग्रत होता है जो उनके अश्रु- प्लावित नेत्रो से व्यक्त हुआ है। आगे अब सीता के सम्मुख राम का मायाशीश प्रस्तुत किया जाता है तब विप्रलम्भ करुण रस मे परिवर्तित हो जाता है।

काव्यशास्त्रियो ने अनौचित्य रूप मे व्यंजित होने पर रस को रसा-भास की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से रावण का सीता विषयक अनुराग रसा-भास मात्र है। ग्यारहवें आश्वास के प्रारम्भ मे रावण की काम-पीड़ा का विस्तार से वर्णन है। रावण का सीता विषयक यह भाव शुद्ध अनु-

राग की कोटि में नहीं आता, यह केवल कामवासना है। इसमें रति स्थायी की स्थिति स्वीकार की जा सकती है, पर वास्तविक प्रेम के अभाव में इसको रसाभास मानना उचित है। रावण की व्याकुलता का विशद वर्णन किया गया है। वह इस वासना से उद्विग्न होकर व्याकुल हो गया है—'रावण के मन में सीता विषयक वासना अब विस्तार नहीं पा रही है, वह अब चिन्ता करता है, साँसें लेता है, खिन्न होता है, भुजाओं का स्पर्श करता है, अपने मुखों को धुनता है और सन्तोषहीन हँसी हँसता है' (११:३)। इन विभिन्न अनुभावों के माध्यम से रावण के हृदय की विकलता, चिन्ता, विभ्रम आदि को व्यक्त किया गया है। इस प्रसंग में रावण अपनी व्याकुलता को छिपाकर दक्षिण नायक का अभिनय करता हुआ चित्रित किया गया है :—

दुच्चिन्तिआवसेसं पिआहि उन्मच्छसंभमकआलोअम् ।
हसइ खणं अप्पाणं अणहिअअविसज्जिआसणणिअत्तन्तम् ॥
११:२०॥

रावण की व्याकुलता उसकी सूखी हँसी में और भी व्यक्त हुई है।

'सेतुबन्ध' महाकाव्य का प्रधान रस वीर ही माना जायगा। हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिलते ही राम के हृदय में उत्साह का संचार दिखाया गया है और यह उत्साह का स्थायी भाव रावण-वध तक राम के मन में बना रहता है। उत्साह वीर रस का स्थायी है, अतः इस महाकाव्य को वीर-रस प्रधान माना जाना चाहिए। और क्योंकि रौद्र-रस में शत्रु ही आलंबन विभाव और उसके कार्य उद्दीपन विभाव होते हैं, इसलिए वीर के साथ रौद्र रस का प्रयोग भी इस महाकाव्य में विस्तार के साथ हुआ है। सीता का समाचार पाकर राम का हृदय एक ओर वियोगजन्य व्यथा से अभिभूत हुआ है और दूसरी ओर उनको रावण पर क्रोध भी आता है—'अश्रु से मलिन होते हुए भी रावण के अपराध चिन्तन से उत्पन्न क्रोध से राम का मुख प्रखर सूर्य मण्डल के समान कठिनाई से देखने योग्य हो गया।' (१:४३) इस रौद्र भाव के साथ

ही राम के हृदय का उत्साह, उनके अपने धनुष पर दृष्टिपात करने की प्रक्रिया में व्यक्त हुआ है—'उनकी दृष्टि से धनुष मानों प्रत्यंचावाला हो गया'; इस कथन में उत्साह की सूक्ष्म व्यंजना हुई है। सागर को देख कर विमुग्ध हुए वानर सैन्य को सुग्रीव ने प्रोत्साहित किया है; और इस वक्तृता में वीर रस की सृष्टि हुई है। सुग्रीव कहते हैं—'हे वानर वीरो, तुम्हारी भुजाएँ शत्रु का दर्प सहन नहीं कर सकती हैं, प्रहार-कार्य के लिये सुलभ पर्वत उपस्थित हैं और विस्तृत आकाश-मार्ग तो लाने के लिये सहज है, क्योंकि शत्रुओं की महानता ही क्या है' (३:३८)। यहाँ कार्य-सिद्धि के मार्ग को सरल बतला कर शत्रु को अकिंचन सिद्ध किया गया है। आगे सुग्रीव ने आत्मोत्साह के कथन में वीर भाव प्रकट किया है—'महासमुद्र के बीच दो विशाल खंभों के समान मेरी भुजाओं पर स्थित उखाड़ कर लाये हुए विन्ध्य पर्वत रूपी सेतु से ही वानर सेना सागर पार करे' (३:५९)। सागर ने जब राम की प्रार्थना नहीं सुनी, तब राम क्रोध करते हैं, उनके मुख पर राहु की छाया के समान आक्रोश का आविर्भाव हुआ, भ्रकुटी चढ़ गई, जटाओं का बन्धन ढीला हो गया और उनकी दृष्टि अपने धनुष पर जा पड़ी' (५ : १४ , १५)। ये सब रौद्र के अनुभाव हैं जिनसे राम का क्रोध व्यक्त हुआ है। आगे युद्ध के प्रसंग में वीर तथा रौद्र दोनों रसों का पूरा निर्वाह किया गया है। राम का धनुष टंकार, वानरों का कलकल नाद, राक्षसों का कवच धारण कर वेग से रथों पर युद्ध के लिये चल पड़ना आदि सब वीर भावना के अनुभाव ही हैं। प्रवरसेन ने दोनों पक्षों के उत्साह का समान रूप से वर्णन किया है। एक ओर समर्थ राक्षस सैनिक कवच धारण करते हैं, उनसे वानरों का कलकल सुना नहीं जाता तथा युद्ध में विलम्ब जान कर उनका हृदय खिन्न हो रहा है' (१२:६७)। और दूसरी ओर—'राक्षसों को समीप आया जान,क्रोध में दौड़ पड़ा वानर सैन्य, धैर्यशाली सुग्रीव द्वारा शांत किये जाने पर रुक-रुक कर कलकल नाद कर रहा है' (१२:७०)। तेरहवें से लेकर पन्द्रहवें आश्वास तक विस्तार से युद्ध वर्णन है जिसमें

वीर तथा रौद्र रस का पूरा परिपाक है। युद्ध वर्णन में अनुभावों का अधिक विस्तार होता है, यत्र-तत्र संचारी भावो का चित्रण भी है :—

अवहीरणा ण किज्जइ सुमरिज्जइ संसए वि सामिअसुकअम्।
ण गणिज्जइ विणिवाओ दट्ठे वि भ अम्मि संमरिज्जइ लज्जा॥
१३:१६॥

इस प्रसंग मे स्मृति, धृति, लज्जा आदि कई भाव एक साथ उपस्थित हुए हैं।

प्रवरसेन के 'सेतुबन्ध' में अद्भुत रस को पर्याप्त अवसर मिला है। इस रस के स्थायी विस्मय के लिये आश्चर्यजनक तथा विचित्र वस्तुएँ आलम्बन होती हैं और 'सेतुबन्ध' में राम का बाण-सन्धान, सागर का उस पर प्रभाव, पर्वतों का उत्पाटन, उनका सागर-तट पर लाया जाना, सागर में पर्वतों का गिराया जाना तथा सेतु-निर्माण ऐसी घटनाएँ हैं जो अलौकिक होने के साथ ही आश्चर्यजनक हैं। इनके वर्णन-विस्तार में व्यापक रूप से अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। कवि ने इन समस्त प्रसंगों में अद्भुत परिस्थितियों की कल्पना की है—'अर्द्धभाग के उखाड़ लेने पर भूमितल से जिनका सम्बन्ध शिथिल हो गया है, जिनके शेषभाग को अधःस्थित सर्प खींच रहे हैं और जिन पर स्थित नदियाँ पातालवर्ती कीचड़ में निमग्न हो रही हैं, ऐसे पर्वतों को वानर उखाड़ रहे हैं।' (६:४०) इस प्रकार के सैकड़ों दृश्य इन प्रसंगों में हैं। युद्ध-वर्णन के प्रसंग में भयानक रस का निर्वाह भी हुआ है। वीर योद्धाओं का भीषण युद्ध भयोत्पादक है, और भय के कारण युद्ध से विमुख होकर भागते हुए वीरों का वर्णन भी विस्तार के साथ किया गया है। कवि राम बाण के आतंक का वर्णन करता है—'काट कर गिराये गये सिरों से जिनकी सूचना मिलती है, ऐसे राम बाण, धनुष खींचने वाले राक्षस के हाथ पर, मारने की कल्पना करने वाले राक्षस के हृदय पर तथा 'मारो मारो' शब्द कहनेवाले राक्षस के मुख पर गिरते ही दिखाई देते हैं।' (१४:६) सागर को देख कर वानर सैन्य पर भय का आतंक छा जाता है। प्रवरसेन ने वानर

वीरों के भय का चित्रण भावात्मक शैली मे किया है :—

कह वि ठवन्ति पवङ्गा समुद्दंसणविसाअविमुहिज्जन्तम् ।
गलिअगमणाणुराअं पडिवन्थणिअत्तलोअणं अप्पाणम् ॥२:४६॥

इस आतंक में विस्मय का भाव भी है, परन्तु समुद्र अनेक मार्ग मे विराट वाधा के रूप मे उपस्थित हुआ है, इस कारण वह भय का आलम्बन भी है।

'सेतुबन्ध' में करुण रस की अवतारणा भी की गई है। काव्य-शास्त्र के अनुसार वास्तविक अथवा काल्पनिक मृत्यु से रस की सृष्टि होती है। इस महाकाव्य में सीता के सम्मुख राम का मायाशीश लाया जाता है और सीता राम की मृत्यु की कल्पना से करुणाविभोर हो जाती हैं। इस प्रसंग मे कवि ने अनुभावों का विस्तृत वर्णन किया है—थोड़ी-थोड़ी साँस लेती हुई मूर्च्छा के बीत जाने पर भी अचेत-सी पड़ी हुई सीता ने सतत प्रवाहित अश्रुजल से भारी और कष्ट के कारण चढ़ी हुई पुतलियों वाले नेत्र खोले' (११:६०)। सीता के विलाप और रुदन में यही करुण भावना व्यंजित है। युद्ध के अन्तराल में राम-लक्ष्मण नाग-पाश में बँध जाते हैं। उस अवसर पर राम की मूर्च्छा पहले खुल जाती है और राम लक्ष्मण को मृत मान कर विलाप करने लगते हैं। मेघनाद के वध पर रावण और रावण के वध पर विभीषण में कवि ने करुण भाव का चित्रण किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवरसेन ने अनेक रसो का प्रयोग अपने महाकाव्य मे किया है। इस काव्य मे वीभत्स, हास्य तथा शान्त को छोड़, अन्य सभी रसों का पूरा विस्तार है। पर वीर, रौद्र, शृंगार तथा अद्भुत रसो का अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है।

अलंकारों का प्रयोग महाकाव्यों की शैली की प्रमुख विशेषता है।

इसी कारण इनको अलंकृत काव्य कहा गया है। शब्दालंकारों में 'सेतु-बन्ध' में प्रमुखतः अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास का प्रयोग, अन्य महाकाव्यों के अनुसार, प्रस्तुत काव्य में बहुत अधिक हुआ है। संस्कृत महाकाव्यों में यमक का इतना अधिक प्रचलन रहा है कि कभी-कभी कवि ने सम्पूर्ण सर्ग में इसका प्रयोग किया है। परन्तु यह प्रकृति बाद के महाकाव्यों की है। प्राकृत कवि प्रवरसेन ने इस प्रकार तो यमक का प्रयोग नहीं किया है, परन्तु गलितक छंदों में इसका प्रयोग हुआ है और दो आर्या (१ : ५६, ६२) छंदों में भी। चार गलि-तक छंदों (६:४३,४४,४७,५०) में तो पहला चरण दूसरे चरण में और तीसरा चरण चौथे में ज्यों का त्यों दुहराया गया है :—

मणिपहम्मसामोअअं मणिपहम्मसामोअअम् ।
सरसरएणणिद्दावअं सरसरएणणिद्दावअम् ॥६:४३॥

श्लेष का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है। उदाहरणार्थ द्वितीय आश्वास के छंद ३ में 'सासअमएण' का अर्थ चन्द्रमा के पक्ष में 'जिसके अंक में मृग है' और गज के पक्ष में 'जिसके शाश्वत मदधारा है', ऐसा लगेगा। छंद ८ में 'सुहिअं' तथा 'वेलवन्तं' में भी श्लेष है।

अर्थालंकारों का प्रयोग कवि की कल्पनाशक्ति तथा सौन्दर्य बोध की प्रतिभा पर निर्भर है। बाद में अलंकारों का प्रयोग निर्जीव होकर ऊहात्मक तथा उक्तिवैचित्र्य प्रधान हो गया है, परन्तु पहले कवियों में अलंकार प्रस्तुत वर्ण्यवस्तु को अधिक प्रत्यक्ष, बोधगम्य तथा सुन्दर रूप में चित्रित करने के लिये प्रयुक्त हुये हैं। अप्रस्तुत विधान में उनकी कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है। अनेक स्थलों पर अलंकार से भाव-व्यंजना हुई है। प्राकृत साहित्य में 'सेतुबन्ध' सर्वप्रधान अलंकृत काव्य है। इसमें प्रमुख रूप से उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है। प्रकृति वर्णन पर विचार करते समय तथा अन्य प्रसंगों में ऐसे अनेक चित्रों को उद्धृत किया जा चुका है जिनमें अलंकारों के प्रयोग से प्रस्तुत दृश्य-विधान को अधिक प्रत्यक्ष और चित्रमय किया गया है। यहाँ अलंकारों

के प्रयोग की दृष्टि से विचार ना रकहैं ।

उपमा अलंकार में प्रस्तुत (उपमेय) और अप्रस्तुत (उपमान) के समान-धर्म का कथन होता है। वस्तुतः यह अलंकार सादृश्यमूलक अलंकारों में प्रधान है तथा इसके माध्यम से इन अलंकारों का प्रयोग होता है। दो वस्तुओं अथवा स्थितियों को इस प्रकार प्रस्तुत करने से वर्ण्य विषय में उत्कर्ष आ जाता है, वह अधिक प्रत्यक्ष अथवा व्यंजक हो जाता है। आकाश और कमल की समानता का वर्णन कवि करता है—'शरद् ऋतु का आकाश भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए उस अपार विस्तृत कमल के समान सुशोभित हो रहा है जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, सूर्य की किरणें ही जिसमें केसर हैं और बादलों के सहस्रों खंड दल हैं' (१:१७)। यहाँ उपमा की कल्पना से कवि ने आकाश के चित्र को सुन्दर तथा प्रत्यक्ष बनाया है। अनेक चित्रों में कवि ने उपमा के साथ अन्य अलंकारों को प्रस्तुत कर चित्र में कई व्यंजनाएँ समाहित कर दी हैं— 'राम की दृष्टि सुग्रीव के वक्षस्थल पर वनमाला की तरह, हनूमान पर कीर्ति के समान, वानर सेना पर आज्ञा के समान, और लक्ष्मण के मुख पर शोभा के समान पड़ी' (१:४८)। सहोपमा तथा साधर्म्य उपमा के साथ इसमें यथासंख्य तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी है। इस तुलना से कवि ने सुग्रीव के भाषण के प्रभाव को अधिक व्यंजित किया है— 'चन्द्र के दर्शन से प्रसुप्त कमल-वन जिस प्रकार सूर्योदय होने पर खिल जाता है, उसी प्रकार सुग्रीव के प्रथम भाषण से निश्चेष्ट हुई वानर सेना बाद में उत्साहित तथा लज्जित होकर भी जाग्रत हो गई' (४:१)। यहाँ कमल-वनों के प्रस्फुटन से चित्र को प्रत्यक्ष तथा भावपूर्ण बनाया गया है (४:४५)। ऋक्षपति के वचनों से रत्नाकर से उछाले रत्नों के साम्य में भी वाणी की गरिमा के साथ कथन की महत्ता का भी संकेत है (५:१३)। 'राम के मुख पर आक्रोश को चन्द्रमा पर राहु की छाया के समान' कहने से राम के मुख की भंगिमा और मन का विनाशकारी क्रोध दोनों ही व्यक्त हुए हैं। सेतुपथ से बँधे हुए समुद्र को खम्भे में बाँधे गये

बनैले हाथी के समान, वर्णित करने से दृश्य अधिक सजीव हो गया है (८:१०१)। रूपकपुष्ट उपमाओं में चित्र अधिक पूर्ण हो सका है—'जिसके राक्षस विटप (पत्ते) हैं, सीता किसलय है ऐसी लता के समान लंका सुवेल से लगी है' (३:६२)। कहीं कहीं पौराणिक कल्पनाओं का सहारा भी लिया गया है। नदियों के प्रवाह को प्रलयकालीन उल्का-दण्ड के समान इस रूप में कहा गया है :—

मुहपुञ्जिअग्गिणिवहा धूमसिहाणिहणिराअअड्ढिअसलिला।
णिवडन्ति णहुक्खित्ता पलउक्कादण्डसंणिहा णइसोत्ता॥ ५:७२॥

'सेतुबन्ध' में रूपकों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक हुआ है, और इसके माध्यम से प्रस्तुत में अप्रस्तुत चित्रों का अभेद रूप से आरोप किया गया है। इस आरोप में एक दूसरे के अत्यधिक निकट आ जाने के कारण वर्ण्य अधिक सजीव हो जाता है और उपमानों की योजना उससे एक रूप होकर सम्पूर्ण चित्रण को दृश्यबोध तथा गति प्रदान करती है। यह उद्देश्य रूपकों की शृंखला अथवा साँग रूपक में अधिक सिद्ध होता है। वर्षाकाल के लिये कवि कल्पना करता है कि—'यह राम के उद्यम सूर्य के लिये रात्रिकाल, आक्रोश महागज के लिये अर्गलाबन्ध तथा विजय-सिंह के लिये पिंजड़ा है' (१ : १४)। इसमें वर्षाकालीन राम की मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है और राम की उपायहीनता की व्यंजना भी अन्तर्निहित है। इसी आश्वास के २४ वें छंद में नायक नायिका का रूपक वर्षा तथा दिशाओं के लिये बाँधा गया है। कभी-कभी रूपक की शृंखला से चित्र अधिक सुन्दर बन पड़ा है। कवि 'कल-हंसों के नाद को कामदेव के धनुष की टंकार, कमलवन पर संचरण करने वाली लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि तथा भ्रमरी और नलिनी के संवाद' (१ : २६) के रूप में कहता है। इसमें एक ही स्थिति के लिये कई अप्रस्तुत योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतु को भी 'सुग्रीव के यश का मार्ग, राघव के जीवन का प्रथम अवलम्ब तथा सीता के अश्रुओं को अन्त करने वाला रावण का वध-दिवस' (१ : १६) कहा

गया है। अन्यत्र सम्पूर्ण दृश्य-विधान में एक रूपक घटित किया जाता है :—

दीसन्ति गअउलणिहे ससिधवलमइन्दविद्दए तमणिवहे ।
भवणच्छाहिसमूहा दीहा णीसरिअकद्दमपअच्छाआ ॥ १०:४७ ॥

चन्द्रोदय के बाद भवनों के छाया-समूह के लिये कवि ने सिंह से भगाये गये गजों के पंकिल चरण-चिह्नों की कल्पना की है।

'सेतुबन्ध' में उत्प्रेक्षा का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है और कवि ने उसमें उत्कर्ष प्राप्त किया है। इस अलंकार में कवि आरोप के स्थान पर प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना करता है। प्रवरसेन आदर्श कल्पनाओं के कवि हैं, अवएव उनमें उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग अधिक मिलते हैं। इनके माध्यम से कवि ने वस्तु-स्थितियों के सम्बन्ध में, उनके विभिन्न हेतुओं की कल्पना में तथा फल की संभावना में वैचित्र्य उत्पन्न किया है। 'नदियों के प्रवाहित जल-रूपी वलयों (भँवरों) के बीच में भ्रमित पर्वत इस प्रकार दिखाई दे रहे हैं मानों समुद्र के आवर्तों में चक्कर लगा रहे हों' (६ : ४६)। इसमें एक वस्तु-स्थिति को दूसरी वस्तु-स्थिति की संभावना से अधिक प्रत्यक्ष किया गया है। अनेक स्थितियों के कारण के सम्बन्ध में भी कल्पना द्वारा वैचित्र्य की सृष्टि की गई है—'दूर तक दिशा-दिशा में दौड़ते से जिसके शिखर विकट आकार में प्रतिबिम्बित होते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों चोटी पर वज्र प्रहार होने से उसका एक भाग समुद्र में गिर गया है' (६ : १३)। शिखरों के प्रतिबिम्ब के कारण के सम्बन्ध में कवि ने कल्पना की है, जो वास्तव में उसका कारण नहीं है। इस उत्प्रेक्षा में वानर सैन्य के साथ राम के प्रस्थान का चित्र सशक्त ढंग से अंकित किया गया है :—

वच्चइ अ चडुलकेसरसङ्कुज्जलालोअवाणरपरिक्खित्तो ।
सव्वदिसाआअड्ढिअपलअपलित्तगिरिसंकुलो व्व समुद्दो ॥
१ : ५२ ॥

प्रलय की उद्दीप्त अग्नि से प्रज्वलित पर्वतों से आवेष्ठित सागर की

कल्पना से यहाँ कवि ने सेना के उत्साह, आवेश तथा आन्दोलन आदि को व्यंजित किया है। सागर मानवीकरण में 'नदियों के मुख से अपने ही फैले हुए जल को पीता हुआ मानों अपने यश को पीता है' (६ : ५)। तथा पर्वतोत्पाटन के समय कवि 'इधर उधर भटकने से श्रान्त हाथी के कानों के संचलन, आँखों के बन्द करने तथा खेद से सूँड़ हिलाने' के कारण की संभावना 'साथियों के स्मरण आ जाने' के रूप में कल्पित की है' (६ : ६१)। कभी एक दृश्य के कई पक्षों को उभारने के लिये उत्प्रेक्षा शृंखला में भी प्रयुक्त होती है :—

उक्खअदुमं व सेलं हिमहअकमलाअरं व लच्छिविमुक्कम्।
पीअमइरं व चसअं बहुलपओसं व मुद्धचन्दविरहिअम् ॥२ : ११॥

सागर मानों वृक्षहीन पर्वत है, मानों आहत कमलोंवाला सरोवर, खाली प्याला या मानों अँधेरी रात हो। इससे सागर का विराट रूप, विस्तार तथा आतंकित करने वाला शून्य व्यंजित हुआ है।

उपर्युक्त अलंकारों के प्रयोग के अतिरिक्त 'सेतुबन्ध' में गम्यमान सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग सुन्दर रूप में मिलता है। इनमें विशेषकर अर्थान्तन्यास, दृष्टान्त तथा निदर्शना अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। सुग्रीव वानर वीरों से कहते हैं—'हे वानर वीरों, प्रस्तुत कार्य-भार तुम्हारा ही है; प्रभु शब्द का अर्थ होता है केवल आज्ञा देने वाला, क्योंकि सूर्य तो प्रभा मात्र विस्तारित करता है पर कमल सरोवर अपने आप खिल जाते हैं' (३:६)। यहाँ सामान्य का विशेष से साधर्म्यद्वारा समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तन्यास है। इसी आश्वास के ६ वें छंद में ऐसा ही प्रयोग है। इनसे वर्ण्य प्रसंग में उत्कर्ष आ जाता है और वे बोधगम्य अधिक हो जाते हैं। अगले चित्र में निदर्शना अलंकार है—'क्या अधिक समय बीतने पर इस प्रकार विचलित राम को धैर्य छोड़ न देगा? कमल से उत्पन्न लक्ष्मी क्या रात में उसका त्याग नहीं कर देती' (३ : ३०)। इसमें दृष्टान्त रूप में अपना कार्य उपमा द्वारा व्यक्त किया गया है। दृष्टान्त में उपमेय, उपमान और साधारण-धर्म का बिम्बप्रति-

बिम्ब भाव होता है—'वानरो के हृदयों में लंकागमन का उत्साह व्याप्त हो गया' जिस प्रकार 'सूर्य का प्रभात-कालिक आतप गिरिशिखरों पर फैलता है' (४ : २)। इसमें विशेष स्थिति से विशेष स्थिति का समर्थन बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से है। परन्तु प्रवरसेन के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि इन्होने अपने महाकाव्य मे अलंकारों का प्रयोग अधिकतर सहज रूप में किया है और भावव्यंजना के लिये भी। यही कारण है प्रस्तुत महाकाव्य में अलंकारो का अर्थ-चमत्कार के रूप में प्रयोग नहीं हुआ है।

छंदों की दृष्टि से प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' की स्थिति बहुत सरल है। १२९० छंदो में १२४६ आर्यागीति छंद हैं और ४४ विविध प्रकार के गलितक छंद हैं। सस्कृत महाकाव्यों के समान इसमें सर्ग के अनुसार छंदों का परिवर्तन नहीं है और न अनेक छंदों के प्रयोग का आग्रह ही। अपभ्रंश महाकाव्यों में अन्त्यानुप्रास अथवा तुक विशेष रूप से पाये जाते हैं, परन्तु प्राकृत महाकाव्यों में ऐसा नहीं है। 'सेतुबन्ध' के गलितक छंदों में यमक का प्रयोग है, पर उसे भी तुक नहीं कहा जा सकता।

सांस्कृतिक संदर्भ

प्रस्तुत महाकाव्य में राम-कथा है जिसकी परम्परा इसके रचना-काल से बहुत पहले की है। परन्तु ऐसी रचनाओं में कथावस्तु के प्राचीन होने पर भी समस्त वातावरण युग से प्रभावित होता है। कवि कथा के ऐतिहासिक काल को ध्यान में रख कर उसके अन्तर्गत उस विशिष्ट काल की सांस्कृतिक परम्पराओं को ग्रहण कर सकता है। परन्तु फिर भी व्यापक जीवन को प्रस्तुत करने में कवि अपने युग का आधार अधिक लेता है, विशेषकर ऐसे संदर्भों में जो काव्य में अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत आते हैं। इसके साथ ही इन महाकाव्यों में ऐतिहासिक काल की स्पष्ट चेतना नहीं है, इस कारण उसके स्थान पर कवि का अपना काल ही व्यंजित हो सका है।

दार्शनिक चिन्तन अथवा धार्मिक भावना के लिये इस महाकाव्य में अधिक अवसर नहीं रहा है। इस सम्बन्ध में बहुत कम संदर्भ इसमें मिलते हैं। प्रारम्भिक प्रार्थना में विष्णु के रूप में ब्रह्म की कल्पना प्रस्तुत की गई है—'वह बढ़े बिना उतंग, फैले बिना सर्वव्यापक, निम्नगामी हुए बिना गम्भीर, महान होकर गम्भीर और अज्ञात होकर सर्वप्रकट है' (१:१)। आगे वामनावतार के प्रसंग में 'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले' तथा 'तीनों लोकों को अपने आप में आविर्भाव-तिरोभाव करते हुए अपने आप में व्याप्त, (२:६,१५) विष्णु-रूप ब्रह्म का निरूपण किया है। जाम्बवान् ने राम के विराटत्व का संकेत किया है। और उन्हीं के वचनों में प्रत्यक्ष तथा अनुभवजन्य ज्ञान की अपेक्षा अप्रत्यक्ष प्रमाण तथा अध्ययन जनित ज्ञान को महत्त्व दिया गया है (४:३६,२७)। इस महाकाव्य में माया का सामान्य अर्थ ही लिया गया है जिसमें वह प्रवंचना, छलना आदि राक्षसी लीला है। सीता के 'मायाजनित मोह का अवसान हुआ' और 'इन्द्रजीत माया में छिपा है', इनमें माया का प्रयोग इसी अर्थ में है (११ : १३७; १३ : ६६)।

धार्मिक दृष्टि से इस महाकाव्य में अवतारवाद का पूरा विकास परिलक्षित होता है और अवतारवाद की पूर्ण स्थापना मिल जाती है। ब्रह्म ही विष्णु हैं, और विष्णु ने अनेक अवतार ग्रहण किये हैं (१:१)। वे विष्णु इन्द्र से महान् हैं, क्योंकि इन्होंने देवराज के यश को उखाड़ फेंका है (१:२)। राम स्वयं विष्णु के अवतार हैं—'विष्णु रूप में सागर का उपभोग किया है, प्रलय सहचरी लक्ष्मी का स्मरण नहीं कर रहे हैं' तथा 'विष्णु रूप राम के तुम (वानर) सहायक हो' (२:३७;३:३)। इसके अतिरिक्त कवि ने विष्णु के वराहावतार, वामनावतार तथा नृसिंहावतार का बार-बार उल्लेख किया है और स्थान-स्थान पर इनकी चित्रमय कल्पनाएँ की हैं। त्रिदेव को भी स्वीकृति मिली है। विष्णु के साथ अर्द्धनारीश्वर शंकर की, तांडवनृत्य की मुद्रा में वन्दना की गई है (१:५-८)। विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति बतलाई गई है

(१:१७)। वस्तुतः विष्णु ही भक्ति के प्रधान आलम्बन हैं, क्योंकि वे संसार के विश्रामस्थल हैं (६:२), त्रिभुवन के मूलाधार हैं। धार्मिक संदर्भों में भाग्यवाद के प्रसंग भी आते हैं। कुछ स्थलों पर इस महाकाव्य (११:८६) में भाग्यवाद का संकेत मिलता है। सीता कहती हैं—'मेरे मनोरथ भाग्य चक्र से टकरा गये।' राम विलाप करते हुए कहते हैं—'ऐसा संसार में कोई प्राणी नहीं जिसके पास भाग्य का परिणाम उपस्थित न हो' (११:८५ ; १४:४३)। प्रातःकाल के धार्मिक कृत्य 'उपासना आदि' का उल्लेख है, राम 'खणसंमाणि धम्मो' होकर युद्ध की तैयारी करते हैं, तथा रावण के यहाँ प्राभातिक मंगल पाठ होता है (१२:२७,४२)। वीर धर्म को श्रेष्ठ माना गया है, इससे अमरत्व प्राप्त होता है, स्वर्ग में अप्सराएँ प्रतीक्षा करती हैं तथा इस लोक में मंगल और यश मिलता है (१५:८५;१३:४७;३:४२)। मृत्यु के बाद अन्तिम संस्कार किये जाने का उल्लेख है (१५:६१)।

समाज का मूलाधार उसके सदस्यों का आचरण है। प्रत्येक युग में इस प्रकार के आचरण के अपने प्रतिमान रहते हैं। 'सेतुबन्ध' के सामाजिक वातावरण में मैत्री का निर्वाह पवित्र कर्तव्य माना जाता है, यद्यपि इसका एक-रस निर्वाह कठिन माना गया है (१:६)। सम्पूर्ण कथा में सुग्रीव इस भावना से प्रेरित चित्रित किये गये हैं। सुजन संभावित आशा के उपस्थित होने पर भी अपने मनोरथ को व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं। बिना कहे कार्य-योजना का अनुष्ठान करने वाले सत्पुरुष कम होते हैं (३:४:६)। उपकार का बदला चुकाना अनिवार्य माना गया है, क्योंकि बिना ऐसा किये वह उपकर्त्ता का दया भाजन बना रहेगा और जीता हुआ मृतक समान रहेगा (३:१२)। प्रभु आज्ञा का पालन करना सहज कर्तव्य माना गया है और प्रभु का अर्थ आज्ञा देने वाला कहा गया है (३:६)। आत्म-निर्भरता, आत्म-संयम, उत्साह, वीरता आदि गुणों का अभिनन्दन किया गया है (३:१५,२०,१७,४१ ४२)। सामर्थ्यवान् व्यक्ति बिगड़े कार्य को भी संभाल लेते हैं; स्वाभिमानी

व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा का अतिक्रमण सहन नहीं करते; मर्यादा का उलंघन कुमार्ग है जिस पर कार्य बनकर भी बिगड़ जाता है (३:१४,१८;४:२६) । समाज में अनुभव से परिपक्व ज्ञान वाले वयोवृद्ध जनों का सम्मान किया जाता है, और यौवन में विमुग्धता मानी गई है (४:२५) । जिनके हार्दिक अभिप्राय के साथ कार्यारम्भ भी महत्त्वपूर्ण होता है, वे महापुरुष कहे गये हैं (७:६) । भयवश मर्यादा को भंग करने वाले जनों को गौरवहीन, पराधीन तथा निर्लज्ज (११:२६) माना गया है ।

आचरण नीति के अतिरिक्त एक व्यवहार नीति भी होती है । जो आचरण का आदर्श नहीं मानी जाती पर जिसका प्रयोग व्यवहार कुशलता की दृष्टि से किया जाता है । साधारणतः इसमें राजनीति अथवा कूटनीति भी आ जाती है । अस्थिर-चित्त परिजन का भरोसा करना उचित नहीं है, इसी प्रकार अनुपयुक्त कार्य में नियोजित उत्साह अनुचित माना गया है । कार्य की शीघ्रता में धैर्य्य नहीं छोड़ना चाहिये (३:५३;४:२६) । राजा के लिये अपने सेनापति पर विश्वास प्रदर्शित करना अपेक्षित है; विश्वास पाकर शत्रु को मित्र बना लेना उचित है और उसकी प्रशंसा करके तथा राज्य देने का आश्वासन देकर मित्रता दृढ़ करना नीति है (४:५६;६५) । विनयपूर्वक सेवा किये जाने पर शत्रु भी बान्धवों से कहीं अधिक स्नेही हो जाते हैं । विषाद धैर्य का, यौवनमद विजय का तथा अनंग लज्जा कर अपहरण का लेते हैं (३:२८;४:२३) । राज्यलक्ष्मी के विषय में सतर्क किया गया है कि वह अनेक असाधारण पुरुषों के सम्बन्ध में चंचल रहती है । इसमें उस समय की राजनीतिक स्थिति का संकेत भी हो सकता है (११:७८) ।

सामान्य सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ संदभ इस महाकाव्य में आये हैं । समाज में अभिजात्य वर्ग का सम्मान था यद्यपि ऐसे सम्मानित व्यक्ति कम ही रहे होंगे । वस्तुतः इसी सामन्ती समाज के ऐश्वर्यविलास का चित्र इसमें अधिक सजीवता के साथ उभरा है । इस समाज

में स्वयंवरण की प्रथा भी थी (१:११;१:३४)। स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण धारण करते थे, यद्यपि पुरुषों के आभूषण अपेक्षाकृत बहुत कम होते थे। स्त्रियों के हाथ में कंकण तथा वलय, वेणीबन्धन में मणि, कमर में कांचीदाम तथा अन्य अनेक आभूषण धारण करने का उल्लेख किया गया है (१:३०;३:५;१:३६;७:६०)। स्त्रियाँ अंगराग तथा गोरोचन आदि से शरीर को सुगन्धित करती थीं। माला, वलय तथा कुण्डल पुरुष भी धारण करते थे (१:४८,६:६४)। राजपुरुषों के अन्तःपुर में अनेक स्त्रियाँ रहती थीं उनका उनसे प्रेम-व्यापार चलता रहता है। उन कामिनियों में आपस में ईर्ष्या, मत्सर, निन्दा, उपालम्भ तथा आलाप-कलाप चलता रहता है। साथ ही अन्तःपुर का जीवन ऐश्वर्य विलासपूर्ण है (११:१-२१)।

आमोद-प्रमोद का जीवन ही सामन्ती समाज की विशेषता है। इसके लिये क्रीड़ा-गृह, प्रमद-वन, लताकुंज आदि स्थल विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं। इन क्रीड़ा-स्थलों पर अनेक प्रकार के राग-रंग मनाये जाते हैं (६:४३;११:३७,६१;२:२३)। इनमें मद-पान तथा संगीत महत्त्वपूर्ण हैं, इनके अतिरिक्त अन्य भोग-विलास के साधन जुटाये जाने का उल्लेख है। काम-क्रीड़ा का विस्तार से वर्णन है जो काम-शास्त्र के सूक्ष्म ज्ञान का परिचय देता है (१०:५६-८२)। संभोग की समस्त प्रक्रिया के साथ पुष्प-शैय्या, मान, प्रणय-कलह, प्रणय-कोप, दूती, मनुहार आदि का वर्णन है जिससे उस वातावरण की विलासप्रियता का आभास मिलता है। श्वेत तथा पीले रंगों के वस्त्र का स्पष्ट उल्लेख है, संभवतः इस प्रकार सूती तथा रेशमी कपड़ों की ओर संकेत किया गया है (६:४७;१०:४६)।

इस समाज में नारी का जीवन पुरुषापेक्षी अंकित है। उसके सहारे वह अपने जीवन को किसी भी स्थिति में सुखपूर्वक बिता सकती है। पति के बिना उसका जीवन अर्थहीन हो जाता है। स्वभाव से युवतियाँ विवेक-शून्य मानी गई हैं। और पति के मरण के बाद आत्मघात (सती के

समान) की प्रथा का संकेत भी मिलता है (११:७५-७७,११४)। वैधव्य की स्थिति नारी के लिये असह्य है, वियोग की स्थिति में वह अपने वेणींबन्धन को खोलती नहीं (११:१२६) । सामान्य नागरिकों का उल्लेख भी हुआ है । रावण युद्ध-यात्रा के लिये सभा से निकला तब 'नागरिकों के कोलाहल से समझा गया कि वह नगर के मध्य में आया है'(१५:४)। इससे यह ज्ञात होता है कि युद्ध आदि के समय राजा अपने नागरिकों को आश्वासन आदि देता था ।

समाज की आर्थिक स्थिति का अनुमान भी इस महाकाव्य के आधार पर किया जा सकता है, परन्तु यह समाज राजा तथा सामन्तों का है । इसमें सुन्दर नगरों की कल्पना है जिसमें स्फटिक तथा नील-मणि के फर्शवाले ऊँचे भवन और साथ में उद्यान, उपवन हैं (१०:४७;६:६०;१०:४६;१२:६६) । इन घरों में द्वार हैं, सम्भवतः सामने प्रांगण हैं और दीवारों में गवाक्ष यथा झरोखे हैं (१०:४७-४८) । राक्षस सेना के प्रयाण के समय के वर्णनों से ज्ञात होता है कि नगर के मुहल्लों में संकीर्ण मार्ग हैं, गोपुरों को पार करने में रथों को कठिनाई होती है, घोड़ों के जुओं से उसके कपाट खुल जाते हैं और सारथी के द्वारा ध्वजाओं के तिरछे किये जाने पर भी वे द्वार के ऊपरी भागों को छू लेते हैं (१२:८६-६०) । सारे नगर की सड़कें राजपथ से मिलती हैं और जो राजमहल से किले के तोरण द्वार को जाती है । तोरण द्वार किले का मुख्य फाटक है । किले के चारों ओर नगर परकोटा है जो शत्रु के आक्रमण को सहता है । पर-कोटे के बीच में बुर्ज भी होंगे क्योंकि उसके बीच ध्वजपटह बजने का उल्लेख किया गया है । उतंग प्राचीर में चारों ओर गहरी और चौड़ी परिखा अर्थात् खाई है (१२:७५-८०) । नगर में समृद्ध बाज़ार भी रहे होंगे जिनमें अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के साथ रत्नों, मणियों का क्रय-विक्रय होता होगा । आभूषणों में रत्नालंकरणों का भी प्रचलन रहा होगा (६:४०) ।

सेना संगठन तथा युद्ध संचालन सम्बन्धी संदर्भों की कमी नहीं है।

सैनिक शक्ति का प्रधान स्वयं राजा है जिसकी आज्ञा से सेनापति सेना का संचालन करता है (१:४८)। व्यावहारिक दृष्टि से सेना के संचालन का दायित्व सेनापति पर ही है। राजा सेनापति पर पूर्ण विश्वास करता है और युद्ध की धुरी वह उसी को मानता है। राम ने सुग्रीव के द्वारा ही वानर सेना को आज्ञा दी है (४:४५)। सेना चतुरंगिणी है, उसमें पैदल, अश्वारोही, रथ तथा गज सेनाओं का उल्लेख है (१२:१८)। गज सेना का विस्तार से वर्णन है जिससे जान पड़ता है कि उस समय सेना में हाथियों का विशेष महत्त्व था। रथ-युद्धों के वर्णन से रथों के महत्त्व का पता भी चलता है। राजा अथवा प्रमुख सेनापतियों के पास विशिष्ट प्रकार के रथ रहते हैं (१२:७३,८२,८४)। सेनाओं के अपने अपने ध्वज रहते हैं तथा युद्धवाद्य का प्रचलन भी है (१२:४६)। सैनिक कवच धारण करते और सन्नाह पहनते हैं; ये कवच काफ़ी भारी हैं (१२:५४-६४)। अस्त्रों में धनुष सर्वप्रधान है, धनुर्विद्या में वीरों को बहुत दक्षता प्राप्त है (१२:२३)। इसके अतिरिक्त खड्ग, शूल, परिघ तथा असि के प्रयोग का भी उल्लेख है (१३:४,१३,२४,२५)। युद्ध में मूसल नामक अस्त्र का भी उल्लेख है (१३:८१)। युद्ध की विभिन्न शैलियों मे चक्रव्यूह, चक्रबन्ध, द्वन्द्व युद्ध तथा मुस्क-युद्ध का वर्णन किया गया है (१३:४; ८:२४;१३:८०-९६)। पौराणिक परम्परा के आयुधों में नागपाश तथा शक्ति प्रयोग का वर्णन मिलता है तथा विमान का उल्लेख भी परम्परा पर आधारित है (१४:१७;१५:४६;१४:३३)। वानर तथा ऋक्षों ने पर्वत तथा वृक्षों का उपयोग आयुधों के रूप में किया है। सैनिक पड़ाव डालने में पूरी सतर्कता तथा व्यवस्था का ध्यान रक्खा जाता है तथा स्कन्धावार का संगठन भी भली भाँति होता है (७:११८,९९)। सेनाएँ कई स्थितियों में युद्ध करते हुए वर्णित हैं—प्राचीर पर आक्रमण, दूर से अस्त्रों का युद्ध, आमने-सामने का युद्ध तथा द्वन्द्व-युद्ध। सेना के संचालन में तथा युद्ध में जयघोष की परम्परा भी विद्यमान है (३:२)।

पौराणिक संदर्भों के माध्यम से प्रस्तुत रचना की समकालीन सांस्कृ-

तिक चेतना का अध्ययन किया जा सकता है। इस काल तक अवतारवाद का पूर्ण विकास हो चुका था। राम अवतार हैं तथा विष्णु के माहात्म्य की स्थापना हो चुकी है। इस काल में विष्णु का प्राधान्य है। उनके अवतारों में आदिवराह, नृसिंह तथा वामन को बहुत प्रसिद्धि मिल चुकी है। इनमें भी आदिवराह की कल्पना इस युग की सर्वप्रिय कल्पना जान पड़ती है। प्रवरसेन ने आदिवराह और प्रलय की कल्पनाओं को उल्लसित होकर चित्रित किया है। वैसे तो सभी अवतारों में विष्णु का वर्णन है, पर स्वतन्त्र रूप से विष्णु के संदर्भ हैं—उन्होंने पारिजात का स्थानान्तरण किया है (१:४); लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं, वे सागर में शेषशैया पर शयन करते हैं (१:२१;२:३८), महाशक्तिशाली गरुड़ उनका वाहन है (२:४१;६:३६) तथा उन्होंने सागर-मंथन के समय मंदर का आलिगन किया है। प्रलय का चित्र कवि की कल्पना को अत्यधिक उत्तेजित करता है। इसके जलप्लावन, घिरते हुए प्रलय पयोद तथा प्रज्वलित वड़वाग्नि का चित्र विशेष रूप से सामने आता है (२:२,२७,३०;३६,३:३, २५;४:२८;५:१६,३२,२६,३३,४५,७१;६:१२,३३;६:५१,५३)। विष्णु ने आदिवराह के रूप में मधु दैत्य का नाश किया है (१:१;४,२०;६:-१३)। आदिवराह ने बलशाली भुजाओं पर पृथ्वी को धारण कर प्रलय के समय उसकी रक्षा की है (४:२२;६:२,१२)। आदिवराह के खुर से वसुमती प्रताड़ित हुई है (७:४०) और उसने अपने दाँढ़ से पृथ्वी को उछाल कर उसकी प्रलय से रक्षा की है (६:१३;६:५)। प्रलय के साथ सागर मंथन की कल्पना भी आकर्षक रूप में सामने आई है। सागर का मंथन मंदराचल द्वारा किया गया (१:४६;२:२६), मन्दराचल में सागर का वक्ष रगड़ा गया है (६:२) परन्तु फिर भी उसने उसके पातालस्पर्शी तल को स्पर्श नहीं किया (५:४४)। देव तथा असुरों ने सागर का मंथन किया है (३:३); हिरण्याक्ष आदि असुरों के झपटे से सागर दो भागों में विभक्त हो जाता है (२:३१)। मंथन के समय वासुकी की नेति बनाई गई है (२:१३)। मंथन द्वारा सागर से अमृत, चन्द्रमा, मदिरा, कौस्तुभ-

मणि (५:४) तथा लक्ष्मी (२:६) आदि रत्न प्राप्त हुए हैं। विष्णु वामनावतार में बलि से याचना करते हैं (२:६) और उनके इन्हीं चरणों से त्रिपथगा की उत्पत्ति हुई है (६:१२)। नृसिंहावतार में हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को उन्होंने अपने नखों से विदीर्ण कर डाला है (३:२०), इसी कारण वे हिरण्यकशिपु नाशक नृसिंह कहे जाते हैं (१:२)। सूर्य संबन्धी पौराणिक कल्पनाओं को स्थान मिला है। प्रलय काल में बारह सूर्य संतप्त होते हैं (४:२८) तथा सूर्य अपनी ज्वाला से संसार को प्रज्वलित कर देते हैं (५:१६)। सूर्य अपने रथ पर सवार होकर आकाश-मार्ग की यात्रा करता है (६:६६) जिसमें घोड़े जुते हुए हैं (६:२७,५४) और उनके सारथी अरुण रश्मियों की वल्गा से रथ को चलाते हैं (६:७४;१२:६,८)। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि त्रिविक्रम विष्णु की कल्पना सूर्य से विकसित हुई है और इस प्रकार यहाँ विष्णु के महत्त्व के साथ सूर्य की यह कल्पना साभिप्राय जान पड़ती है।

इस महाकाव्य में आर्येतर कई संस्कृतियों के तत्त्व सन्निहित हैं। देव-संस्कृति का प्रतिनिधित्व देवराज इन्द्र करते हैं। उड़नेवाले पंखधारी पर्वतों को इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंखों को काट कर स्थिर कर दिया है। इस पौराणिक आख्यान के अन्तराल में देव और दानवों के किसी संघर्ष का संकेत किया गया है (२:१४;५:६४;७:५३;३:४२;८:२५, ३७)। बार-बार इसके उल्लेख के आने से यह अनुमान होता है कि इस युग-विशेष में किसी कारण इस प्रतीक का बहुत अधिक मान बढ़ गया था। सुवेल को वज्र से अचल कहा गया है (६:६) और आगे वज्र-प्रहार से उसके टूटे हुए शिखरों का वर्णन किया गया है (६:१३)। देव संस्कृति ऐश्वर्य-विलास की संस्कृति है। इन्द्र के ऐरावत हाथी (२:२२; ६:५७,८५) तथा नन्दन वन का कई स्थलों पर संदर्भ आया है (८: १०३)। सुरसुन्दरियों के आमोद-प्रमोद का वर्णन भी इसी तथ्य की ओर इंगित करता है और कल्पलता की कल्पना भी इसी का प्रतीक है (६:४६,८२)। इसमें नाट्यकला के प्रचलन का संकेत है (१२:६७)।

नाग-संस्कृति के तत्त्व भी खोजे जा सकते हैं। सर्पों में शेषनाग तथा वासुकी का विशेष स्थान है। शेषनाग पर विष्णु शयन करते हैं (९:२) और उसने पृथ्वी को धारण कर रखा है (६:१९,५५)। वह महासर्प है जो धरा के आधार को सँभाले हुये है (७:५९)। शेष ने ही त्रिविक्रम का भार सँभाला है (९:७)। सुवेल पर्वत के मूल को भी शेष ने ही सँभाल रखा है। उसके सिर पर रत्न है। वासुकी मंथन के समय नेति बना है, वह मन्दराचल के चारों ओर लपेटा गया है (८:११; ९:८)। इन समस्त संदर्भों से जान पड़ता है कि नाग जाति आर्यों की प्रबल सहायक जातियों में से रही है।

यक्ष, किन्नर तथा गन्धर्व संस्कृति का प्रधान लक्षण है उसकी आमोद प्रियता है। इस जाति में नृत्य गीत आदि का विशेष प्रचार रहा है। इस जाति में युद्ध के प्रति स्वाभाविक विकर्षण रहा है। कामदेव इनका एक देवता है, ऐसा जान पड़ता है (१:१८)। काम के धनुष पर पुष्पवाण आरोपित होते हैं (१:२९)। किन्नर मुक्त भाव से रहने तथा नाच गाने से प्रेम करने वाले हैं। यक्ष गन्धर्व भी आमोदप्रिय हैं (९:४३)। किन्नरों के युग्म मुक्त रूप से प्रेम-विहार करते घूमते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ और भी संदर्भ हैं। यम का उल्लेख कई बार किया गया है (१:४४;४:४०;८:१०५)। इससे यह कहा जा सकता है कि यमराज को देवता रूप में इस युग में मान्यता प्राप्त थी। इस समस्त अध्ययन से हमारे सम्मुख प्रवरसेन के युग का सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सेतुबन्ध

प्रथम आश्वास

विष्णु वन्दना

हे सामाजिक, मधु नामक दैत्य का नाश करनेवाले भगवान् विष्णु को प्रणाम कीजिये, जो बढे बिना उत्तुंग, फैले बिना सर्वव्यापक (विस्तार का भाव), निम्नगामी हुए बिना गम्भीर, महान होकर सूक्ष्म तथा अज्ञात होकर भी सर्वप्रकट है।[1] जिस नृसिंह-रूप विष्णु के, हरिण्यकशिप के रुधिर लगे श्वेत नख-प्रभा समूह के प्रकाशित होने पर, ढीली होकर कंचुकी जिसकी खिसक गई है ऐसी महासुरो की राजलक्ष्मी लज्जावश[2] पलायन कर गई है। जिसके हाथो से निष्ठुरता से पकड़ा गया, अपनी मुटाई की विशेषता के कारण कठिनाई से ग्रहण किया जा सकनेवाला अरिष्टासुर का कण्ठ, टेढ़े करके मरोड़े जाने से क्लेश के साथ प्राण विहीन हुआ (अथवा

१. समुद्र-पक्ष में :—हे सामाजिक, ब्रह्मास्त्र से मथित होने पर मधु (अमृत-मदिरा) निकालने वाले अथवा मधु-दैत्य के चरणों से मथे जाने वाले समुद्र को प्रणाम कीजिये। जिस सागर की जल तरंगे उन्नत-अवनत होती रहती हैं, बड़वामुख रूपी शत्रु के कारण जिसका जल सीमित है, फिर भी गम्भीर न हो ऐसी बात नहीं, क्योंकि वह महान है साथ ही विशाल भी।

सेतु-पक्ष में :—हे सामाजिक, समुद्र-जल का मंथन करने वाले सेतु को नमस्कार कीजिये; जो अपराजेय सौन्दर्यशाली तथा उद्दंड शत्रु वाले राम (विष्णु) द्वारा निर्मित कराया गया है; विस्तारित पर्वतों से आच्छादित होने से जो गम्भीर न हो ऐसी बात नहीं, ऐसे समुद्र में जिस सेतु का शीर्ष भाग का दृश्य क्षीण तथा अदृश्य सा होने पर भी प्रकट-प्रकट सा है।

२. मूल अर्थ है 'अपने आपको छिपाती हुई।'

३ कण्ठ से प्राण दुःखपूर्वक निकल सके)। पारिजात को स्थानान्तरित करने-वाले जिस विष्णु ने देवराज के भूमण्डल में परिव्याप्त, अर्जित गुणों से
४ भली-भाँति स्थिर यश को जड़-मूल से उखाड़ फेंका है।

शंकर-वंदना हे सामाजिक, भगवान् शंकर को प्रणाम करो; कण्ठ-स्थिति कालकूट की नीलम आभा तृतीय नेत्र की अग्नि शिखा से युक्त होकर संवर्धित हो रही है, स्पष्ट ध्वनियाँ उत्पन्न हो रही हैं, अट्टहास फैल रहा है, ऐसा जिनका मण्डली-नृत्य, उद्दीप्त हो रहे ऊपरी भाग वाले अंधकारपूर्ण दिशामण्डल के समान प्रतीत होता
५ है। जिस अर्द्धनारीश्वर का पुलकायमान स्तनकलशोंवाला, प्रेमानुराग से विमुग्ध तथा सलज्ज वामांग दूसरी ओर के अर्द्ध-भाग (नर-भाग) की ओर जाने के लिए उत्सुक, कंपित होकर (आलिंगन करने के लिये)
६ मुड़ना चाहता है। जिसकी, दिशाओं को गुंफित करके स्फुट रूप से प्रति-ध्वनित होनेवाली, अट्टहास की तरंगे, चन्द्रधवलित रात्रियों में चाँदनी की कल्लोलों के समान आकाश के विस्तार में फैलती-सी हैं। जिसके नृत्य
७ समारम्भ से क्षुभित समुद्र का वेग, भय से उद्भ्रान्त मत्स्यों के कारण रुद्ध हो गया है तथा जिसमें बड़वानल जलराशि से बुझाये जाने के कारण
८ धूमायमान (धुआँ-धुआँ-सा) हो गया है।

काव्य-परिचय असावधान कवियों द्वारा की गई त्रुटियों के कारण आलोचित, किन्तु संशोधित, रसिक जनों द्वारा ही प्रमुखतः स्वीकृत, अभिनव (राजा प्रवरसेन द्वारा आरम्भ की गई) काव्य-कथा का आरम्भ से अन्त तक का निर्वाह मैत्री के
९ एकरस निर्वाह के समान कठिन होता है। उससे विज्ञान की अभिवृद्धि होती है, यश-सम्भावित होता है, गुणों का अर्जन होता है; इस प्रकार काव्य-कथा (काव्य-चर्चा) की वह कौन सी बात है जो मन को आकृष्ट
१० न करती हो। इच्छानुसार धनसमृद्धि के प्राप्त करने और आभिजात्य के साथ यौवन-सौन्दर्य के मिलने के समान काव्य में सुन्दर छन्दविधान के
११ साथ अभिनव अर्थ की व्यंजना की संभावना दुष्कर होती है हे।

सामाजिक, जिसमें देवताओं के बन्धन-मोक्ष तथा सारे त्रिलोक के हार्दिक क्लेश से उद्धार का प्रसंग है, तथा जिसमें प्रेम के साक्षी के रूप में सीता के दुःख के अवसान का वर्णन है, ऐसे 'रावण-वध' की कथा को आप सुनें। १२

कथारम्भ

विरोध उत्पन्न होने की स्थिति में, राम रूपी कामदेव के बाण से बालि रूपी हृदय में विद्ध हुई राजलक्ष्मी (नायिका) ने उत्सुक चित्त से सुग्रीव (नायक) के लिये अभिसार किया; अनन्तर राम के उद्यम रूपी सूर्य के लिये रात्रिकाल के १३ समान, उनके आक्रोश रूपी महागज के लिये दृढ़ अर्गलाबंध के समान तथा उनके विजय-रूपी सिंह के लिये पिंजड़े के समान वर्षाकाल किसी प्रकार बीता। राघव ने वर्षाकालीन पवन के झोंके सहे, मेघों से अंध- १४ कारित गगनतल को देखा (देख कर सहन किया) और मेघों के गर्जन को भी सहन कर लिया; पर अब (शरद्-ऋतु में) जीवन के सम्बन्ध में उनका उत्साह शेष नहीं रह गया है। वर्षा के उपरान्त, सुग्रीव के यश १५ के मार्ग के समान, राघव के जीवन के प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं का अन्त करनेवाले रावण के वध-दिवस के समान शरद् ऋतु आ पहुँची। १६

शरदागमन

शरद् ऋतु का आकाश भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए (अतः उनके दृष्टिपथ में स्थित) उस अपार विस्तृत कमल के समान सुशोभित हो रहा है जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, सूर्य की किरणें ही जिसमें केसर हैं और सफ़ेद बादलों के सहस्रों खंड दल हैं। भास्कर की किरणों से (मेघ में अन्त- १७ र्ध्यान होकर पुनः) चमकनेवाला मेघ-श्री का कांचीदाम (तगड़ी), वर्षा रूपी कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाण-पात्र (तुणीर) तथा आकाश रूपी पारिजात वृक्ष के फूल के केसर जैसा इन्द्रधनुष अब लुप्त हो गया है। वर्षा- १८

---

१५. शरद ऋतु में कुमुदवन के पवन-स्पर्श, ज्योत्स्नोज्ज्वल गगनतल के दर्शन तथा कलहंसों के नाद-श्रवण से वियोग दुःख अधिक तीव्र होता है।

१८. बाण-मुख भी हो सकता है।

काल में आकाश-वृक्ष की डालियों के समान जो झुक गई थीं और अब मुक्त हो गई हैं तथा जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं, ऐसी दिशाएँ

१९ शरद् ऋतु में पूर्ववत यथास्थान हो गई हैं। किसी एक भाग में वृष्टि हो जाने से किंचित जलकण-युक्त तथा धुले हुए शरत्काल के दिन, जिनमें सूर्य का आलोक स्निग्ध हो गया है, किंचित शुष्क शोभा धारण करते

२० हैं। सुख मात्र के लिये निद्रा का आदर करनेवाले, विरह से व्याकुल समुद्र को उत्कण्ठित करने वाले, नींद त्याग कर प्रथम ही उठी हुई लक्ष्मी

२१ से सेवित भगवान् विष्णु ने न सोये हुये भी निद्रा का त्याग किया। आकाश रूपी समुद्र में रात्रि-बेला से संलग्न, शुभ्र किरणोंवाले तारक मुक्ताओं का समूह मेघ-सीपी के संपुट खुलने से बिखरा हुआ सुशोभित

२२ है। अब सप्तच्छद (छितौन) का गन्ध मनोहारी लगता है, कदम्बों के गन्ध से जी ऊब गया है; कलहंसों का मधुर-निनाद कर्ण-प्रिय लगता है, पर

२३ मयूरों की ध्वनि असामयिक होने के कारण अच्छी नहीं लगती। प्रवास के समय वर्षा काल रूपी नायक ने दिशा (नायिका) के मेघ-रूपी पीन पयोधरों में इन्द्र-धनुष के रूप में प्रथम सौभाग्य-चिह्न स्वरूप जो सुन्दर

२४ नखक्षत लगाये थे, वे अब बहुत अधिक मलीन हो चुके हैं। पर्याप्त जल-धारा से धुले हुए दूर से अत्यन्त स्वच्छ और प्रकाशित दिखाई देते हुए आकाश मण्डल में मेघादि से विमुक्त होने के कारण स्पष्ट दिखाई देता हुआ चन्द्र-

२५ बिम्ब अत्यंत निकट से ठहरा हुआ सा दिखाई देता है। तथा चिरकाल के बाद वापस लौटा, मन्द पवन से प्रेरित कुमुद की रज से धूसरित हंस समूह स्वाद की आशा-आकांक्षा से कमल-सरोवरों के दर्शन की उत्कंठा

२६ से घूमता है। कान्तिमान दिवसमणि सूर्य की आभा से अभिभूत तथा चन्द्र-ज्योत्स्ना से धवलित रातें रमणीय शरद् ऋतु के हृदय पर मोती

२७ की माला के समान जान पड़ती हैं। भौरों की गुँजार से सचेष्ट हुए जल

---

२७. मुक्तावलि का भ्रम उत्पन्न करती हैं अथवा शोभा धारण करती हैं।

में स्थित नालवाले कमल, बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं। २८ कामदेव के धनुष की टंकार, कमलवन पर संचरण करनेवाली लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि और भ्रमरी तथा नलिनी के आपस के प्रश्नोत्तर सम्बन्धी वार्त्तालाप के रूप में कलहंसों का नाद सुनाई देता है। जिसके मृणाल- २९ तंतु तोड़ कर उखाड़ लिये गये हैं ऐसी नलिनी को खिसक गये कंकण-वाली प्रियतमा के समान देखकर लोग मधुकरों से गुंजारित, मधुमय तथा थोड़ी-थोड़ी लाली लिये हुए कमल की ओर, उसके मुख के समान समझ-कर अनुरक्त हो रहे हैं। ३० पर्याप्त कमलगन्ध से परिपूर्ण, मधु की अधिकता से आर्द्र होकर झोंके से बिखरे कुमुदों के पराग से युक्त तथा भ्रमणशील चंचल भौंरों को आश्रय देनेवाला बनैले हाथियों के मदजल कणों से युक्त वन-पवन शनैः शनैः संचरण करता है। ३१ जिस ऋतु में मृणाल रूप में कण्टकित (पुलकित) शरीर को जल रूपी वस्त्रों में छिपाये हुए, किंचित किंचित विकसित होती हुई मुग्ध स्वभाववाली नलिनी सूर्य-किरणों से चुंबित अपने कमल रूपी मुख को हटाती नहीं। ३२ छितौन के फूल के श्वेत पराग से चित्रित, चक्कर लगाकर गिरने वाले, क्षण भर के लिये हाथी के कानों पर चँवर जैसे भासित होनेवाले भौंरों का समूह उसके गण्ड-स्थल से चूते हुए मद को पोंछ-सा रहा है। ३३ इस प्रकार जिन सरोवरों में कुमुद विकसित हो गये हैं तथा शूरमाओं की नायिकाओं के मुख-रूपी कमल को म्लान करनेवाले चन्द्रमा का आलोक फैलता है, ऐसे चम-कते हुए तारों से युक्त तथा शत्रु की राज लक्ष्मी के स्वयंवरण की गोधूलि-वेला के समान शरद् ऋतु के उपस्थित होने पर राम का दुर्बल शरीर

---

२८. कमल जाग्रत हो रहे हैं—क्योंकि सूर्य में नायकत्व का आरोप किया गया है।

३०. संभोगोपरान्त नायक के नायिका के मुख के प्रति आकर्षण की व्यंजना इसमे सन्निहित है।

३२. नायक-नायिका भाव की व्यंजना।

और भी क्षीण हुआ। क्योंकि हनूमान के जाने के बाद बहुत समय व्यतीत
४३ होने से (सीता मिलन के) आशा-सूत्र के अदृश्य
हनूमान आगमन होने के कारण अश्रुप्रवाह के रुक जाने पर भी उनके
मुख पर रुदन का भाव घना था। इसके बाद,
३५ नियुक्त कार्य के सम्पादन से अन्य वानर-सैनिकों की अपेक्षा जिसके मुख
की आभा भिन्न हो गई है ऐसे, कार्य-सिद्धि की स्मृति के साथ सुख प्रदान
के लिये प्रस्तुत साक्षात् मनोरथ के समान हनूमान को राम देखते हैं।
३६ पवन पुत्र ने पहले अपने हर्ष से उत्फुल्ल नेत्रों वाले मुख से (मुखमण्डल)
जानकी का समाचार दिया, और बाद में विशेष वार्ता को वचनों द्वारा
३७ निवेदित किया 'देखा है' इस पर राम ने विश्वास नहीं किया, 'क्षीण
शरीर हो गई हैं' जान कर अश्रु से आकुलित होकर उन्होंने गहरी साँस
ली, यह जानकर कि 'तुम्हारी चिन्ता करती हैं' प्रभु रोने लगे और यह
सुन कर कि 'सीता सकुशल जीवित हैं' राम ने हनूमान का गाढ़ालिंगन
३८ किया। हनूमान ने चिन्ता के कारण मलिनाभ, विरहिणी सीता के वेणी-
बन्धन में गुंथा होने के कारण म्लान, सीता-वियोग के शोक से व्याकुल
तथा (दूर की यात्रा करने के कारण) खेद और क्लान्ति से निःसहाय-सी
३९ हाथ पर बैठी हुई मणि को राम के सामने प्रस्तुत किया। राम ने अश्रु-
पुंज से जिसकी दुखमयी किरणें बाधित हैं ऐसी (हनूमान के हाथ से)
अपनी अंजली में आई मणि को अपने नयनों से इस प्रकार देखा जैसे
४० पी रहे हों अथवा (सचेतन मान कर) सीता का समाचार पूछ रहे हों।
विरल हुई अँगुलियों के अवकाश से जिसकी किरण धारा बिखर रही

---

३४. राम नायक के लिये शत्रु लक्ष्मी ने स्वयं अभिसार किया है जिस प्रदोष-काल में। ३८. हनूमान द्वारा उत्तर दिये जाने पर राम पर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है। ४१. अँगुलियों की विरलता शरीर के दुर्बल होने के कारण है। जलांजलि का अर्थ मुख धोने का पानी समझा जा सकता है।

है ऐसी विमल आलोकमयी मणि को किंचित रोकर मुख के लिये जलां-
जलि के समान लगाते हुये राम उसकी दशा पर शोक करने लगे। राम ४१
ने सीता (प्रियतमा) के इस चिह्न-मणि को अपने जिस अंक में भी
लगाया, (उनको लगा) जैसे सीता द्वारा सर्वतः आलिंगित हुए हों और
इस प्रकार उन्होंने निरन्तर रोमांचित अनुभव किया। तब अश्रु से मलिन ४२
होते हुए भी, रावण के अपराध के चिंतन से उत्पन्न क्रोध (क्षोभ) से
राम का मुख प्रखर सूर्यमण्डल के समान कठिनाई के साथ देखने योग्य
हो गया। अनन्तर चिरकाल से कार्य-विरत, कुपित यमदेव की भ्रूभंगिमा ४३
के समान उग्र, जिसकी शक्ति की स्थापना हो चुकी है ऐसे अपने धनुष
पर राम ने इस प्रकार दृष्टि डाली जैसे वह उनके कार्य (रावण-वध)
की धुरी हो। क्षण भर के लिये धनुष के नीचे से ऊपर तक लगीं, उसके ४४
गुण-स्मरण से उत्फुल्ल आँखों से देखा जाता हुआ (आरूढ़) वह धनुष
बिना झुके ही मानो प्रत्यंचावाला हो गया। राघव द्वारा किये गये उपकार ४५
का बदला चुकाने का आकाँक्षी सुग्रीव का हृदय भी इस प्रकार उच्छ्व-
सित हो उठा, जैसे उसमें रावण के गर्व को तुच्छ माना गया है और
कार्य-भार (रावण-वध) समाप्त-सा हो गया हो। ४६

लंकाभियान के लिये प्रस्थान

राम के हृदय में भृकुटि संचलन से रौद्र भाव को व्यक्त करनेवाली तथा
जिसमें चिन्तन मात्र से अभीष्ट अर्थ की सिद्धि-सी हो गई है ऐसी लंका-
भियान की भावना राक्षसों के जीवन का अपहरण
करने वाले विष के समान स्थिर (न्यस्त) हुई। तब ४७
राम की दृष्टि वानरराज सुग्रीव के कठोर वक्षस्थल
पर वनमाल की तरह, पवनपुत्र हनूमान पर कीर्ति के समान, वानरसेना
पर आज्ञा की भाँति तथा लक्ष्मण के मुखमण्डल पर शोभा की तरह पड़ी। ४८

४३. जरठ का अर्थ प्रौढ़ होता है, यह सूर्य की प्रखरता से लिया गया है। मुख क्रोध से अत्यन्त दीप्त हो गया है। ४४. खर-दूषण आदि के वध से उसकी शक्ति सिद्ध हो चुकी थी, और तब से वह निष्क्रिय भी था। ४८. नेत्रों के विभिन्न रंगों के कारण वनमाला के समान कहा गया है।

भूमण्डल को संक्षुब्ध करते हुए, वानर सेना द्वारा वन-प्रान्तों को आक्रान्त करते हुए, क्षुब्ध सागर की ओर अभिमुख हुए मथन के आरम्भ में मन्दराचल के समान राम ने लंका की ओर प्रस्थान

४६ **यात्रा-वर्णन** किया। राम के प्रस्थान करने पर, चलायमान केशर सटा से आलोकवान, दिशाओं के विस्तार को आक्रान्त करनेवाला, सूर्य के चमचमाते हुए किरण-समूह के समान वानर-सैन्य

५० भी चल पड़ा। इस प्रकार राम के मार्ग का अनुसरण करनेवाली, लंका-रूपी वनसमूह की दावाग्नि रूप कपि-सेना वैर रूपी ईंधन से प्रज्वलित

५१ तथा क्रोधरूपी पवन के प्रताड़न से मुखरित हो बढ़ने लगी। चंचल स्कंध प्रदेश के बालों से चमकीले वानरों से घिरे हुए राम, प्रलय पवन के थपेड़ों से चारों ओर से एकत्र तथा प्रलय की उद्दीप्त अग्नि से

५२ प्रज्वलित पर्वतों से आवेष्ठित सागर की तरह चलायमान हो उठे। शरदागमन से निर्मल, प्रकाशवान सूर्य की किरणों द्वारा अपने रूप को प्रकट करनेवाली, तथा निर्दिष्ट मार्गवाली दिशाएँ सीता-विरह से उत्पन्न शोक

५३ से अन्धकारित राम के हृदय में घूमती-सी जान पड़ती हैं। राम ने धनुषाकार समुद्र की तरंगों के आघातों को सहनेवाले विन्ध्य पर्वत को, प्रवाहित नदियों के स्रोत जिसमें बाण हैं तथा प्रान्तभाग की दोनों अट-

५४ वियों पर आरोपित, प्रत्यंचा के समान देखा। रौंदे शिखर भागों वाला, निम्नभाग के वनों के उन्मूलन से स्पष्ट तुंगतट प्रदेशवाला तथा जिसकी कन्दराओं में वानर वाहिनी भर गई है ऐसा विन्ध्य वानरों के सहज

५५ पदचाप को भी न सह सका। इस प्रकार ये वानर वीर सह्य पर्वत जा पहुँचे, जिसकी जल-बूँदों से आहत धातुवर्ण की शिलाओं पर स्थिति होने

---

४६. सागर को क्षुभित कह कर आगे की घटनाओं की ओर कवि ने संकेत किया है। ५१. सागर की सेतुबन्ध कल्पना को व्यंजित किया गया है। ५३. राम के मन का लंकाभियान के प्रति दृढ़ निश्चय व्यक्त हुआ है, उनके सामने पथ की दिशाएँ ही प्रत्यक्ष हैं।

के कारण मेघ किंचित रक्ताभ से शोभित हो रहे हैं तथा जिसके निर्झर-रूप में हँसते हुए कन्दरा-मुख से बकुल पुष्प की गंध के रूप में मदिरा का आमोद फैल रहा है। शरत्काल के मेघपुंज की प्रतिबिम्बित छाया- ५६ वाले, स्फटिकशिला-समूह पर गिर कर ऊपर उछलते हुए नदी प्रवाहों को देखते हुए वे सब चले जा रहे हैं। कगारों के टूट कर दरारों ५७ में भर जाने तथा फटते हुए पाताल-विवर में जल के समा जाने पर समतल हुए महानदियों के धारापथ लोगों के आवागमन से विस्तृत हुए राजमार्गों के से हो गये। चन्दन-भूमि कंपित करनेवाले वानर, ५८ मेघाच्छादित होने के कारण ग्रीष्म प्रभाव से मुक्त, सघन पादपछाया की शीतलता से निद्रा देनेवाले तथा सदैव बादलों के छाये रहने के कारण श्यामलता को प्राप्त मलय पर्वत के समीप पहुँचे। लताएँ तोड़ ५६ कर अलग कर दी गई फिर भी उनके आवेष्ठन चिह्न शेष हैं, ऐसे चन्दन के वृक्षों में उन्होंने विशाल सर्पों के लटकने के आवेष्ठन चिह्नों को केंचुल से युक्त देखा। भार से जल-तल पर लटकी चन्दन वृक्षों की डालों के ६० स्पर्श से सुगन्धित, हरी घास के बीच में होने के कारण दूर से ही जिनका पथ दिखाई देता है और बनैले हाथियों की मदधार से कसैले पहाड़ी नदियों के प्रवाह का वे सेवन करते हैं। वे, फूटी सीपियों के सम्पुट में जहाँ ६१ जल-स्थित मुक्ता-समूह दिखाई देता है, सघन पत्तोंवाले बकुल वृक्षों से सुशोभित तथा गजमद के समान सुगन्धित नई एला की लताओं से युक्त दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँच गये। यह तट-भूमि विकसित तमाल ६२ वृक्षों से नीली-नीली, समुद्र के चंचल कल्लोल रूपी हाथों से स्पृष्ट तथा गजमद धारा की समता करनेवाले फूले एला वन की सुगन्धि से सुरभित है। उस वेला नायिका का, नत-उन्नत रूप से स्थित फेनराशि अंगराग ६३ है; नदी-प्रवेश रूपी मुख विद्रुम-जाल रूपी दन्त-व्रण से विशेष कान्तिमान है; पुष्पित वन रूपी कुसुमों से गुंथा हुआ केशपाश है तथा वह समुद्र

---

५७. देखते हुए गुज़र रहे हैं।

६४ रूपी नायक के संभोग-चिह्नों को धारण करती है। वह तट-भूमि लता गृह-कुंजों से परिवर्धित है, सीपी रूप में उसके मुकलित नेत्र हैं और वह
६५ अनुराग पूर्वक किन्नरों के गान को सुन सी रही है।

---

६४. समुद्र की गन्ध जहाँ फैली हुई है।

द्वितीय आश्वास

सागर-दर्शन

सागर-तट पर पहुँच कर राम, चपल, सैकड़ों बाधाओं के कारण दुर्लंध्य, अमृत रस तथा अमूल्य रत्नों के कारण गौरवशाली तथा लंकाविजय रूपी कार्यारम्भ के यौवन के समान समुद्र को देख रहे हैं। १ आकाश के प्रतिबिंब के रूप में, पृथ्वी के निकास द्वार के समान, दिशाएँ जिसमें विलीन हो जाती हैं ऐसा सागर भुवन-मण्डल की नील परिखा के समान प्रलय के अवशेष जल-समूह के रूप में फैला है। २ भँवर के रूप में उत्तुंग तरंगों वाला, जिसके दिग्गज की प्रचंड सूँड रूपी चंद्रमा के विस्तृत किरण-समूह से दिशाओं में जलराशि फैल गई है, ऐसा सागर निरन्तर मद से युक्त दिग्गज के समान मृगांक चन्द्रमा से अत्यधिक क्षुब्ध हो उठता है। ३ प्रवाल-वनों से आच्छादित, इधर उधर चलित फिर भी स्थिर से जल-तरंगों को, गाढ़ा रंग लगा है ऐसे मन्दराचल के आघातों के समान आज भी सागर धारण किये हुए है। ४ गरजते हुए मेघ समूहों से फैलाया हुआ, समस्त आकाश तथा पृथ्वी मंडल में परिव्याप्त तथा नदियों के मुख से इधर-उधर बहने वाले जल-समूह को सागर अपने ही फैले हुए यश के समान पीता है। ५ जिस प्रकार ज्योत्स्ना चन्द्रमा को, कीर्ति सत्पुरुष को, प्रभा सूर्य को, महानदी शैल को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार बहुत समय पूर्व निकाली गई लक्ष्मी सागर को नहीं छोड़ रही हैं। ६ प्रलयकाल में संसार के समस्त जल का शोषण करने वाले गत और प्रत्यागत (चारों ओर से बहने वाला) पवन के संवेग से उद्दीप्त बड़वानल की विकट

---

१. सहस्र बाहुओं के होने पर भी जो संतरण के योग्य नहीं है।
२. कभी अदृश्य होकर प्रकट होते जल-तरंग। ५. विवर का अर्थ रिक्त स्थान लिया जा सकता है। सागर में नायक तथा नदियों में नायिका भाव आरोपित है।

७ ज्वाला को सागर शरीर में बिंधे हुए बाण के समान धारण कर रहा है। बेला का आलिंगन करके छोड़ी हुई, कम्प से हिल रहा है वन-समूह रूपी हाथ जिसका, मलय और महेन्द्र पर्वत रूपी स्तनों के जल-तरंग द्वारा गीले (शीतल) होने से सुखी तथा स्पर्श से संकुचित हुई पृथ्वी को सागर ८ कँपाता-सा है। स्थान होने पर भी मर्यादावश सीमित, प्रलयकाल में सम्पूर्ण पृथ्वी को न समा सकने वाले, बलि से याचना कर अपने तीन डगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले विष्णु के समान यह सागर ९ है। सदा दृष्टिगत रहने पर भी रमणीय, सुने जाने पर भी सुनने से तृप्ति न ग्रहण करने वाला तथा अपने पुण्यकृत्यों के परिणाम स्वरूप भोगते १० हुए भी सागर अपने आश्रितों के लिये शुभ फल देनेवाला है। वृक्ष उखाड़ लिये गये हैं ऐसे शैल, श्रीविहीन हिम से आहत कमलों वाले सरोवर, पी ली गई है मदिरा ऐसे प्याले तथा मनोहर चन्द्रमा से ११ हीन अँधेरी (कृष्णपक्ष की) रात के समान यह सागर है। सुखद आलोक से मुक्त, निर्मल जल के मध्य में स्थित, किंचित खिंचे हुए और जिसका प्रकाश सूर्य किरणों पर आधारित है ऐसे रत्नसमूह को सागर धारण कर १२ रहा है। मथन के आयास से विमुक्त, उछले हुए अमृतकणों से छिटकाये हुए अनल समूह वाले, वासुकि के मुख से निकलनेवाले जाज्वल्यमान १३ बड़वामुख के कुहर में पुंजीभूत अग्निशिखा को वह धारण किये है। सागर धैर्य के समान असीम जलराशि, पंखवाले पर्वतों के रूप में तिमि-समूह को, नदियों की धाराओं की तरह तरंगों और रत्नों के समान महान १४ गुणों को धारण करता है। पाताल के अन्तराल तक गहरा, पृथ्वी के शून्य भागों में विस्तीर्ण सागर, तीनों लोकों को अपने आप में आविर्भाव-१५ तिरोभाव करते हुए विष्णु के समान अपने आपमें व्याप्त हो रहा है। जिसके मार्ग का अनुसरण, मिलकर पुनः प्रत्यावर्तित होने वाली, छूने के

७. कुछ समय बीतने पर बाण प्राण हर हो जायगा और उच्छ्वासों के वेग से शरीर में जो कसक की पीड़ा उत्पन्न करता है। ८. सागर में नायक तथा पृथ्वी में नायिका-भाव का आरोप है।

बाद पीछे हट जाने वाली, खेद से चंचल सी तथा जा कर पुनः काँपते हुए वापस आनेवाली नदियों के द्वारा किया जाता है। प्राणों को गौरवा- १६ न्वित करनेवाली, जिनसे इच्छानुसार आनन्द-रस की प्राप्ति होती है ऐसी अपने जल से उत्पन्न धनराशि, लक्ष्मी और वारुणी आदि से सागर संसार को मत्त बनाये हुए है। यह सागर चंचल होकर भी मर्यादा के कारण १७ स्थिर, देवताओं द्वारा रत्नों के लिये जाने पर भी अनन्त धनराशि से पूर्ण है; मथे जाने पर भी उसका कुछ नष्ट नहीं हुआ है और जल अपेय होने पर भी वह अमृत रस का निर्झर है। जिनके भीतर अपार रत्न भरे १८ पड़े हैं, जिन पर आकाश रूपी वृक्ष की कोपलों जैसी चन्द्रकिरणें बिख- रती हैं ऐसे उदरवर्ती पर्वतों को सागर इन्द्र के डर से निधियों के समान सँजोये है। यह सागर, प्रिय समागम का सुख जिसमें सुलभ है ऐसे नव- १९ यौवन में काम (ज्वार रूपी चंचलता) के समान, चन्द्रमा के उदित होने पर बढ़ता है और अस्त होने पर शांत हो जाता है। किंचित फूटे हुए २० सीप के संपुट से लुढ़क कर शंख के मुख को पूर्ण कर दिया है ऐसे मोतियों का समूह आकाश में पवन से उछाले हुए जल से भरे, आधे मार्ग से लौटते बादल के समान, सागर में (शोभित) है। इस सागर २१ में, अधिक दिनों के प्रवाल के पत्ते मरकत-मणि की प्रभा से युक्त होकर हरे-हरे से दिखाई देते हैं, तथा ऐरावत आदि सुरगजों के मद की गन्ध से आकर्षित होकर (युद्ध के लिये) दौड़ने वाले मगरमच्छ के मुख पर निकट आये हुए मेघ वस्त्र की भाँति छा जाते हैं। मनियारे सर्प अथवा २२ यक्षों के, तीरवर्ती लताकुंजों के घर राजभवनों की शोभा को तुच्छ करने वाले हैं और जल लेने के लिये मँडराते हुए मेघों से आकुल वेला के आलिंगन से चपल सागर पृथ्वी द्वारा अपने आलिंगन को रोकता है। २३ जिसकी जलराशि चन्द्रकिरणों से प्रक्षुब्ध होती है, जो चलायमान पर्वतों से आन्दोलित है, जिस सागर का जल धैर्य रूपी गरजते बादलों से सदैव

---

२०. यौवन के उदित होने पर काम बढ़ता है, बीतने पर उसकी चंचलता भी दूर हो जाती है।

२४ पिया जाता है, वह वड़वाग्नि से सदा प्रतापित रहता है। सागर में, अपने विष के ताप से व्याकुल होकर साँप मुक्ता समूहों के बीच घूम रहे हैं, और मछलियों के संचरण से गिरी हुई सेवार से मणिशिलायें मलिन
२५. (श्याम) हो गई हैं। यह सागर नदियों से व्याप्त है, लक्ष्मी के ऐश्वर्य के अनुरूप वंश (पिता) है, पृथ्वी द्वारा लालित (आश्रित) है और जिसके प्रति नदियों के मुहानों से प्रस्थापित तथा तरंगों द्वारा निवर्तित वेला (का
२६ जल) स्त्री (नायिका) के समान आचरण करती है। सहस्रों नदियों के चुम्बन से (जल के आस्वादन से), जो क्षार की अपेक्षा अन्य रस से भी परिचित है ऐसा प्रलय-पयोदों के समान भीषण गर्जन करने वाला सागर, धीरे-धीरे प्रवाहित मृदु पवन से मदसेवी पुरुष की तरह मन्द-मन्द लहरा रहा
२७ है। इन्द्रनीलमणि की प्रभा से नीलाभ रंग में परिवर्तित झाग ऊपर तैर रहा है और शेष के निःश्वास से विष्णु की नाभि के कमल के उद्वेलित
२८ होने से (सागर के रूप में) भयंकर भँवर बन गया है। तरंगयुक्त सागर में सूर्य के अरुणिम किरण जाल से रंजित पृथ्वीतल के समान प्रवाल के पल्लवों की आभा से चारों ओर निरन्तर लाली छायी रहती है और मन्दराचल से मथे जाने पर जिसका जल-समूह सशब्द दूर तक उछला
२६ था। यह मोतियों का आकर, देवताओं को जीवन-सुख प्रदान करने वाले अमृत का महान जन्म-स्थान तथा व्यापक विस्तार वाला सागर प्रलय-काल में वेला को आक्रान्त कर बढ़े हुए जल के प्लावन से मृदित पृथ्वी
३० द्वारा पंकिल-पंकिल सा हो गया था। बहुत दिनों से सेवार जिन पर जमी है ऐसी शिलाओं से हरिताभ, पवन के विक्षोभ से उत्पन्न भीषण कड़क से युक्त, विष्णु को निन्द्रा के समय विश्राम देने वाला सागर प्रलय
३१ में दग्ध होने के बाद शान्त पृथ्वीतल में श्याम-श्याम भासित होता है। हरिण्याक्ष आदि असुरों के झपट्टे से दो भागों में विभाजित जल समूह के बीच के विवर-मार्ग से निकलने वाली रसातल की गर्मी जिसमें विद्यमान
३२ है ऐसे सागर में मथन के समय आवर्त में चक्कर खाकर मन्दराचल के टूटे

---

२६. नदियाँ सागर में गिरती हैं।

शिलाखण्ड द्वीपों के समान द्वीपान्तरों में जा लगे हैं। अमृत का उत्पत्ति ३२
स्थान है, इस संभावना से युक्त, नीलिमा तथा विस्तार के कारण आकाश
में अंधकार के समान फैला हुआ सागर अनन्त रत्नों से पूर्ण पृथ्वी की
रक्षा के लिये उसी प्रकार तत्पर है जैसे राजा सगर ने अपने यश रूपी
धन के लिये कोश बनाया हो। जिसके तटवर्ती वन पवन से उछाले गये
जलसमूह से आहत होकर मुखरित हैं और जिसके पुलिन-प्रदेश, चन्द्रमा ३३
रूपी पर्वत के किरण समूह रूपी निर्झर के प्रवाहों से परिवर्धित जलराशि
से मृदित हैं। सागर के जल के मध्य में, मन्दराचल-मेघ द्वारा ३४
विचलित चन्द्र-हंस ने निवास करना छोड़ दिया है और जिसके
निम्नतल में मरकत रूपी शैवाल पर मीनयुगल रूपी चक्रवाल चुपचाप बैठे
हैं। जिसकी जलराशि के मध्य में संचरण करते हुए महामत्स्य गंगादि ३५
नदियों के प्रवाह के समान प्रतीत होते हैं तथा जिसने वड़वानल के मूल
से झरनेवाली कालिख से पाताल को काला बना डाला है। ३६

उसका प्रभाव अनन्तर वानर-सेना से आक्रान्त पृथ्वी के नमित होने से जिसकी जलराशि ऊपर उछली है और जिसका तल-भाग इस प्रकार उघड़ (खाली हो) गया है, ऐसा
सागर, राम द्वारा नेत्रों से अगाधता की इयत्ता को देखते हुए तौल सा
लिया गया है। विष्णुरूप में जिसका उपभोग किया है तथा अपने सागर ३७
रूपी शयन को देख कर भी, राम सीता विषयक चिन्ता में लीन होने के
कारण अपनी प्रलयसहचरी लक्ष्मी का स्मरण नहीं कर रहे हैं। जल- ३८
राशि पर किंचित दृष्टि-निक्षेप कर तथा हँसते हुए वानरराज सुग्रीव से
संलाप करते हुए लक्ष्मण ने समुद्र के देख लेने पर भी पहले (जल नहीं देखा
था) के समान ही धैर्य को नहीं छोड़ा। समुद्र दर्शन के उत्साह से ३९
दीर्घ तथा उन्नत होने के कारण प्रकट विशाल वक्षप्रदेश वाले

---

३५. मृद्रित का अर्थ लिया जा सकता है कि चारों ओर कीचड़ आदि हो गया है। ३६. वास्तव में महामत्स्यों के चलने से सागर में धाराएँ प्रवाहित होती हैं। ३८. मूल में अन्य पद धैर्य के विशेषण हैं।

वानरराज सुग्रीव भी (लाँघने के अभिप्राय से) आधी छलांग भर कर
४० भी अपने शरीर को रोक कर समुद्र को देख रहे हैं। समुद्र लाँघने
का मन किये हुए वानरपति सुग्रीव ने अपने दोनों पार्श्वों में फैले हुए
कपिशवर्ण के वानरसैन्य को इस प्रकार देखा जैसे समुद्रलंघन के लिये
उत्सुक गरुड़ अपने दोनों ओर फैले हुए अग्नि-आभावाले विशाल पंखों
४१ को देखता है। समुद्र दर्शन से त्रस्त, व्याकुल होकर पीछे खिसकते और
काँपते हुए शरीरों वाले, स्फारित परन्तु ठिठके (स्तब्ध) से नेत्रोंवाले
४२ वानर समूह चित्र-लिखे से प्रतीत हो रहे थे। समुद्र को देखने वाले वानरों
का चपल होने पर भी अपूर्व विस्मय से निश्चल नेत्र-समूह गौरव की
४३ भावना के साथ हनूमान पर पड़ा। अलंघनीय समुद्र को पार कर पुनः
वापस लौटे हुए पवन-पुत्र को देख कर इन वानरों के मोहतम से अंध-
४४ कारित हृदय में (अनुद्बुद्ध रूप से) उत्साह जाग्रत हो रहा था। अनन्तर
जिनकी कान्ति नष्ट हो गई है ऐसे लोचन रूपी शिखा के निश्चल तथा
प्रताप हीन हो जाने के साथ चित्रलिखित प्रदीपों के समान वानरों का
४५ प्रकृतिगत चपलत्व भी नष्ट हो गया। समुद्र-दर्शन से उत्पन्न विषाद से
व्याकुल, जिनका वापस जाने का अनुराग नष्ट हो गया है तथा पलायन
के मार्ग से लौट आये हैं नेत्र जिनके ऐसे वानर किसी-किसी प्रकार अपने
४६ आप को ढाढ़स बँधा रहे हैं।

---

४१. पहले समुद्र के अवलोकन के लिये वानर आगे बढ़ गये थे और आश्चर्य से उनकी (सागर के विस्तार और अगाधता को देख कर) आँखें विस्फारित हो रही थीं। ४३. वानर-समूह के मन में था कि ऐसे अगाध, विस्तृत और उत्ताल तरंगों वाले सागर का लंघन पवनसुत ने किया है। ४४. उत्साह विचरण कर रहा था। ४६. अपने हृदय में धैर्य धारण कर रहे हैं। सागर को देखने से जो प्रभाव पहले पड़ा था, उसको वानरों ने किसी प्रकार सह लिया।

तृतीय आश्वास

सुग्रीव का प्रोत्साहन

इसके बाद 'समुद्र किस प्रकार लाँघा जाय' इस विषाद रूपी मद से मोहित, मुकलित नेत्रोंवाले, बाहुओं को उठाये आलान-खम्भों के समान चट्टानों पर बैठे गज-वानरों से सुग्रीव ने, अपने कथन की ध्वनि से अधिक १ स्फुट रूप से उच्चरित होते यशनिर्घोष (साधुवाद) के साथ, धैर्य के बल से गौरवयुक्त तथा दाँतों की चमक से धवलित अर्थवाले वचन कहे २ —"इस समय विष्णु रूप राम के रावण-वध रूप कार्य में, पृथ्वी को धारण करने के समय भुजाओं, मन्थन के समय देवासुरों तथा प्रलय के ३ समय समुद्रों के समान, तुम्हीं लोग सहायक हो। तुम, कामना पूर्ण न करने के भय से लौटे तथा पूर्ण होने की संभावित आशा से उपस्थित होने पर भी अपने मनोरथ को व्यक्त करने में असमर्थ प्रार्थी सुजन के समान, जिसमें सदैव अहंकार की स्थिति है ऐसे अपने यश को मलिन मत करो। ४ रावण-वध प्रसंग के कारण दुःसाध्य और (ऊपर से) समुद्रलंघन कार्य के कारण जिसकी गुरुता बढ़ गई है ऐसे कार्य को राम ने पहले हृदय रूपी तुला पर तौला और फिर तुम वानर वीरों पर छोड़ा है (न्यस्त किया है)। हे वानर वीरों, प्रस्तुत कार्यभार तुम्हारा ही है, प्रभु शब्द ५ का अर्थ है केवल आज्ञा देने वाला क्योंकि सूर्य तो प्रभा मात्र विस्तारित करता है पर कमल सरोवर अपने आप खिल जाते हैं। हे वानर ६

---

१. आलानस्तम्भ, हाथी बाँधने का खम्भा। यहाँ चट्टानों पर बैठे वानरों की तुलना आलान से बँधे हाथियों से की गई है। ५. 'रक्षशपथदुर्वाह्य' पाठ के अनुसार 'जिसकी रक्षा अनिवार्य है ऐसी शपथ के कारण अत्यन्त गम्भीर' अर्थ होगा। भाव है कि सत्यप्रतिज्ञ राम अपने आप अपना काम पूरा करेंगे, पर तुम्हारी अपकीर्ति फैलेगी।

वीरो, आप वेला-वनों के बकुल पुष्पो से वासित गन्धवाले समुद्र को न केवल तैर जाने में ही वरन् अपनी अंजलि से फल रस के सदृश उसे पी
७ जाने में भी समर्थ हैं। अपमान रूपी बेड़ी को त्याग कर सिर ऊँचा करने का, अयोग्यों के स्पर्धा रूपी बन्धन से मुक्त होने का यही बहुत दिनों से
८ आकाँक्षित एक मात्र अवसर है। ऐसे सत्पुरुष संसार में कम होते हैं जो बिना कहे ही कार्य-योजना का अनुष्ठान करते हैं, ऐसे वृक्ष भी थोड़े ही
९ होते हैं जो पुष्पोद्गम को बिना प्रकट किये ही फल प्रदान करते हैं। (आप ऐसा करें) जिससे रघुपति अपने दुर्बल हाथ को धनुष पर, चिर-काल से उत्कंठित (सीता मिलन के लिये) मन को क्रोध में और अश्रुओं
१० से आच्छन्न दृष्टि को बाण में न लगायें। आपका यश, रावण के प्रताप रूपी राजा द्वारा आक्रान्त, चंचल समुद्र जिसकी करधनी है तथा नभ
११ का भवन जिसका अन्तःपुर है ऐसे दिग्वधू-समूह को पराभूत करे। उप-कार का बदला न चुकानेवाला जीता हुआ मृतक है, वह प्रत्युपकार का
१२ साहस न करने से उपकर्त्ता का दया भाजन-सा बना रहता है। क्या तुम नहीं जानते हो कि ऐसे सरल कार्यों का भी कैसा परिणाम होता है (उत्तरकाल में विघ्नादि उपस्थित होकर कितना क्लेश देते हैं), जिस प्रकार विषवृक्ष का पुष्प (स्पर्श में कोमल होकर भी) मसले जाने पर
१३ अत्यन्त मूर्च्छाकारक होता है। समर्थ व्यक्ति बिगड़े हुए कार्य को भी, आरम्भ कर देने पर साधारण लोगों के लिये दुर्गम मार्ग तक पहुँचा देते हैं, जिस प्रकार सूर्य जिसमें एक पहिया नष्ट हो गया है ऐसे रथ को
१४ आकाश के विवर मार्ग तक पहुँचा देता है। अनेक कार्यों (युद्ध) का

---

८. अयोग्य लोगों की तुलना में साथ रहना योग्यों के लिये अपमान की बात ही है। इस अवसर पर उनकी झूठी स्पर्धा का उद्घाटन हो जायगा और योग्य वीरों को उनसे आगे होने का मौक़ा मिल सकेगा।

१३. तात्पर्य यह है कि सेतुबन्धन कार्य यदि शीघ्र सम्पादित न होगा तो आगे रावण द्वारा अनेक विघ्न उपस्थित होने पर दुःसाध्य हो जायगा।

अनुष्ठान करनेवाले, योद्धाओं के समान (दूसरों द्वारा भेजी हुई राज-लक्ष्मी जिनमें स्थिर है) तथा तालवृक्षों के समान अपनी भुजाओं को तुम शीघ्र देखो, जिससे तुम्हारा प्रच्छन्न (मनोगूढ़) राजस् भाव (मोह-जन्य भय) तथा शत्रु (रावण) का राज ऐश्वर्य नष्ट हो जाय। अपने वेग से सागर को संक्षुब्ध करनेवाले तथा लंकादहन के समय संभ्रम में पड़े इधर-उधर भागते राक्षसों को देखनेवाले मारुततनय, वेलातट पर ही मोहाच्छन्न होते हुए हम सबों पर मन ही मन हँस रहे हैं। निरन्तर विस्तार पानेवाला तथा जिससे वीरों की मुखश्री चमचमा-सी उठती है ऐसा सुभटजनों का उत्साह, सूर्य की आभा से चमकते हुए नदियों के प्रवाह के समान विषम स्थिति में और अधिक तीव्रता से अग्रसर होता है। मान के साथ भली-भाँति स्थापित, वंश परम्परा द्वारा नियोजित तथा जो कभी अवनत नहीं हुई हो, ऐसी अपने कुल की प्रतिष्ठा का दूसरों द्वारा अतिक्रमण सोचा भी नहीं जा सकता (सहन किया जाना तो असंभव है)। उत्साह को बढ़ानेवाला, रणस्पर्धा जिनकी नष्ट हो चुकी है ऐसे लोगों से जिसका गुण (स्वाद) अलब्ध है तथा अयशस्वी जनों से जो सर्वथा दूरस्थ है ऐसा 'भट' शब्द बड़ी कठिनाई से अपनी ओर आकृष्ट किया जा सकता है। रणभूमि में सम्यक् रूप से जिसने अपने मन को समर्पित किया है, विपत्ति तथा उत्सव में जिसका मन एकरस रहता है, ऐसे समर्थ-वान व्यक्ति उपस्थित अनेक संकटों में विवश होकर भी संशय (फल अथवा प्राणों का) उपस्थिति होने प्रर धैर्यवान ही रहते हैं। जीवन के विषय में संदेह उपस्थित होने पर, सर्प के विष उगलने के समान जो क्रोध प्रकट करते हैं ऐसे श्रम करने के कारण प्यासे लोग अपने हाथ पर स्थित

१५

१६

१७

१८

१९

२०

१६. हनूमान ने समुद्र लाँघा और लंकादहन किया है और हम समुद्र के किनारे ही हताश हो रहे हैं। १९. दूसरों द्वारा भट कहलाना अति कठिन है और महत्व की बात है। २०. जब उनका आयी हुई कठिना-इयों पर अधिकार नहीं रहता है, उस समय भी वे धैर्य नहीं छोड़ते हैं।

२१ यश का पान क्यों न करेंगे। सिंह बन्धन सह लेता है, दाँतों के उखाड़ लिये जाने पर भी साँप बहुत दिनों जीते हैं, पर जिनके कार्यों में दूसरों द्वारा कभी विघ्न नहीं उपस्थित हुआ ऐसे शक्तिशाली जन शत्रु द्वारा
२२ प्रतिहत होकर क्षण भर जीवित नहीं रह सकते। बिना कार्य सम्पादित किये वापस लौटे आप लोग दर्पणतल के समान निर्मल पत्नियों के मुख पर, सामने दिखाई देने मात्र से प्रतिबिम्बित विषाद को किस प्रकार देख
२३ सकेंगे। चिरकाल से प्रवाहित होनेवाले तथा समुद्र के से अगाध नदियों के प्रवाह विपरीत मार्ग की ओर ले जाये जा सकते हैं, किन्तु प्रभु आज्ञा
२४ को बिना पूरा किये कभी सत्पुरुष नहीं लौटाये जा सकते। जो सूर्य द्वारा लाँघा जा सकता है जो प्रलयानल से भी बहुधा क्षीण होता रहता है, इस प्रकार जिसका पराभव (अवनति) प्रकट है वह समुद्र वानर
२५ वीरों के लिये दुस्तर है यह कैसे कहा जाय ? ज़रा आप इस बात पर विचार करें और कुल के व्यवहार के योग्य यश का वहन करें ? लज्जा
२६ तथा समुद्र इन दोनों में किसका लंघन करना आपके लिये दुष्कर है ? सुनो, पर्वत से अधिक दृढ़-शक्तिशाली तुम वानर-वीरों को पराजित करके यह चन्द्र रूपी शरद् मेघ कहीं रघुपति पर भी सुखनाशक किरण रूपी
२७ अशनिपात न करे। विनयपूर्वक सेवा किये जाने पर शत्रु भी बान्धवों से कहीं अधिक स्नेही हो जाते हैं, फिर उपकारी निष्कारण स्नेह करने
२८ वाले बन्धु दशरथपुत्र के विषय में क्या कहना ? नवीन उगी हुई लता के सदृश यह मेरी राजलक्ष्मी फलोत्पादक ऋतु के अनागमन के समान
२९ आपके समरोत्साह के विलम्बित होने से पुष्पित होकर भी फलवती नहीं होती। क्या अधिक समय बीतने पर इस प्रकार (तुम्हारी अकर्मण्यता से)

---

२१. यश प्राप्त करने का अवसर मिलने पर उसे छोड़ना नहीं चाहिए। २२. बिना शत्रु का उन्मूलन किये। २३. सेतुबन्ध तथा रावणवध कार्य को बिना पूरा किये लौटने से पत्नियों के सामने लज्जित होना पड़ेगा। २७. वियोग के कारण राम की स्थिति का संकेत है। २९. यहाँ अर्थ की व्यंजना नायिका पक्ष में भी लगती है।

विचलित धैर्य (मर्यादा) राम को छोड़ न देगा ? कमल से उत्पन्न लक्ष्मी क्या रात में उसका त्याग नहीं कर देती ? अपनी कीर्ति आभा से समग्र पृथ्वीतल को आलोकित करनेवाले, समस्त जीवलोक (प्राणियों) पर अपने प्रताप को फैलानेवाले महान् पुरुष में, सम्पूर्ण वसुधातल को प्रकाशित करनेवाले तथा सम्पूर्ण प्राणिजगत् में अपने प्रताप को प्रसारित करनेवाले सूर्य पर प्रभातकाल में पड़ी हुई मलिनता के समान, कार्य-सम्पादन के उपायचिन्तन के क्षण में उपस्थित अप्रतिभता अधिक देर नहीं ठहरती। सत्पुरुष के द्वारा ही जिसका सम्पादन संभव है ऐसा राम ने जो हम पर पहले उपकार किया है, हम लोगों द्वारा किया गया प्रत्युपकार भी उसकी समता पाये या न पाये; न किये जाने की तो बात ही क्या! जिसकी चोटी पर विकट वज्र गिर रहा है ऐसे वन वृक्ष के समान, राम द्वारा प्रचारित दशमुख कब तक बढ़ता हुआ दिखाई देगा, उसे तो अब अभ्युदय से बहुत दूर समझना चाहिए। अन्धकार की धूल के समान श्याम रंग के रजनीचर, प्रातःकाल के आतप तथा झाड़ी हुई आग के अंगारों की चिंगारियों की आभावाले वानर सैन्य को देखने में भी असमर्थ हैं। उठाये हुए अंकुश से मस्तक पर प्रहारित होने पर भी (पीछे हटाने के लिये) प्रतिपक्षी गज को गन्ध से आकृष्ट मदगज (आक्रमणशील) के समान महान शत्रु के होने पर वीरजन शत्रुओं को और भी प्रतिरुद्ध करते हैं। विषम परिस्थिति उपस्थित होने पर विषाद-ग्रस्त न होनेवाले धुरन्धर योद्धा ही केवल कार्यभार वहन करने में समर्थ होते हैं; सूर्य के ग्रस्त होने पर (राहु द्वारा) क्या चन्द्रबिम्ब दिन का अवलम्ब हो सकता है ? जल-वृष्टि करनेवाले मेघ, नये-नये फल देनेवाले वृक्ष समूह तथा युद्ध-क्षेत्र में खड्ग का प्रहार करनेवाले हाथ छोटे होकर भी गौरवशाली होते हैं। तुम्हारी भुजाएँ शत्रु का दर्प सहन नहीं कर सकती हैं, प्रहार-कार्य के लिये सुलभ पर्वत उपस्थित हैं और विस्तृत आकाश-मार्ग तो

(३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७)

३०. अधीर होकर राम हम लोगों पर क्रोध करेंगे। ३४. युद्ध कर सकने का तो प्रश्न नहीं उठता। ३६. चन्द्रमा से दिन के प्रकाश की

३८ लाने के लिये सहज है, क्योंकि शत्रुओं की महानता ही क्या है ? धैर्य धारण करनेवाले सज्जन व्यक्त ही भारी बोझा वहन कर सकते हैं, अपने स्थान को बिना छोड़े हुए सूर्य रश्मि-समूह से त्रिभुवन को आच्छादित
३६ करता है। कूच करते ही सेना की अगली टुकड़ी के आगे बढ़े हुए महान (सेनानी) पुरुष, जिसमें कायर लोग कार्यभार का त्याग करते हैं ऐसे अपने सैन्य को पहले विजित करते हैं, शत्रु सैन्य को बाद में अस्त्रों से।
४० शत्रु का नाश करने के लिये प्रस्थान करने पर रणक्षेत्र में अवतरित होने के लिये उत्साहित वीर पुरुष के पीछे-पीछे मंगल चलते हैं, जयश्री सामने
४१ बढ़कर मिलती है और यश बढ़ता है। वीर पुरुषों द्वारा खींचे हुए खड्ग के मार्ग से गिराया हुआ, उत्कर्ष को प्राप्त वैर-बन्ध कटे पंखोंवाले पर्वतों
४२ के समान किसी दूसरे की ओर नहीं बढ़ सकते। रघुनाथ शोक तभी तक करते हैं, सीता हाथ पर मुख रक्खे तभी तक बैठी हैं और रावण भी तभी तक जीवित है जब तक तुम लोगों का धैर्य विषाद से बोझिल (तुलित)
४३ हो रहा है। दूसरे का मन दूसरा ही होता है, मैं आपके मन की बात नहीं जानता। परन्तु थोड़ा ही पूर पाया घाव जिसका आभूषण है ऐसे श्रीहनू-
४४ मान को देख कर मेरा मन अन्तर्व्यथा शून्य हो गया है। प्रतिपक्षी की लक्ष्मी का आस्वादन करते हुए और अपनी वंशानुगत कीर्ति अथवा यश का लाभ उठाते हुए नीति की स्थापना करनेवाले व्यक्ति का अप-
४५ मानित होकर प्राप्त हुआ मरण चिर जीवन की अपेक्षा अच्छा है। रण-भूमि में आदर प्रदान करनेवाले तथा युद्ध के भार का निर्वाह करनेवाले

संभावना नहीं हो सकती। ३६. खव का अर्थ नाश करने के साथ प्रक्षेप करना भी है। ४०. अपनी सेना के कायर जनों को आगे बढ़ कर लज्जित करते हैं। ४१. वीर शत्रु द्वारा प्रचारित होने पर बढ़ी-चढ़ी वैर की भावना शत्रु पर ही गिरती है।

४३. हनूमान के युद्ध के समय जो घाव लगे हैं, वे अभी तक सूखे नहीं हैं।

मेरे इस प्रकार कहने पर भी, सरल चितवनवाली तथा कर-कमल की केशर-श्री से छुई हुई लक्ष्मी से अवलोकित कौन ऐसे विज्ञानवान् (वानर वीर) होंगे जो अब भी मोहित होंगे ? चन्द्रमा से म्लान की हुई नलिनी ४६ के समान सीता की चिन्ता संसार न करे, राम के हृदय के काम द्वारा श्रान्त, अन्धकारित तथा दुःखी होने पर जीवन के विषय में हमारी तृष्णा (आस्था) क्या हो सकती है ? राम का यह दुःखी हृदय रजनी के ४७ सौन्दर्य को बढ़ाने वाले मेघ से धूमिल किये गये चन्द्रमा, तुषार-पात से झुलसे हुए तथा झड़े हुए परागवाले कमल और ऐसे सूखे फूल के समान है जिससे भौंरे वापस लौट गये हैं। हे वानर वीरो, आज्ञा सम्पादन- ४८ कार्य पर परिजनों द्वारा प्रशंसा किये जाने पर लज्जित हुए से हम अपनी (विरहिणी) प्रियतमाओं को कब देखेंगे, जिन्होंने विरह-जन्य दुर्बलता के अनुकूल कुछ साधारण अलंकारों को ग्रहण कर अन्य आभूषणों को त्याग दिया है, जिनके पुलकित कपोल निःश्वासों की अधिकता से उड़ने वाले लम्बे-लम्बे अलकों से घिस उठे हैं तथा जिन्होंने अपनी वलय-शून्य भुजाएँ विस्तृत नितम्ब-प्रदेश से हटा कर फैला ली हैं।" ४९,५०

सुग्रीव का आत्मोत्साह

इस प्रकार जब (प्रोत्साहन पूर्ण) भाषण दिये जाने पर, चिन्ता भार से पीड़ित शरीरवाला तथा समुद्र लंघन के आह्वान से भी निश्चेष्ट वानर-सैन्य खींचे जाने पर भी, निश्चेष्ट कीचड़ में फँसे गज-समूह की ५१ तरह हिलाडुला नहीं; तब शत्रु के पराक्रम को न सहते हुए, स्पष्ट शब्द करती वनाग्नि से पूरित पर्वत-कन्दरा के से मुखवाले वानरराज सुग्रीव ने फिर कहा—"मेरे समान रावण को भी अस्थिर सामर्थ्य वाले ५२

---

४६ सुग्रीव का कहना है कि तुमको मेरा संरक्षण प्राप्त है और विजय-श्री भी निश्चित है, इस कारण अब द्विविधा की आवश्यता नहीं। ४९,५० आलिंगन की कल्पना से भुजाएँ उठाये हुए हैं। रावण-वध कार्य को पूरा करने के बाद जब घर लौटेंगे, तब परिजन हमारी प्रशंसा करेंगे।

परिजन-समूह पर क्या भरोसा हो सकता है; पर जो हो वह दशमुख है
५३ और उसके लिये मेरी यह भुजा प्रतिपक्षी है। मेरे हाथों की चपेट से फटा हुआ, दोनों पार्श्वों में फैला हुआ सागर जब तक पुनः वापस हो,
५४ इस बीच में वानर-सैन्य समुद्र पार हो जाय। शत्रुओं की शान्ति को नष्ट करने वाली मलय पर्वत की चोटी पर स्थित इस वानर-सेना को मैं अधिक भार के कारण हिलते हुए कंधोवाली बाहु पर ही सौ योजन तक ले
५५ जाऊँगा। प्राण-संशय की स्थिति उपस्थित होने पर, जहाँ भयवश एक दूसरे से लोग चिपके हुए हैं, कौन किसका सहायक हो सकता है ? जब तक कर्त्तव्य में स्वयं ध्यान न दिया जाय, क्या चिरकाल में कार्य सम्पन्न
५६ होता है ? अथवा महासागर की ओर प्रस्थान करने पर (पार जाने के लिये) मेरे लिये आकाश-मार्ग भी अधिक नहीं होगा। रक्त, चर्बी तथा मांस के शरीरवाले रावण को मार कर ही मैं लौट कर सुखपूर्वक रहूँगा।
५७ हे वानर वीरो, किंकर्तव्य विमूढ़ न हो ! मेरे रोषयुक्त चरणों से आक्रांत तथा (भाराधिक्य) के कारण जिससे शेषनाग गिर-सा रहा है, ऐसा
५८ पृथ्वी-तल जिधर नत होगा उधर ही समुद्र फैल जायगा। अथवा महासमुद्र के बीच दो विशाल खंभों के समान मेरी भुजाओं पर स्थित, उखाड़ कर लाये हुए विन्ध्य-पर्वत रूपी सेतु से ही वानर सेना सागर पार करे।
५९ देखिये मैं रत्नाकर के जल को फूँक से उड़ाकर उसे स्थल-मार्ग बनाये देता हूँ, इस समुद्र में हड़बड़ाहट के कारण सर्प-समूह इधर-उधर भाग
६० रहे हैं, जल-जन्तु उलट-पुलट रहे हैं और पर्वत खण्ड-खण्ड हो रहे हैं। मैं समुद्र के इस ओर सुवेल और उस ओर मलय स्थापित कर सेतु बना

---

५३. अपने बाहु पर भरोसा करने वाला रावण तो युद्ध के लिये तत्पर है ही। ५४. ऊँच-नीच होते मूल प्रदेशवाले बाहु। ५८. इस प्रकार सागर छिछला हो जायगा और वानर-सेना के लिये पार जाना आसान हो जायगा। ६०. फूँक का प्रभाव भी समुद्र पर आकस्मिक होगा।

देता हूँ, जिसका शेष मध्य भाग मेरी भुजाओं से उन्मीलित और घुमा कर छोड़े गये पर्वत खण्डों से बन जायगा। अथवा आप आज ही लंका ६१ को मेरी भुजा द्वारा आकृष्ट सुवेल-पर्वत से लगी हुई ऐसी लता के समान देखें जिससे राक्षस विटप गिर गये हैं, पर सीता रूप किसलय मात्र शेष है। अथवा जैसे बनैला हाथी वनस्थली को कुचल डालता है उसी ६२ प्रकार मैं लंका के राक्षस रूपी वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट कर और रावण सिंह को मार, निरापद कर, उसे अस्त-व्यस्त कर देता हूँ। ६३

---

६१. विशेषण-पद सागर के हैं, पर अनुवाद में अर्थ को ध्यान में रख कर ऐसा किया गया है। ६२. विटप का अर्थ पत्ते लेना चाहिए।

चतुर्थ आश्वास

वानर सैन्य में उल्लास और उत्साह

अनन्तर चन्द्र के दर्शन से प्रसुप्त कमल-वन जिस प्रकार सूर्योदय होने पर खिल जाता है, उसी प्रकार सुग्रीव के प्रथम भाषण से निश्चेष्ट हुई वानर सेना बाद में उत्साहित तथा लज्जित होकर भी जाग्रत-सी हो गई। पुनः मोह रूपी विकट अन्धकार के दूर होने से, एक-एक करके सभी वानर हृदयों में, गिरिशिखरों पर सूर्य के प्रभात-कालिक आतप की भाँति लंकागमन का उत्साह व्याप्त हो गया। तब वानर सैनिकों में दर्प के कारण आई हुई मुख की प्रसन्नता, हार्दिक हँसी का आलोक तथा रण-शौर्य का एक मात्र आधार रूप हर्षोल्लास प्रकृत चंचलता की भाँति बढ़ने लगा। ऋषभ नामक वानर-वीर ने अपनी वाम भुजा के कन्धे पर रखे हुए पर्वत-शृंग को ध्वस्त कर दिया; जिस पर्वत में गैरिक धूल का समूह बहुत अधिक उड़ रहा है, उछलता हुआ निर्झर प्रवाह कपोल तल को आहत कर रहा है और उखाड़ कर स्थापित किये जाने के कारण सर्प वक्र हो गये हैं। नील रोमांचित हुए गहरी कालिमा से युक्त, तथा जिसके भीतर हर्ष निहित है ऐसे शशि अन्तर्निहित मेघ के तुल्य अपने वक्ष प्रदेश को बार-बार पोंछ रहे थे। आनन्दोल्लास के चन्द्रालोक में कुमुद ने दल के रूप में उघड़ रहे ओठों, केसर समूह के रूप में चमचमाती दाँत की किरणों तथा सुरभिगन्ध के उद्गारों से युक्त हास किया। मैन्द ने दोनों भुजाओं से उखाड़ने के प्रयत्न से शब्दाय-मान तथा कम्पायमान, जड़-मूल से उखड़ रहे तथा जिससे इधर-उधर

---

१. सुग्रीव के भाषण का प्रभाव दो प्रकार से हुआ है। ४. वास्तव में दाहिने हाथ से उखाड़ कर कन्धे पर स्थापित करने की क्रिया का अन्तर्भाव है। ६. कुमुद शब्द को दोनों पक्षों में लिया गया है।

सर्प गिर रहे हैं ऐसे चन्दन वृक्ष को जोर से झकझोर दिया। दीप्यमान ७
होने के कारण जिसकी ओर देखा नहीं जा सकता तथा धूम युक्त अग्नि
के ज्वाला-समूह की-सी और हर्ष से भरी वानरवीर द्विविद की दृष्टि उग्र
सर्प की दृष्टि के समान शीतलता को प्राप्त नहीं हुई। महावीर शरभ ८
ऐसा घनघोर गर्जन कर रहा है कि जिसकी कन्दरामुख से उठी हुई प्रति-
ध्वनि से मलय पर्वत का एक प्रदेश विदीर्ण-सा हो रहा है, और वह
क्रोध रूपी विष से व्याप्त हुए-से अपने शरीर को खुजला रहा है। अरुण ९
के समान रक्ताभ तथा तत्क्षण विकसित कमल सी शोभावाले वीर निषध
के मुख पर भी, दिवस के मुख पर दिनकर के समान, क्रोध स्पष्ट रूप से
प्रकट हो रहा है। उत्पात सूचक आकाश स्थित रुधिर के समान लाल- १०
लाल तथा बीच में फूट से गये सूर्य-मण्डल के तुल्य सुषेण के मुख मण्डल
को, जिसमें अधरों का अन्तराल विकराल है, रोषपूर्ण हास ने भयानक ११
बना दिया। अर्द्धोदित सूर्य-बिंब तुल्य अपने मुख से बालिपुत्र अंगद ने,
आमुख से ही कार्य (अन्धकारा-पसरण) जिसने प्रकट किया है ऐसे दिवस
के समान अपना उत्साह व्यक्त किया। अनेक कार्यों का सम्पादन करने १२
वाले पवनसुत हनूमान दर्प के साथ हीन औद्धत्य प्रकट करने की इच्छा
नहीं कर रहे हैं, क्योंकि प्रभु की आज्ञा पालन करने वाले को लोकाप-
वाद से बचाने वाला धैर्य ही शोभा देता है। वानरों की दर्पोक्तियों १३
से शमित कोप अतएव रागहीन नेत्रोंवाले सुग्रीव समुद्र के गर्जन को
तिरस्कृत करते हुए अपने अधर-पुटों के खुलने से डाढ़ की नोकों को
व्यक्त करते हुए हँस रहे हैं। इसके बाद अग्रज राम तथा अपने बल का १४
निश्चय करते हुए सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण, रावण सहित समुद्र को तृण के
समान तुच्छ समझ कर न हँसते ही हैं और न कुछ बोलते ही हैं। वानरों १५
की उत्साहजनित चेष्टाओं से राम की दृष्टि, चमचमाते विद्रुम जैसे

---

१३. कार्य सम्पादन से यहाँ भाव उन कार्यों से है जो सागर पार जाकर उन्होंने पहले किये हैं।

लाल-लाल (ताम्र) सुग्रीव के मुख की ओर चालित हुई, जैसे भ्रमर-पंक्ति
१६ एक कमल से दूसरे की ओर जाती है। अनन्तर निकटवर्ती छोटे श्वेत
मेघ-खण्ड से जिसकी ओषधि की प्रभा कुछ छिन्न-सी हो रही है ऐसे
पर्वत के समान जाम्बवान् की दृष्टि बुढ़ापे के कारण झुकी हुई भौंहों से
१७ अवरुद्ध हुई। और अपनी ज्वाला से वृक्ष-समूह को आहत कर पर्वत को
अपनी स्फुलिंगों से पिंगल-पिंगल करते हुए दावानल के समान उसने,
हाथ से कपि-सैन्य को शान्त करते हुए अपनी चमकती हुई आँखें सुग्रीव
१८ पर डालीं। फिर ऋक्षराज जाम्बवान् ने झुर्रियों के मिट जाने से, जिसमें
कन्दराओं-से बड़े-बड़े घाव प्रत्यक्ष हो रहे हैं ऐसे अर्द्ध पृथ्वीतल की तरह
१६ विस्तृत वक्षस्थल को उभार कर कहा।

जाम्बवान् की शिक्षा

"मैंने समुद्र-मथन के पूर्व पारिजात-शून्य स्वर्ग, कौस्तुभ
मणि की प्रभा से हीन मधुमथन विष्णु के वक्षस्थल
२० तथा बाल-चन्द्र से विरहित शिव के जटाजूट को देखा
है। मैंने मधुशत्रु नरसिंह के हाथों पर, नखों से विदीर्ण
होने से आर्द्र हरिण्यकशिपु के हृदय के पीछे-पीछे दौड़ती हुई दैत्य श्री
२१ को देखा है, जैसे वह उसका अपहृत करकमल ही हो। तथा मैं महा-
वराह के डाढ़ों से फाड़े गये तथा हृदय-पिंड रूपी गिरि-बंध जिससे उखाड़
लिया गया है, ऐसे उत्तोलित भूमण्डल के समान विशाल हिरण्याक्ष के
२२ वक्षस्थल का स्मरण करता हूँ। विषाद धैर्य का, यौवन-मद विनय का
और अनंग लज्जा का अपहरण कर लेता है, फिर सवर्था एकपक्षी निर्णय
बुद्धि वाले बुढ़ापे के पास कहने को बचता ही क्या है, जिसकी स्थापना

१७-१६. तक जाम्बवान् के कहने के लिए उद्यत होने का एक चित्र है। १८. में ज्वाला जाम्बवान् के प्रताप, वृक्ष-समूह कपि-सैन्य तथा पर्वत सुग्रीव के अर्थ में है। २०. अर्थात् मैं बहुत प्राचीन हूँ। २१. हृदय रूपी कर कमल को प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित-सी। २३. निर्णय के संबंध में व्यंजना असाधारण बोध की है।

करे। जरावस्था के कारण परिपक्क तथा अनुभूत ज्ञानवाले मेरे वचनों का अनादर न कीजिये; मेरे ये वचन अपसिद्धान्त की व्याख्या करके भी व्यवस्थित अर्थवाले हैं और यौवन से मूढ़ हुए लोगों द्वारा ही उनका उपहास हो सकता है। आपके बाहुओं पर आश्रित वानर-सैन्य देवताओं से युद्ध करने में समर्थ है; पवन द्वारा बल को प्राप्त पृथ्वी की धूल (रज-समूह) सूर्य को भी आक्रान्त कर लेती है। और किया या कहा भी क्या जाय, मर्यादा उल्लंघन कर कुमार्ग पर स्थापित होने के कारण अशक्य कार्य समूह, रत्नादि से गौरव-युक्त समुद्रों की भाँति बन कर भी बिगड़ जाते हैं। इस प्रकार कभी तुला के अग्रभाग में न्यस्त विवेचना के लिये उपस्थित प्रत्यक्ष की अपेक्षा शास्त्रों द्वारा विवेचित ज्ञान तथा प्रत्यक्ष ज्ञान की अपेक्षा अप्रत्यक्ष प्रमाण की तरह तुम्हारे अनुभव-जन्य ज्ञान की अपेक्षा, मेरा सन्देह उपस्थित होने पर भी अविचल अध्ययन जनित ज्ञान अधिक उपादेय है। समान बल-पराक्रम वाले लोग मिल कर जिस काम को सिद्ध कर सकते हैं, उसे अलग-अलग होकर नहीं कर सकते; एक सूर्य त्रिभुवन को भली-भाँति तपाता है किन्तु बारहों मिल कर तो नष्ट ही कर देते हैं। अनुपयुक्त कार्य में नियोजित उत्साह, क्रोधावेश में धनुष पर चढ़ाये हुए बाण की तरह नियोक्ता के अभिमान को नष्ट कर, कुत्सित भाव से न शत्रु को भयभीत करता है और न लक्ष्य को ही सिद्ध कर पाता है। हे वानरराज, तुम साधारण लोगों की तरह जल्दबाज़ी में धीर राज-चरित को त्याग मत दो, क्योंकि दक्षिणायन के सूर्य का प्रताप शीघ्रता करने के कारण मन्द पड़ जाता है। क्या आपने आनन्दोल्लास से अवनतमुखी जयलक्ष्मी को, विशेष अनुरक्ति वश अनुचित रीति से रणानन्द की कथाओं की उद्भावना से गोत्रस्खलन द्वारा अनमनी तो नहीं

(२३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)

---

२६. बनना का अर्थ सिद्ध होना है। २७. यहाँ साधारण प्रत्यक्ष ज्ञान और अध्ययन जन्य ज्ञान की तुलना है। २९. राजनीति के व्यवहार से यहाँ भाव है। ३१. 'गोत्रस्खलन' विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत 'मान' प्रकरण का एक नायकगत दोष है। जब नायक अन्यमनस्कता के कारण

बना दिया है। वानर सैनिको, अविचारपूर्ण कार्य (साहसिक) में अनुरक्त मत हो, चन्द्र का कुमुदवनो को परिपूर्ण करनेवाला दूर तक प्रकाशित और व्याप्त यश कमल-वनो के विषय में निन्दास्पद होता है, क्योंकि
३२ किसी विषय की एकरसता उचित नहीं है। आप स्वयं शत्रु के परिजन के विरुद्ध युद्ध करते हुए अथवा आपके परिजनो के विरुद्ध शत्रु युद्ध करता हुआ क्या शोभा पायेगा ? जिसमें रणोत्साह संबंधी अहंकार नहीं है ऐसे को विजित करने से भी क्या ? हे धीरवीर, तुम हनुमत् से बल
३३ तथा पराक्रम में अधिक हो तथा हनुमत्प्रमुख वानरों के स्वामी हो। क्या तुमको भी मारुति के समान वैचित्र्यहीन कार्य करना है जिससे यश के प्रशंसात्मक भाव को अलग नहीं किया जा सकता है। उस व्यक्ति को
३४ आज्ञा देने से क्या ? जिस पर न तो उसका कोई प्रभाव होता है और न वह फलित होती है। यदि आज्ञा निष्फल जाती है, उससे तो अच्छा है कि अन्य पुरुष को आज्ञा दी जाय, जिस प्रकार यदि किसी वृक्ष पर आरोपित लता न फलती हो और न फैलती हो तो उसके उखड़ जाने
३५ पर लता को अन्य वृक्ष पर आरोपित करना होता है। हे वानरपति, राम का यह प्रियकार्य है, इस भाव से रावण-वध की इच्छा करते हुए तुम उसके वध के लिये स्वयं शीघ्रता करनेवाले रघुपति का कहीं अप्रिय तो
३६ नहीं करना चाहते।" इस प्रकार सुग्रीव को मर्यादित करके ब्रह्मा के पुत्र जाम्बवान् राम की ओर उन्मुख हुए, जिस प्रकार प्रलयकाल का धूप-समूह मेरु पर्वत के शिखरों को आक्रान्त करके सूर्य के अभिमुख होता
३७ हो। बोलते समय जाम्बवान् का विनय से नत मुख चमचमाते दाँतों के
३८ प्रभा-समूह से व्याप्त है, जिसमें किरणें किंजलक-सी जान पड़ती हैं और मुड़ने के समय सफेद केसर-सटा उलट कर सामने की ओर आ गई है।

अपनी विहित प्रणयनी को अपनी किसी अन्य प्रणयनी के नाम से पुकार बैठता है, उस समय यह दोष माना जाता है। ३२. अर्थात् क्या कीर्ति मिलेगी। ३६. वीर अपनी प्रतिज्ञा स्वयं पूरा करना चाहते हैं।

—"हे राम, आप से त्रैलोक्य रक्षित है, प्रलयकाल के समुद्र में निमग्न पृथ्वी का उद्धार होता है। और आपके आधे पेट के एक कोने में जो सागर समाहित हो सकता है, उसके विषय में आप विमुग्ध हो रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है! रणभूमि में, क्रुद्ध यमराज के दूसरे निमेष के समान, ३९ आपके कौंधती हुई बिजली के विलास जैसे धनुर्व्यापार का आरम्भ ही नहीं होता, अवसान की तो बात ही क्या? जिसके प्रदान किये धैर्य से समुद्र ४० प्रलय के समस्त भार को वहन करता है तथा वड़वानल की ज्वाला सहता है, उसी के विषय में समुद्र क्या करेगा? ४१

राम की वीर वाणी

अनन्तर जिसे प्रिय के पयोधर के स्पर्श का सुख विस्मृत-सा हो गया है ऐसे प्रत्यक्ष दुर्बल राम ने बायें हाथ से अपने तमाल से नीले-नीले वक्ष को सहलाया। (और ४२ छाती पर हाथ फेरते हुए) अपने यश से समुद्र के यश, धैर्य से धैर्य, गम्भीरता से गम्भीरता, मर्यादा से मर्यादा तथा ध्वनि से समुद्र के गर्जन को आक्रान्त करते राम बोले—"हे वानरराज सुग्रीव, समुद्र ४३ के कठिन संतरण के कारण वानर-समूह किंकर्तव्य-विमूढ़ है और मैं भी विषाद-ग्रस्त हूँ। ऐसी स्थिति में समुद्र तरण के इस दुर्वह कार्य की धुरी तुम पर ही अवलम्बित है। धैर्यशाली तथा अपराजेय यशवाले ऋक्षपति ४४ ने महत्वपूर्ण, गम्भीर तथा शाश्वत प्रकाशित वचन कहे हैं, जो रत्नाकर से उछाले हुए रत्नों के समान हैं। आप जैसे अत्यन्त गम्भीर तथा स्थिर ४५ अवलम्ब जहाँ नहीं होते, वहाँ शेष से मुक्त पृथ्वी की भाँति कार्य की मूल

---

३९. यहाँ वराह अवतार तथा विश्वमूर्ति का उल्लेख अन्तर्निहित है। ४०. यमराज एक पल में काम पूरा करता है। यदि आप धनुष ग्रहण करें तो पल में त्रिभुवन नष्ट कर सकते हैं। ४१. ऐसा क्या अगाध हो जायगा कि उसका संतरण न हो सके।

४६ प्रेरणा ही नष्ट हो जाती है। वायुपुत्र ने सीतावार्ता (समाचार) मात्र जिसका मुख्य प्रयोजन है ऐसे लंकाभियान कार्य को थोड़ा ही शेष रक्खा है और इस समय वानरों में से जो भी अपना मन लगायेगा वही यश ४७ का भाजन होगा। तब तक हम सब एक साथ हनूमान द्वारा दुस्तर होने पर भी आसानी से पार किये गये समुद्र की प्रार्थना करें, जिसका देवता ४८ और असुरों ने अभ्यर्थना करके आदर किया है। और यदि मेरे प्रार्थना करने पर भी समुद्र अपने अकारण ग्रहण किये हुए हठ (धैर्य) को नहीं छोड़ता, तो सब वानर-सैन्य को समुद्र रूपी प्रतिरोध के हट जाने से ४९ स्थल-मार्ग द्वारा पार जाते हुए देखें। जिस पर मेरा क्रोध सम्पूर्ण रूप से अवस्थित होकर रहेगा, उस पर अन्य किसी का क्रोध कैसे रह सकता है ? जिसको विष-दृष्टि सर्प एक बार देख लेता है उसको दूसरा नहीं ५० देख सकता।"

विभीषण का अभिषेक

इस प्रकार जब राम ऐसा कह रहे थे, प्रभातकाल के सूर्यातप से आलिंगित कृष्ण मेघ-खण्ड की भाँति रक्ताभ मुकुट की आभा से युक्त एकाएक आविर्भूत ५१ राक्षसों की छाया दिखाई देने लगी। तब वानर सैनिकों ने (आश्चर्य से) राक्षसों को देखा, इनके संचरण पवन से चंचल वस्त्रखण्डों से मेघ आकाश मार्ग में अपसारित हो गये और विस्तीर्ण ५२ विद्युत-समूह सूर्य किरणों में विलीन हो गया। तब आकाशमार्ग से पृथ्वी की ओर आते हुए धूमकेतु तुल्य निशाचरों को नष्ट करने के लिये, गिरिशिखरों को उठाये हुए वानर-सैन्य भू-मण्डल की तरह उठ खड़ा

---

४६. जाम्बवान् को इस प्रकार से दृढ़ तथा स्थिर धुरी कहा गया है। ४७. यश पान करेगा। ४९. तो मैं समुद्र को स्थल मार्ग बना दूँगा। ५०. एक बार में ही मनुष्य मर जाता है। ५२. राक्षसों के आगमन से बादल छट रहे थे और विद्युत-स्फुरण भी मिट रहा था। ५४. इस प्रकार राक्षस-समूह उतर रहा है।

हुआ। उस समय नीचे गिरते हुए मेघवाला, वानर-सैन्य के इधर-उधर खिसक कर हट जाने से स्पष्ट दिखाई देता हुआ, मूलस्थान से च्युत हुआ शिथिल-मूल आकाश चक्कर खाता-सा गिरता दिखाई दे रहा है। फिर वानर सेना को शान्त रहने का संकेत कर, लंका में जिसको देखा था और जिसके स्वभाव से परिचित थे ऐसे विभीषण को, हनूमान् ने राम के समक्ष सीता के दूसरे समाचार की भाँति उपस्थित (समीप लाये) किया। चरणों पर झुका हुआ इस विभीषण का सिर, राम द्वारा सम्मान के साथ उठाया जाकर राक्षस कुल से अधिक दूर (उन्नत) हो गया। पवनसुत द्वारा प्राप्त विश्वास से हर्षित होकर सुग्रीव ने, कार्य चेष्टा से जिसका प्रयोजन स्पष्ट है, ऐसे विभीषण को आलिंगित किया, जिससे हृदयस्थित मालाओं के ऊपर मड़रानेवाले भ्रमर दब गये। तब एक ही साथ दसों दिशाओं में, निसर्ग-शुद्ध हृदय के धवल निर्झर के समान अपने दाँतों के प्रकाश को विकीर्ण करते हुए राम बोले—"देखिये, वन में दावाग्नि से त्रस्त इधर-उधर स्थान खोजती वनहस्तिनी के समान स्वाद-प्राप्त राज-लक्ष्मी राक्षस-कुल को छोड़ना नहीं चाहती। हे विभीषण, सात्विक प्रकृति से परिवर्धित तुम्हारा विज्ञान, सर्पों के-से राक्षसों के सम्पर्क में भी, समुद्र के अमृत की तरह विकृत नहीं हुआ है। हे विभीषण, प्रभूत गुणरूपी मयूखों से स्फुरित शुद्ध-स्वभाव द्वारा तुमने, अपने मलिन राक्षस-कुल को प्रत्यक्ष ही अलंकृत किया है, जिस प्रकार चन्द्रमा निज अंकवर्ती मलिन मृग-पोत से सुशोभित होता है। अपने कार्य में कुशल, विवेक बुद्धि से कार्य की गतिविधि का अवलम्बन करने वाले तथा कुल प्रतिष्ठा पर स्थित (आश्रित) सत्यपुरुष राज्यलक्ष्मी के कृपापात्र क्यों न हों! बन्दिनी देव सुन्दरियों को प्राप्त करने में चिरकाल से रस पाने वाला रावण सर्पपुरी लंका (राक्षसपुरी) में विषौषधि के समान सीता को ले आया

(मार्जिन संख्याएँ: ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२)

---

५९. विभीषण को राज्य दूँगा—यह भाव है। ६३. सीता उनके नाश का कारण होंगी—यह भाव है।

६३ है। देवताओं का उत्पीड़न परि-समाप्त हुआ, बन्दी देवादिकों का क्रन्दन भी समाप्त हुआ, और रावण द्वारा बन्दी की हुई सीता त्रैलोक्य के विप्लव
६४ को पार कर गईं। अनन्तर राम ने विभीषण के नेत्रों में आनन्दोल्लास,
६५ कानों में वानर-सैन्य का उद्घोषित जय-नाद, सिर पर अभिषेक का जल तथा हृदय में अनुराग न्यस्त किया (डाला)।

---

६४. सीता की मुक्ति में अब देर नहीं है और तीन लोकों का भय टल गया।

पंचम आश्वास

राम की व्यथा और प्रभात

इसके पश्चात् चन्द्रमा के दर्शन से समुद्र तथा काम के बढ़ने पर, सीता-विरह से व्याकुल राम को रात्रि भी बढ़ती हुई-सी जान पड़ी। आकाश में चन्द्रमा उदित है, पुलिन-प्रदेश पर दृढ़निश्चित (सागर तरण के लिये) राम बैठे हैं, और ये दोनों फैली हुई चाँदनी के विस्तार वाले समुद्र-जल को प्रवर्धित-सा कर रहे हैं। तब वियोगावस्था में सहज नियमाचरण (प्रायोपवेशन) में स्थित हृदय की व्याकुलता से आविर्भूत आवेगवाले ग्लानि-जन्य क्षोभ राम के धैर्य को मलिन-सा कर रहे हैं। "समुद्र आज्ञा मान कर मेरा प्रिय करेगा ही, रात बीतेगा और चाँदनी भी ढलेगी, किन्तु जानकी तो जीवित रहे, वह हमें कहीं जीवन-शून्य न बना दे!" ऐसा कहते राम मौन हो गये। चन्द्र-किरणों की निन्दा करते हैं, कुसमायुध पर खीझते हैं, रात्रि से घृणा करते हैं तथा 'जानकी जीवित तो रहेंगी,' इस प्रकार मारुति से पूछते हुए राम विरह के कारण क्षीण होकर और भी क्षीण हो रहे हैं। सीता दक्षिण दिशा में निवास करती हैं, इस चन्द्रमा की निन्दा करती हैं, इस पृथ्वी पर बैठती हैं और इस आकाश मार्ग से रावण द्वारा ले जाई गई हैं; अतः राम के लिये ये सब आदरणीय हैं। राम के रात्रि-प्रहर धैर्य के साथ बीतते हैं, बन्धु-जनों के असंपूर्ण उपदेश हृदय (आवेग) के साथ व्यर्थ जाते हैं, उत्साह के साथ भुजाएँ गिर जाती हैं तथा उनके अश्रु प्रवाह में विलाप विलीन हो

१

२

३

४

५

६

---

२. राम का प्रायोपवेशन वर्णित है ३. अनेक प्रकार के वितर्क मन को अस्थिर कर रहे हैं। ४. विसरण का अर्थ संज्ञा-विहीन भी होता है। ५. खिज्जइ का अर्थ खेद करना और उद्विग्न होना दिया गया है ६. विरह-जन्य उद्वेग के कारण राम ऐसा करते हैं। ७. पहले उत्साह में भुजाएँ उठ जाती हैं।

७ जाते हैं। धीरा जान कर आश्वस्त होते हैं, मदन से कृश हुई सोचकर मूर्च्छित होते हैं; प्रिया जीवित है, विचार कर जीवित हैं तथा वियोग से
८ दुबली हो गई सोचकर राम स्वयं दुर्बल होते हैं। प्रातःकाल चन्द्रमा का मृग-कलंक स्पष्ट और विशाल हो रहा है, मलय पर्वत स्थित लताओं के पल्लवों पर उसने अपने किरण-समूह का वमन किया है तथा अरुण की आभा से अभिभूत होने के कारण उसकी कान्ति मलिन हो गई है;
९ राम को ऐसा चन्द्र सुख-प्रद-सा दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे रात बीत रही है वैसे-वैसे समुद्र की आन्दोलित तरंगों पर प्रतिबिम्बित हुआ चन्द्र-
१० बिम्ब उसके किंकर्तव्यविमूढ़ हृदय की भाँति हिल-डुल-सा रहा है। फिर पवन के द्वारा आहत समुद्र का जल, मलय पर्वत के कन्दरामुख में भर कर पुनः लौटते समय ऊँचे स्वर से प्रतिध्वनित होता हुआ, राम के लिये प्राभातिक मंगलवाद्य की तरह मुखरित हुआ। दसों दिशाओं के स्पष्ट
११ हो रहे विस्तारवाला तथा हंसों के कलरव से ध्वनित दिवस का प्रथम प्रहर (मुख) अन्धकार रूपी जलराशि हट रही है ऐसे सागर-पुलिन के समान व्यक्त हो रहा है। इसके बाद रात्रि की अवधि बीतने पर भी जब
१२ समुद्र अपनी गम्भीरता में अचल रूप से स्थित रहा, तब राम के मुख पर चन्द्रमण्डल पर राहु की छाया के समान आक्रोश का आविर्भाव हुआ।

राम का रोष और धनुषारोप

१३ जिस पर प्रस्वेद-कण बिखर रहे है ऐसे राम के विस्तृत तमाल की तरह नीलाभ ललाट पर, विन्ध्याचल के स्थिर और विस्तीर्ण मध्यभाग पर विष-लता की भाँति भ्रकुटी चढ़ गई। इसके पश्चात् राम के
१४ मुख पर भ्रकुटी वक्र हुई, क्रोध के कारण कम्पित होकर जटाओं का बन्धन

---

८. धैर्य के कारण प्राण नहीं छोड़ेंगी, दुर्बल होने के कारण सीता मूर्च्छित होगीं—ऐसा राम विचार करते हैं। १२. ज्वार-भाटा की कल्पना ध्वनि है। १४. भ्रकुटी से युक्त हुआ। १५. इसमें चित्र मुख को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

ढीला हो गया है और उनके दोनों नेत्र धनुष की ओर फिर गये। तथा (सागर द्वारा) प्रार्थना विफलित कर दिये जाने के कारण अन्यमनस्क राम का क्रोध कुछ-कुछ बढ़ रहा है, इस पर वे सौम्य होकर भी प्रलयकाल के सूर्य-मण्डल के समान देखने में दुसह हो गये। तब राम साहस के उपादान स्वरूप, शत्रु द्वारा देखे जाते उसकी राजलक्ष्मी के संकेतगृह, प्रसरणशील (सम्यक् स्थित) क्रोध के बन्धन-स्तम्भ और बाहुदर्प के दूसरे प्रकाशक धनुष को ग्रहण करते हैं। समुद्र के एक कोने की जल-राशि, प्रत्यंचा चढ़ाने के लिये झुकाई गई चाप की नोक के भार से धँसे हुए भू-भाग में फैल रही है; और ऐसा समुद्र धनुष के किंचित चढ़ाये जाने पर ही सन्देह में पड़ गया। राम के धनुष ने, उठे हुए धुएँ की घनी कालिमा से युक्त होकर आकाश धूमायित किया, अग्निवाण को चढ़ाते समय प्रत्यंचा की ज्वाला से आकाश को प्रज्वलित किया, कोटि की टंकार से प्रतिध्वनित होकर दिग्भागों को गुंजारित किया। महीतल विनष्ट हो जाय, स्पष्ट ही समुद्र नहीं है, समस्त संसार विलीन हो जाय, इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा को मन में देर तक स्थिर कर राम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। राम का चिर वियोग से दुर्बल, निरन्तर अश्रु प्रवाह से गीला और प्रत्यंचा के संघर्ष से मृदु-चिह्नित वाम-बाहु, अधिज्य धनुष में संलग्न होते ही और प्रकार का हो गया। इसके बाद राम की वाम-भुजा के आघात (धनुष चढ़ाते समय) की ध्वनि-प्रतिध्वनि से त्रिभुवन की दसों दिशाओं का विस्तार परिपूरित हो गया; और शंकित होकर वह (त्रिभुवन) प्रलय मेघों के तुमुल गर्जन का स्मरण-सा कर रहा है। अनादर भाव से (प्रायः उपेक्षा भाव से) पीछे की ओर प्रसारित अग्रहस्त (अँगुलियों) में आ पड़े राम के बाण को, समुद्र, उलट-पुलट करने में समर्थ

१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२

---

१६. क्रोध अभी बढ़ ही रहा है, क्योंकि समुद्र से आशा बनी हुई है। १७. धनुष द्वारा राम शत्रु-लक्ष्मी का अपहरण करेंगे, इस कारण वह उसका सहेट कहा गया है। १८. इस कल्पना से कि आगे क्या होगा।

२३ प्रलय-सूर्य की किरणों में एक किरण के समान समझ रहा है। बाण चढ़ाने के पश्चात् करुणार्द्र होकर शिथिल भ्रुकुटि-भंगिमा वाले राम
२४ ने उच्छ्वास लेकर दया से खिन्न मुख समुद्र की ओर देखा। अनन्तर राम ने तिरछे किये हाथ से मध्य-भाग पकड़, धनुष पर, एक टक विस्तारित दृष्टि से बाण लक्ष्याभिमुख आरोपित किया; और प्रत्यंचा को दृढ़ता से
२५ ग्रहण कर धनुष खींचना आरम्भ किया। बाण के मुख पर चंचल भाव से प्रतिबिम्बित और झुकी हुई धनुष की नोक पर चमचमाती आभावाली सूर्य की किरणें, खींची जाती हुई प्रत्यंचा की ध्वनि के समान गम्भीर
२६ नाद करती हैं, ऐसा जान पड़ता है। समुद्र के वध के लिये सचेष्ट, कानों तक खींचा हुआ धनुष मानों जम्हाई-सा ले रहा है; बाण के मुख-भाग पर जलती अग्नि-शिखा से युक्त और प्रत्यंचा की स्पष्ट ध्वनि से
२७ मुखरित धनुष सागर की भर्त्सना-सा कर रहा है। बाण के फल से उल्का समूह निकल कर फैल गया है, और सागर के क्षुभित जल से उसका सार-तत्व प्रकट हुआ है; इस प्रकार यह बाण खींचे जाने पर ही सागर
२८ पर गिर चुका जान पड़ता है। राम-बाण के अग्रभाग से उगली हुई अग्नि से ज्वलित और चंचल बिजली जैसे पिंगल वर्ण दिशामुखों के मेघ
२९ प्रलय-नेत्रों के समान फूट रहे हैं। राम ऐसे बाण छोड़ रहे हैं, जो बाहु द्वारा सहज भाव से खींचे गये धनुष-पृष्ठ से प्रचुर धूम-समूह उत्पन्न कर रहे हैं और जिनके फल से निकली अग्नि-शिखाओं से सूर्य-किरणें भी
३० निष्प्रभ हो रही हैं। पहिले आकाशतल में प्रज्वलित होकर पुनः समुद्र की जलराशि के अर्धभाग में डूबा हुआ, अग्नियुक्त रक्त-मुखवाला राम का बाण समुद्र पर गिरा, जिस प्रकार सूर्यास्त के पश्चात् सागर पर

---

२६. सूर्य किरणें ज्या के समान खींची जाती हैं और ध्वनि प्रत्यंचा से ही हो रही है, इस प्रकार उत्प्रेक्षा की गई है। २८. अभी बाण डोरी पर खींचा ही गया है, पर उसका प्रभाव प्रकट होने लगा है। २९. उम्माअलोअण से यहाँ प्रलयकाल की व्यंजना है। ३१. दिन डूबने पर आकाश में तथा सागर पर लालिमा छा जाती है।

दिवस का विस्तार स्थित होता है। राम का बाण आकाश में गिरता हुआ विद्युत्पुंज, समुद्र की गोद में गिर कर प्रलय-अनल और पाताल में स्थित होकर भूकम्प हो जाता है। समुद्र में आधे डूबे राम के बाण, जिनके पीछे के भाग प्रज्वलित अ ग्न रक्ताभ हैं, आधी डूबी हुई सूर्य की किरणों के समान समुद्र के ऊपर गिर रहे हैं। ३१ ३२ ३३

राम बाण से विक्षुब्ध सागर

इसके बाद बाण से आविद्ध सागर, जिसकी वड़वामुख रूपी केसर-सटा काँप रही है, निर्द्वंद्व रूप से सोते हुए सिंह के समान (ताड़ना से) गर्जता हुआ उछला (उच्छलित हुआ)। दूर तक ऊपर उछल कर (प्रेरित) फिर वापस आया, सामने से गिरते हुए बाण समूह के आघात से उत्खण्डित समुद्र, कुल्हाड़ी से बिंधे वेग से ऊपर उछलते काठ की भाँति, आकाश को दो भागों मे बाँट रहा है। राम बाण से (समुद्र के) उत्तर-तट के आहत होने पर बीच से छिन्न होकर जल समूह ऊपर उठा, और उसके शून्यस्थान में दक्षिण-तट का पैठता हुआ जल ऐसा जान पड़ा, मानों अपने भारीपन के कारण मलय पर्वत का कोई खण्ड समुद्र में पैठ रहा है। भिन्न-भिन्न पर्वतों की धातुओं से रक्त-वर्ण हुए तथा जिसमे विषम रूप से टूटे हुए पर्वतों के खण्ड तैर रहे हैं, ऐसे पाताल तक गहरे सागर के भाग अत्यंत क्षुभित हो गये हैं और उनमें मकरों का समूह भी विकल हो उठा है। बाणों से आविद्ध मुखवाला तथा जिनका बीच का हिस्सा पीला-पीला-सा है, ऐसे अरुणिम बालसूर्य की किरणों के स्पर्श से ईषद् विकसित कमल की आभा वाला शंख-समूह इधर-उधर चक्कर लगा रहा है। बाण के आघात से उखाड़े गये मकरों के दाढ़ों से उछाले जाने पर धवल जल-समूह कम्पित हो रहे हैं, इनके आवर्त में पड़कर मत्स्य चक्कर खा रहे हैं और मणियों के भार से तिरछे कटे साँपों के फन भ्रमित हो रहे हैं। प्रवाल-वन फूट रहे हैं, ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९

३५. कुल्हाड़ी में बध कर लकड़ी ऊपर वेग के साथ चली जाती है, उसी दृश्य को कवि सामने लाया है।

तथा संक्षोभ के कारण रत्नों की चमक ऊपर की ओर निकल कर फैल रही है और जिसमें फेन के समान ऊपर मोती तैर रहे हैं, ऐसा सागर का ४० जल तट-भूमि पर पहुँच कर इधर-उधर फैल रहा है। बाणाघात से जलराशि प्लावित होकर पुनः प्रत्यावर्तित हो जाती है; और प्लावन की स्थिति में लुप्त (स्थगित) तथा मुक्त होने की स्थिति में विस्तार को प्रकट करने वाले प्रसन्न तथा क्षुभित समुद्र के आवर्त (भँवर) क्षण भर के लिये ४१ मूक तथा क्षण भर के लिये मुखर होते हैं। समुद्र चिरकाल से निपीड़ित एक पार्श्व को नीचे से ऊपर करके विश्राम देता हुआ, पाताल में दूसरे ४२ पार्श्व से सोने जा रहा है। बाण के वेग से ढकेला हुआ (गलहस्तित), सुवेल पर्वत के पार्श्व से अवरुद्ध तथा उत्तर सागर को आच्छादित करने वाला समुद्र के दक्षिण भाग का जल उस दिशा को प्लावित कर, काट कर पृथ्वी पर ढाहे आकाश के एक पार्श्व की भाँति जान पड़ रहा ४३ है। पाताल पर्यन्त गहरे समुद्र के भयानक प्रदेश, जिन्हें न आदि वराह ने देखा है और न मन्दराचल ने स्पर्श किया है, राम के बाणों से ४४ क्षुब्ध हो उठे हैं। बाण के आघात से अधःस्थित पृथ्वीतल में बनाये हुए एक-एक विवर में वक्र होकर प्रवेश करता हुआ, आकाश की भाँति आधारहीन सागर, प्रलयकाल की अग्नि से भीत चीत्कार करता रसातल ४५ में प्रवेश-सा कर रहा है। सागर-मन्थन को निर्भीक होकर देखने वाले तथा अमृत पीने से अमर हुए, जिन तिमि नामक मछलियों की पीठों पर स्थित होकर मन्दराचल के शिखर रगड़े गये हैं, वे बाण के कठोर

---

४०. बाण के कारण उत्पन्न संक्षोभ के कारण इस प्रकार की स्थिति हो रही है। ४१. जलराशि जब तट को प्लावित करती है तब आवर्त मिट जाते हैं, पर जब वापस लौटती है तभी वे और बड़े प्रकट होते हैं। ४२. बाण के संक्षोभ से सागर का तलवर्ती जल ऊपर आ रहा है और ऊपर की ओर का पानी नीचे जा रहा है। ४३. सागर का जल पवन से प्रताड़ित होकर प्लावित होता हुआ सुवेल से टकरा रहा है और एक दिशा से दूसरी ओर जा रहा है। ४६. पलादे का अर्थ मथन-क्रिया के घर्षण से है।

आघात से मूर्च्छित हो रही हैं। बड़े-बड़े आवर्तों को उठाने वाले, विष की भीषण ज्वाला से किंचित जले तथा झुलसे हुए प्रवालों की रज से धूसरित, पाताल से उठते हुए अजगरों के श्वासों के रास्ते दिखाई दे रहे हैं। स्नेह की बेड़ी से आबद्ध, एक ही बाण से बिद्ध होने के कारण (अभिलषित) आलिंगन से तृप्त होकर सुखी, प्राण-पण से एक दूसरे की रक्षा में प्रयत्नशील सर्पों के जोड़े आपस में आवेष्ठित होकर काँप रहे हैं। प्रवाल-जाल को छिन्न-भिन्न कर मणिशिलाओं से टकराकर तीक्ष्ण हुए, सीपियों को (बीच से) बेधन कर बाहर निकलने के कारण बड़े-बड़े मोतियों के गुच्छों से संलग्न मुखवाले राम के बाण समुद्र जल पर दौड़ रहे हैं। विष-वेग से फैलता हुआ, (बाणों की ज्वाला से उठा हुआ जल-राशि का) अपार धूम्र-समूह जिस-जिस समुद्र के रक्त-समान प्रवाल-मण्डल में लगता है, उस उसको काला कर देता है। बाण द्वारा एक विस्तृत पार्श्व पंख के कट कर गिर जाने से भार की अधिकता के कारण टेढ़े और झुके शिखरों वाले पर्वत, क्षुब्ध सागर से उड़ते हुए आकाश के बीच चक्कर खा कर गिर रहे हैं। शरीर के कट कर बिखर जाने पर, केवल फण मात्र में शेष प्राणों के कारण क्रुद्ध सर्प अपनी-अपनी आँखो की ज्वाला से बाण समूह को जलाते हुए प्राण छोड़ रहे हैं। चोट खाये हुए समुद्र से उठी आग की ज्वाला, बाण-फलकों से उखाड़ कर फेंके हुए पहाड़ों की चीत्कार करते कटे सर्पों से (शरीर से) पूर्ण कन्दराओं के, खाली स्थानो को भर रही है। अपनी नाकों में बिद्ध जल-जन्तुओं सहित, बाणों द्वारा वेधित होकर ऊपर को उछाले हुए तथा उससे उठी हुई तरंगों से पहाड़ी-तटों को टकरानेवाले जल-हस्तिओं के वक्र दाँत ऊपर ही फूट रहे हैं। समुद्र से उठी हुई ज्वाला से विमुग्ध, जल-तरंगों से परिभ्रमित होकर दूसरे स्थानों पर फेंके गये मत्स्य-समूह, जिनकी आँखें धुआँ लगने से लाल हो गई हैं, प्रवाल-पुंज को ज्वाल-समूह समझ कर उससे

४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४

---

४८. निर्बाध संचरण कर रहे हैं। ५३. जलराशि की अपेक्षा पहले ही भर रही है। ५४. फडिहा का प्रयोग आकार के अर्थ में हुआ है।

५५ बच रहे हैं। दग्ध होने के कारण युगल-जिह्वाओं को कुछ-कुछ निकाले हुए, समुद्र के ऊपरी भागों में तैरते हुए साँप, उत्तान होने के कारण जिनका धवल पेट दिखाई दे रहा है, ऊँची-ऊँची तरंगों के भीषण अन्तराल को
५६ (अपने शरीर से) बाँध रहे हैं। समुद्र से उठी हुई आग के ताप से जिनके मद सूख गये हैं, भीतरी स्तर से कुछ बाहर निकले हुए जल-हस्ती जल-सिंहों के अंकुश जैसे नखों से आक्रान्त मस्तकों वाले दिखाई
५७ देते हैं। ज्वाला से सूखते हुए पानी के कारण विह्वल होकर तट की ओर आने के लिये उत्सुक, जाकर लौटा हुआ शंख समूह ऊँची-नीची
५८ मणिशिलाओं पर ढुलकता हुआ इधर-उधर भटक रहा है। ज्वाला से व्याकुल समुद्र को छोड़कर, संभ्रम के साथ आकाश में उड़े हुए पर्वत, अपने पाँखों के चालन से उठे हुए पवन द्वारा एक दूसरे के शिखर पर
५९ लगी हुई अग्नि (समूह) को और भी प्रज्वलित कर रहे हैं। विष्णु द्वारा काटे हुए असुरों के सिरों से भयानक लगने वाले पाताल के जल-समूह, जिनमें विह्वल होकर सर्प उलट गये हैं, मूल-भाग से रत्नों को उछाल, भीषण रव करते हुए, बाणों से विदीर्ण पाताल की विवरों से बाहर
६० निकल रहे हैं। बाणों के आघात से ऊपर उछाली गयी, अग्नि-ज्वाला से प्रताड़ित होकर ऊपर की ओर उड़ते हुए फेनवाली जल की ऊँची-तरंगें, वायु द्वारा कणों के रूप में बिखर कर आकाश में ही सूख जाती
६१ हैं। ऊँची-ऊँची तरंगों से टकरा कर तट पर लगे और क्रोध के कारण विष को उगलते हुए टेढ़े और उत्तान भुजंग पेट के बल सरकने में
६२ उत्साहहीन होकर वक्र चलने का प्रयास कर रहे हैं। मुक्तकण्ठ से रुदन करती हुई-सी नदियों का, शर-समूह से खण्डित शंख रूपी वलय से वियुक्त हाथों जैसा तरंग-समूह, सागर की रक्षा में फैला हुआ काँप रहा

---

५६. भर कर पूरित कर रहे हैं। ५८, शंख तीव्र उष्णता के कारण विह्वल हैं। ६१. तरंगें ज्वाला के थपेड़ों से ऊपर जाकर सूख जाती हैं।

है। जिनके निचले भाग अग्नि-जाल से आक्रान्त हैं और पंखों में (पत्तों में) आग से बचने के लिये जलचरों ने आश्रय लिया है, ऐसे पर्वत बहुत दिनों से उड़ने का अभ्यास शिथिल होने के कारण बहुत कष्ट से आकाश में उड़ रहे हैं। समुद्र का जल जलते हुए जलचरों के रूप में जल रहा है, भ्रमित होनेवाले प्रवाल के लता-जालों के रूप में भ्रमित हो रहा है, शब्दायमान आवर्तों के रूप में नाद कर रहा है और फूटते हुए पर्वतों के रूप में खण्डित हो रहा है। आवर्तों की गहराइयों में घूमता हुआ, मलय पर्वत के मणिशिलाओं के तटों से टकरा कर रुक-रुक जानेवाला ज्वाला-समूह, तरंगों के उत्थान-पतन के साथ ऊपर-नीचे होता हुआ सागर की भाँति लहरा रहा है। वेग से ज्वलित होकर उछला हुआ सागर जिन तटवर्ती मलय वनों को जलाता है, बुझकर लौटने के समय उन्हें पुनः अपने जल से बुझा देता है। अग्नि-ज्वाला सागर को उछाल अपने शिखा-समूह को मकरों के मांस और चर्बी से प्रदीप्त कर तथा पर्वत समूह को ध्वस्त करते हुए महीधरों के शिखरों की भाँति भयानक रूप से बढ़ रही है। बाण से उछाले चक्कर काटते हुए नीचे गिरनेवाले जल-समूह, जिनके मूल-भाग ज्वाला से ऊँचे किये गये हैं, वापस आते समय घूमने से विशाल भँवर के रूप में आकाश से गिरते हैं। रत्नाकर धुधुँआता है, जलता है, छिन्न-भिन्न होता है, आधार छोड़ कर उछलता है तथा मलय पर्वत के तट से टकराता है; परन्तु विस्तार अर्थात् अगाधता जोकि धैर्य का प्रथम चिह्न है, नहीं छोड़ता है। ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७०

राम के बाण की अग्नि से आहत होकर सागर-स्थित महासर्पों तथा तिमिओं की आँखों के फूटने का नाद प्रलय पयोदों के गर्जन की तरह तीनों लोकों को प्रतिध्वनित कर रहा है। उछलती हुई नदियों का ७१

६३. इसमें नदी में नायिकत्व का आरोप व्यंजित है। ६६. सागर की तरंगों पर ज्वाला की तरंगों का वर्णन है। ७०. अपनी समस्त ज्वाला में भी वह अपनी मर्यादा को भंग नहीं करता है।

प्रवाह, प्रलय कालीन उल्कादण्ड की भाँति आकाश से गिर रहे हैं, इन प्रवाहों के शीर्षभाग अग्नि पुंज से वर्तलीभूत हैं और इनका धूमशिखा
७२ के समान दण्डायमान जलसमूह खींचा गया है। सागर का जल-विस्तार सूख रहा है, वह धीरे-धीरे तट रूपी गोद छोड़ रहा है और इस प्रकार
७३ पग-पग (भयभीत-सा) पीछे खिसक रहा है। आग के ज्वाला-समूह में जल विलीन हो रहा है, अग्नि-समूह से उछाले गये जल में आकाश समाया जा रहा है और जल-समूह से व्याप्त आकाश में दिशाएँ लीन
७४ हो रही हैं। अग्नि से उद्दीप्त तथा चक्कर खाते हुए जल-समूह से विस्तृत सागर के भँवर, ग्रीष्मकाल के विलम्बितगति सूर्य-रथ के चक्करों की
७५ भाँति, अब शिथिल (मन्द) हो रहे हैं। धूम्र-समूह से विहीन हुआ, विस्तीर्ण मरकत मणियों की आभा से मिलित शिखाओं वाला अग्नि का ज्वाल विस्तृत समुद्र में शेवाल (सेवार) की तरह मलिन होकर
७६ फैल रहा है। राम बाण से प्रताड़ित हुआ उदधि वड़वानल की भाँति जलता है, पहाड़ों की तरह फट रहा है, बादलों के समान गर्ज रहा
७७ है और क्षुब्ध पवन की तरह आकाशतल को आक्रान्त कर रहा है। अग्निपुंज जलराशि के स्तब्ध होने पर स्तब्ध, आवर्ताकार होने पर आवर्ताकार, खण्ड-खण्ड होने पर खण्डित और क्षीण होने पर स्वतः
७८ क्षीण हो रहा है। पंक्ति में स्थित द्वीप-समूह के तट-भाग, राम बाण की ज्वाला से तप्त सागर के क्षीण होने पर स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं, और इस प्रकार वे जैसे के तैसे (वही और वैसे ही) विस्तार के
७९ होकर भी ऊँचे-ऊँचे जान पड़ते हैं। राम जिस समुद्र का नाश कर रहे हैं, उसमें पाताल दिखाई दे रहा है, जल-समूह ज्वाला की लपटों में
८० भस्म हो रहा है, पर्वत ध्वस्त हो गये हैं तथा सर्प भी नष्ट हो गये हैं।

---

७४. यह पता चलाना कठिन हो गया है कि वास्तविक स्थिति क्या है। ७५. आलोड़न-विलोड़न से क्षुब्ध सागर अब शांत होने लगा है। ७७. निर्धूम अग्नि मणियों की आभा से प्रतिबिम्बित होकर मलिन होती है। ७९,८० अनुवाद में विशेषण पदों को वाक्यों के रूप में रक्खा गया है।

सागर में जल पर लुढ़कते हुए शंखों ने विह्वल होकर क्रन्दन छोड़ दिया है और वड़वानल से प्रदीप्त तथा किंचित जले हुए सर्प समूह घूम रहे हैं। सागर के क्षीण होते जल में, किरणों के आलोक से रत्न-पर्वतों के शिखर व्यक्त हो रहे हैं और वर्तुल तरंग रूपी हाथ के आघात से, दिशा रूपी लता के बादल रूपी पत्तों के स्तबक गिरा दिये गये हैं। अग्निबाण से आहत होकर जलती हुई सटाओं से मकरसिंह का कंधा उद्दीप्त हो रहा है और जल-हस्तिओं के धवल दाँत रूपी परिघों पर आग से भीत साँप लिपटे हुए हैं। सागर में विद्रुम लताओं का प्रदेश, पर्वत की कंपित चोटियों से फिसली मणिशिलाओं से भग्न है और जल के हाथियों का झुंड किंचित जले हुए सर्पों के उगले हुए विष-पंक में मग्न होकर विह्वल हो रहा है। बड़े-बड़े भँवरों में चक्कर खाकर तट पर लगे हुए पर्वत एक दूसरे से टकरा कर ध्वस्त हो रहे हैं तथा आकाश रूपी वृक्ष से लगी हुई और काँपती हुई धुआँ-रूपी लता, आच्छादित कर दिशाओं को व्याप्त कर रही है। सागर में अग्नि से अपने पंखों की रक्षा के लिये आकाश में उड़नेवाले पर्वत खण्ड-खण्ड होकर दिशाओं में बिखर गये हैं और जिसके भयानक विवर, फटे हुए जल के मध्यभाग से उठी हुई स्फुरित रत्नों की ज्योति से परिपूर्ण है। इस सागर में, जलती हुई आग की गर्मी से नेत्र मूँद कर बड़े-बड़े घड़ियाल घूम रहे हैं और बाण के प्रहार से विच्छिन्न (वियुक्त) हुए शंख-युग्मों का परस्पर अनुराग बढ़ रहा है।

८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७

———

८१. संभवतः शीतल स्थानों की खोज में। ८६. सागर के जल के मध्यभाग से बाण द्वारा उखाड़े गये पर्वतों की रत्नज्योति इस प्रकार निकल रही है। ८७. यहाँ तक सभी पद सागर के विशेषण हैं।

षष्ठ आश्वास

सागर का प्रवेश

इसके अनन्तर धुओं से व्याप्त पाताल रूपी वन को छोड कर निकले हुए दिग्गज के समान समुद्र, बाण की ज्वाला से झुलसे हुए सर्पो तथा वृक्ष-समूह के
१ साथ बाहर निकला। मंथन के समय मन्दराचल द्वारा कठोरता से रगड़े गये तथा प्रलय काल मे पृथ्वी के उद्धार के लिये नत-उन्नत होने वाले आदि वराह के दाढों से खरोचे, राम बाण के आघात से पीड़ित
२ वक्षस्थल को सागर धारण किये हुए है। सागर गहरे घावो के विस्तार वाले, विशाल देह के सदृश दीर्घ तथा सुगन्धित चन्दन से चर्चित अपनी दोनो भुजाओं को निर्दोष भाव से ऊपर उठाये हुए, मलयपर्वत से
३ निकली दो नदियों के रूप मे धारण कर रहा है। मन्दर द्वारा मथे जाने की घबराहट मे भी जिसे नही छोड़ा था, तथा चन्द्रमा, मदिरा और अमृत जिसके सहोदर हैं ऐसे कौस्तुभ के विरह को हल्के करने वाले
४ एकावली रत्न को वह पहने हुए है। रुधिर श्राव के कारण अरुण रोमावाली वाले, घाव के कारण भारी-भारी तथा दाहिने हाथ के स्पर्श से जिसके घाव की पीडा दूर की गई है एसे बायें हाथ को सागर ने
५ कॉपती हुई गंगा पर स्थापित कर रखा है। इस रूप में सागर, अपनी नीलम आभा से मलय पर्वत की मणि शिलाओ को व्याप्त करते हुए,
६ आश्रित जनों से सुखपूर्वक सेवित तथा जानकी रूपी लता से विहित वृक्ष के तुल्य राम के सम्मुख तत्पर हुआ। बाणो के आघात से स्रवित रक्त-बिन्दु रूपी फूलो, गंगा रूपी लता द्वारा धारण किये हुए मणि-रत्नों

---

३. सागर वेदना के कारण अपनी भुजायें ऊपर उठाये है—यह भाव भी व्यंजित है। ४. कौस्तुभ मणि सागर से ले लिया गया था, पर सागर को एकावली रत्न से संतोष है। ६. वृक्ष पक्ष में आश्रितों का अर्थ पक्षियों

रूपी फलों वाले, प्रबल पवन से प्रेरित वृक्ष की भाँति सागर राम के चरणों पर गिर पड़ा। फिर काँपते हृदय से, दूसरी ओर मुख किये हुए गंगा, जिन चरणों से निकली हैं उन्हीं राम के कमल जैसे अरुण-तलवों वाले चरणों में जा गिरीं। इसके बाद जलनिधि सागर, कोमल होकर भी प्रयोजनीय, अल्प होकर भी अर्थतत्त्व की दृष्टि से प्रभूत (काफ़ी), विनीत किन्तु धैर्य से गौरवशाली तथा प्रशंसात्मक होकर भी सत्य वचन कह रहा है। ७ ८ ९

सागर की याचना

"हे राम, तुमने मुझे दुस्तरणशील बना कर गौरव प्रदान किया है, स्थिर धैर्य का मुझमें संग्रह किया है, इस प्रकार तुमने ही मेरी स्थापना की है। अब तुम्हारे प्रिय कार्य का पालन करता हुआ, मैं तुम्हारा अप्रिय कैसे करूँगा। अपने दिये हुए उपहार के समान वसंत ऋतु, विकास के कारण पराग से व्याप्त तथा मकरन्द रस से उन्मत्त भ्रमरों से मुखरित पुष्पों को प्रदान कर, वृक्षों से उन्हें वापस नहीं लेता। क्या मैं भूल सका हूँ, नहीं! किस प्रकार तुम्हारे द्वारा प्रलयकाल की अग्नि से मैं सोखा गया हूँ, तुम्हारी वराह मूर्ति ने पृथ्वी के उद्धार के समय मुझे क्षुभित कर दिया है और वामन रूप तुम्हारे चरणों से उत्पन्न त्रिपथगा (गंगा) से मैं परिपूर्ण हुआ हूँ। हे राम, सदा मुझे ही विमर्दित किया गया है। मधु दैत्य के नाश के लिये निरन्तर संचरण शील गति से और पृथ्वी के उद्धार के समय दाढ़ों के आघात से मैं ही पीड़ित किया गया हूँ, और इस अवसर पर दशमुख के वध के निमित्त शोक से क्रान्त तुम्हारे बाणों से भी मैं उत्पीड़ित हूँ। मेरे अपने अवस्था-जन्य धैर्य से भी एक अप्रिय कार्य किया गया है, क्योंकि इससे तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सौम्य श्री क्रोध से अन्य ही प्रकार की हो गई है। मेरा जल-समूह तुम्हारे इस प्रकार १० ११ १२ १३ १४

आदि से है। ११. इसी प्रकार तुमको 'मुझसे मेरे धैर्यादि को वापस नहीं लेना चाहिए। १२. इस प्रकार राम के विभिन्न अवतारों का उल्लेख किया गया है।

के सहस्त्रों देव-कार्यों के श्रम को दूर करने में समर्थ है, प्रलय के लिये रक्षित है और संसार को प्लावित करने के योग्य भी है; इसकी आप रक्षा
१५ करें। जल से भरा हुआ पाताल ही दुर्गम नहीं है, मेरे सूख जाने पर भी वह दुर्गम ही रहेगा, क्योंकि अस्त-व्यस्त हुए पाताल-तल पर जहाँ
१६ चला जायगा, वहीं वह धँस (फट) जायगा। इस कारण, चिरकाल से संकुचित, आधे कट कर ही गिरे हुए दशम· शीश जैसे दशमुख की ओर बढ़े हुए यमराज के पग के समान पर्वतो से किसी प्रकार सेतु का निर्माण
१७ किया जाय।" इसके बाद, बाण द्वारा शासित हुए बालि के समान, संसार के लिये दुस्तर सागर के शांत हो जाने पर सुग्रीव के सामने रावण
१८ पर क्रुद्ध राम की आज्ञा हुई। त्रिभुवन के प्रयोजन से आदरणीय राम की आज्ञा सुग्रीव द्वारा प्रचारित होकर वानर वीरों द्वारा इस प्रकार ग्रहण की गई, जैसे त्रैलोक्य के भार से बोझिल पृथ्वी शेषनाग के फनो से फेंकी
१९ जाकर सर्पों से ग्रहण की गई हो।

वानर सैन्य का प्रस्थान

तब राम की आज्ञा पाकर जिनके प्रथम हर्ष के कारण उठे हुए अग्रभाग उत्फुल्ल हो गये हैं, और वेग के कारण पाटियाँ पड़ गई हैं ऐसे कन्धों के बालों को ऊँचा
२० कर वानर-वीर चल पड़े। वानरों द्वारा संक्षुब्ध पृथ्वीतल के हिलने के कारण मलय पर्वत के शिखरों के गिरने से जिसमें कोलाहल व्याप्त हो गया है, ऐसा समुद्र, मानों सेतु बँधने के समय पर्वतों से आक्रान्त
२१ होने का समय आया जान, उछल रहा है। वानरों से संक्षुब्ध होने के कारण महेन्द्र पर्वत काँप रहा है, पृथ्वी-मंडल दलित होता है, केवल सदैव मेघाच्छादित होने से मलय पर्वत के वनों के फूलों की गीली धूल
२२ (रज) नहीं उड़ती है। इसके बाद, नखों के अग्रभाग में लगी है मिट्टी जिनके ऐसे वानरों की, पर्वतों को हिलानेवाली, किसी प्रकार (दैवयोग
२३ से) एक ही साथ स्पन्दित होनेवाली सेना सुदूर आकाश में उड़ी। सेना

---

१६. पानी के सूख जाने पर पाताल में कीचड़ रह जायगा—यह भाव है। १८. बालि और समुद्र दोनों के पक्षों में कहा गया है।

के उछलने से बोझिल पृथ्वी के झुक जाने के कारण, उलट कर बहने वाली नदियों के धारापथों में प्लावित हुआ समुद्र, अपनी जलराशि से पर्वतों के मूल-भाग को ढीला कर के, वानरों के उखाड़ने योग्य बना रहा है। प्रज्वलित आग के समान कपिश, निरन्तर ऊपर उड़ते हुए वानरों की सेना द्वारा उठाया जाता हुआ आकाश-मंडल जिधर देखो उधर ही धूमपुंज-सा जान पड़ता है। सुदूर आकाश में, मुख को नीचा किये हुए उड़ती हुई सेना की समुद्रतल पर चलती हुई-सी छाया, ऐसी जान पड़ती है मानों सेना ने पातालवर्ती पहाड़ों को उखाड़ने के लिए प्रस्थान किया है। वानर-सैन्य से आलोक रुद्ध हो जाने के कारण आकाश में दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है और सूर्योदय के समय भी धूप के अभाव के कारण श्याम-श्याम-सा भासित होनेवाला आकाश अस्तकालीन-सा जान पड़ रहा है। जिनकी पीठ पर तिरछी होकर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं ऐसे वानर, बड़े वेग के साथ अपनी कलकल ध्वनि से गुंजित गुफाओं वाले पर्वतों पर उतरे। शेषनाग द्वारा किसी-किसी प्रकार धारण किया हुआ पर्वत-समूह, वेग से उतरते हुए वानरों के लिये, भाराक्रान्ता पृथ्वीतल के सन्धि-बन्धन से मुक्त होकर उखाड़े जाने योग्य हो गया है। २४ २५ २६ २७ २८ २९

पर्वतोत्पाटन का आरम्भ

वक्षस्थल के बल गिरने से चट्टानें चूर हो गई हैं और कुपित सिंहों द्वारा पीड़ित होकर क्षुभित हो अपनी रक्षा के लिये वनगज बाहर निकल आये हैं, ऐसे पर्वतों को वानरों ने उखाड़ना शुरू किया। वानर सैनिकों के वक्षस्थल से उठाये गये मध्यप्रदेश वाले पर्वतों तथा जिनके वक्षस्थल पर्वतों के मध्यभाग से रगड़े गये हैं ऐसे पहाड़ जैसे|वानरों में, दोनों एक दूसरे से तुलित हो रहे हैं। वानरों की भुजाओं से उखाड़कर ३० ३१

---

२४. समुद्र का पानी नदियों के मुख में उमड़ कर पर्वतों के मूल-भाग को गीला कर रहा है। २८. आकाश से नीचे उतरते समय वानरों की पीठ पर सूर्य किरणें तिरछी ही पड़ेंगी।

ले जाते हुए पर्वतों के, प्रेरित नत और उन्नत अधोभागों के असम तल
३२ को, समुद्र प्लावित कर बार-बार भर देता है। वज्र के प्रहारों को सहन करने वाले, प्रलयकालीन पवनों से टक्कर लेनेवाले, कल्प-कल्प मे अनेक आदि वराहों ने जिनमे अपनी खुजलाहट दूर की है और जो प्रलय की प्लावित अपार जलराशि को रोकने मे समर्थ है, ऐसे पर्वत वानरों से
३३ उखाड़े जा रहे है। बरस कर बादलों से त्यक्त (आर्द्र), बाद मे शरत्काल के उपस्थित होने पर परिश्रान्त (शुष्क) पर्वत, वानर सैनिकों द्वारा पार्श्व भाग से घुमाये जाने पर पूरी तरह सूख कर खण्ड-खण्ड
३४ हो नीचे गिर रहे है। वानर वीरो के द्वारा चालित पर्वत पृथ्वीतल को चंचल, टेढ़े किये जाते हुए उसे टेढ़ी, नमित किये जाने पर नमित
३५ तथा ऊपर उछाले जाने पर उसे उत्क्षिप्त करते है। आधारभूत पृथ्वीतल के दलित होने के कारण शिथिल तथा मूलभाग मे लगे महासर्पो द्वारा खीचे गये भारी पर्वत वानरो से संचालित होकर (उत्तोलित) रसातल
३६ की ओर ही फिसल रहे है। नवीन पल्लवो के कारण सुन्दर आभावाले, बादलों के बीच के शीतल पवन से वीजित चन्दन-वृक्ष, वानरो के
३७ हाथो द्वारा उखाड़ कर फेके गये तत्क्षण ही सूख रहे है। चलायमान पवत-शिखरो पर लटके बादल गरज उठते है, उससे वर्षा-ऋतु का आगमन समझकर स्वच्छंद विचरण का समय बीता जान सहस्रदल
३८ कमल पर बैठी हंसी कॉप रही है। पकड़ कर उखाड़े गये पर्वतों के भीतर घूमते हुए और आलोड़ित हो ऊपर की ओर उछलते हुए प्रवाह, वानरों
३९ के विशाल वक्षस्थलो से गत्यवरुद्ध होकर ज़ोर का नाद कर रहे है। अर्धभाग के उखाड़ लेने पर भूमितल से जिनका संबंध विच्छिन्न (शिथिल)

३२. उखाड़ते समय पर्वत ऊँचे-नीचे होते हैं और इस कारण उनका अधोभाग भी असम हो जाता है। ३४. पर्वत पहले वर्षा से गीले हुये और बाद में शरद् ऋतु ने उन्हें शिथिल कर दिया है, और ऐसी स्थिति में जब वे भ्रमित होते हैं तो खण्ड-खण्ड होकर टूटने लगते हैं। ३८. खिन्नमना हो रही है।

हो गया है, जिनके शेषभाग को अधोस्थित सर्प खींच रहे हैं और जिन पर स्थित नदियाँ पताल वर्ती कीचड़ (दलदल) में निमग्न हो रही हैं, ऐसे पर्वतों को वानर उखाड़ रहे हैं। ४०

उत्पाटन के समय का दृश्य (वानरों द्वारा) पर्वतों के पार्श्व की ओर ले आये जाने पर शिखरों से मुक्त आकाश प्रत्यक्ष फैल जाता है और उनके ऊपर उठाये जाने पर पुनः आच्छादित होता है। ४१ बाहु-स्कन्धों पर रखकर उठाने के लिये भली भाँति धारण किये गये पर्वतों को, उनके निचले भागों के गिरने के भय से वानर अपने मुख को घुमा कर ऊँचा और टेढ़ा करते हुए (पराङ्मुख) उखाड़ रहे हैं। ४२ वानरों के हाथों द्वारा खींची जाकर छोड़ी गई तथा साँपों की दृढ़ कुण्डलियों से जकड़ी हुई चन्दन-वृक्ष की डालें टूटी हुई होने पर भी आकाश में लटक रही हैं, पृथ्वी पर गिरने नहीं पातीं। ४३ जलभरित मेघ की ध्वनि की भाँति गंभीर, वानर-बाहुबल की सूचक-सी, हठात् टूटते हुए पर्वतों की भीषण ध्वनि आकाश में उठकर बहुत देर में शान्त होती है। ४४ वानरों की भुजाओं द्वारा उठाये गये पर्वत जिस ओर टेढ़े हो जाते है, उस ओर धुलते हुए गैरिकों के कारण कुछ ताम्रवर्ण-सी पर्वतस्थ नदियों की धाराएँ भी झुक जाती हैं। ४५ वानरों द्वारा चक्रवत् भ्रमित पर्वत, सम्बद्ध नदियों के तरंगों में प्रवाहित जल रूपी वलयों (भँवरों) के बीच में इस प्रकार दिखाई दे रहे हैं, जैसे समुद्र के आवर्तों में चक्कर लगा रहे हों। ४६ मकरन्द के कारण भारी पाँखोंवाले भ्रमरों के जोड़े, पार्श्वभाग से घुमाये गये पर्वतों की वनलताओं से मुक्त तथा जिनका मधुरस का आस्वादन कर लिया गया है ऐसे रसहीन, कुसुम-स्तवकों को भी नहीं छोड़ रहे हैं। ४७ सूर्य-किरणों के स्पर्श से पर्याप्त विकसित, फैलती

---

४०. अस्त व्यस्त स्थिति में नदियाँ पाताल में गिरने लगी हैं। ४१. वानरों के पराक्रम को व्यक्त किया है; वे पर्वतों को उठाकर बगल में ले जाते हैं और पुनः ऊपर उठा लेते हैं। ४२. इस प्रयत्न में हैं कि पर्वतों के गिरने से उनके मुख पर चोट न लग जाय।

हुई सुगन्धित मकरन्द से रंगे हुए और भीतरी भागों में बैठी हुई चंचल तथा तल्लीन भ्रमरों की अंजन-रेखा से युक्त कमल-समूह, (पहाड़ी) सरोवरों के
४८ जल के उछलने पर स्वयं भी आकाश में उछल रहे हैं। जिनके शिखरों को वानरों ने अपनी भुजाओं में ग्रहण कर रक्खा है और जिनके दृढ़ता के साथ स्थित मूल हैं ऐसे पर्वत, रोष के कारण उद्विग्न सर्पों के विकट और ऊपर उठे
४९ हुए फनों से प्रेरित हो टेढ़े होकर गिर रहे हैं (चक्कर काट रहे हैं)। चंचल प्रवाहों वाली, क्षुब्ध होने के कारण मैली, पर्वतों के तिरछे होने के कारण टेढ़ी हुई नदियाँ एक दूसरे के प्रवाह में तिरछी होकर गिरती हुई क्षण
५० भर के लिये बढ़ जाती हैं। पहाड़ों की पेंदी में लगे तिरछे, उत्तान होकर सफ़ेद दिखाई देनेवाले काले-काले साँप, जिनके शरीर के निचले भाग
५१ रसातल में हिलडुल रहे हैं, चारों ओर से ऊपर खींचे जा रहे हैं। आवेग के साथ पर्वतों के उखाड़े जाने के भय से लताओं (मण्डपों) से वनदेवियाँ भाग गई हैं, सरस फूल भी गिरते हैं और पवन द्वारा बिना छुए ही
५२ वृन्तों से पल्लव झड़ रहे हैं। जिस ओर के पर्वत उखाड़े जाते हैं, उस क्षण उस ओर की पृथ्वी ध्वस्त दिखाई देती है, और जिस दिशा में पर्वतों (के उठाने) से आकाश दो पेड़ों बराबर उठाया गया, उधर दिशा रूपी लता के मेघ रूपी शिखर बढ़ते दिखाई पड़ते हैं। दोनों
५३ हाथों में धारण किये हुए, एक दूसरे से संतुलित पर्वतों को हाथों में लेकर वानरों ने आधे आकाश को ढक दिया है और आधे पृथ्वीतल
५४ को उखाड़-सा लिया है। पर्वतों के अधस्तल में लगे हुए, तल के प्रवाह से अलग होने से क्षीण नदी प्रवाहों के कारण जिनके तट स्पष्ट दिखाई देते हैं ऐसे सर्पराज के फनों से धारण किये पृथ्वीतल के अन्तिम भाग
५५ आकाश चढ़ (उड़) रहे हैं। कन्दराओं सहित पर्वत चलायमान हो रहे हैं, भय के कारण हाथी के झुंड बिना जल पिये (खाये) तितर-बितर हो गये हैं, गीले हरताल से पंकिल तथा वानरों से आक्रान्त पर्वतों के शिखर
५६ कभी टेढ़े और कभी सीधे होते हैं। वृक्षों की चोटियों से उठी, मलय

---

५० नदियों के समागम से पानी फैल गया है। ५१. वानरों द्वारा।

पर्वत से प्रवृत्त पवन के वेग द्वारा विस्तारित फूलों की धूल सूर्य किरणों को आच्छादित कर सन्ध्या की लाली की तरह आकाश में फैल रही है। ५७ पर्वतों की जड़ों के खिंचने के कारण, उसके निचले भागों में जलराशि के गिरने से बना कीचड़ लगातार ऊपर उठ रहा है, और इस कारण पर्वत पृथ्वीतल छोड़ते से नहीं अपितु बढ़ने से प्रतीत होते हैं। ५८ दर्प से ऊँचे उठे हुए विन्ध्य के मध्यभागीय तथा कम्पित पुन्नाग वृक्ष वाले सह्याद्रि के तटीय शिलाखंडों से वानर योधा लद गये हैं, अतः उन्होंने महेन्द्र से प्राप्त शिखरों को आकाश में डाल दिया तथा मलय से लाये हुए शिलाखंडों को पृथ्वी पर फेंक दिया। ५९ वानरों ने अपने कन्धों (बाहुशीर्ष) को पर्वत शिखरों, वक्षस्थलों को उनके मध्यभाग और शरीर के घावों को कन्दरा के समान मापा और (इस प्रकार पर्वतों को अपने समान ऊँचे, विस्तृत तथा गम्भीर समझकर) उन्होंने अपनी हथेलियों पर उठा लिया। ६०

उखाड़े हुए पर्वतों का चित्रण

इधर-उधर भटकने से श्रान्त हाथी कानों का संचलन तथा आँखें बन्द किये हुए हैं, और वे अपना मुँह तिरछा कर खेद से सूँड़ को हिलाते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों अपने बिछुड़े हुए साथियों का ध्यान-सा कर रहे हों। ६१ पर्वत (महेन्द्र) के तिरछे होने के कारण उस पर स्थित पेड़ ऊँचे-नीचे (अव्यवस्थित) हो गये और तलवर्ती भूमि के फटे भागों में गिर कर चूर-चूर हो रहे हैं; इसके फटने से उत्पन्न भीषण ध्वनि से भीत मेघ घूम रहे हैं और अधित्यका की वनलताएँ उलट कर भूमि पर गिर रही हैं। ६२ पर्वतों के मूल में अंकुश की तरह फनों को लगाये हुए सर्पों को, वानरों की भुजाओं द्वारा पर्वत-मूलों के उखाड़े जाने के समय, अपने विशाल शरीर के पिछले भाग के सशब्द टूटने का भान नहीं हुआ। ६३ जिसमें कुछ-कुछ पाताल दिखाई दे रहा है, जिसके अधोभाग में ऊपर

---

५६. हरताल एक पीले रंग की उपधातु है। ५७. पहाड़ों के संचलन के कारण वृक्ष भी हिल गये हैं। पहाड़ों की जड़ों के साथ कीचड़ उठा आता है। ६३. पर्वतों के भार से सर्पों की पूँछें टूट रही हैं।

खींचने से त्रस्त होकर सर्प घुस रहे हैं और जिससे पर्वत किंचित ऊपर उठाया गया है, ऐसा पृथ्वी मंडल वानरों द्वारा हरण किया जाता सा
६४ प्रतीत होता है। पर्वतों के संक्षोभ के कारण, नेत्रों के विस्तार के लिये जिनकी उपमा दी जाती है ऐसे भीत मत्स्य प्राणों को छोड रहे हैं, किन्तु पर्वतीय नदी-तट के विवरों को नहीं छोड़ रहे है। चन्द्र द्वारा विनष्ट तिमिर-समूह की भाँति, स्फटिक मणि-शिलाओ से खदेडे गये-से, मलय पर्वत के चन्दन-वन में विचरण करने वाले भैसो का कहीं अवशेष भी
६५ नहीं रह गया है। बीचोबीच से फटे हुए और मध्यभाग से उखाडी शिलाओं से आच्छादित, खण्ड-खण्ड हुए शिखरों वाले पर्वत वानरों
६६ की भुजाओं के आघात से छिन्न-भिन्न होकर गिर रहे है। जिस पर्वत का शिखर गिर कर टूट जाता है या भारायित (बोझिल) होकर विदीर्ण हो जाता है, उसको कार्य की सम्पूर्णता के अयोग्य समझ कर वानर छोड
६७ दे रहे हैं। खिन्न मुख यूथपति के विरह मे रोती हुई हथिनियों की बरौनियों मे आँसू छलक आये है और वे नये (कोमल) तृणों के आस्वादन
६८ को भी विष के समान मान रही हैं। पर्वतो के उखाड़ने से क्रुद्ध नागराज शेष के उठे हुए फनो पर स्थिति पृथ्वी ज्यो-ज्यों आन्दोलित होती है त्यो-
६९ त्यों वानरों के शरीर के भार को सहन करने मे समर्थ होती जाती है। भुजाओं की चोट से जिनकी ऊँची-नीची चट्टानें तोड़ दी गई है, ऐसे संचालित होते हुए भी स्थिर पर्वत अनपेक्षित ऊपर (सिरहट) तथा नीचे
७० (णि अम्ब) के भागो से रहित किये गये है। पर्वतों को उखाड़ते वानर योद्धाओं द्वारा आकाश ऊँचा-सा हो गया है, दिशाओ का विस्तार
७१ सीमित किया गया है तथा भूमितल अधिक प्रसारित-सा हो गया है। वानर-समूह द्वारा उखाड़े गये पर्वतो के नीचे की विवरो से ऊपर को
७२ उठा नागराज के फण-स्थिति मणियों का प्रभाजाल प्रातःकालीन धूप के

६७. सेतु-बन्धन रूप कार्य के लिये अयोग्य समझ त्याग देते हैं। ७०. वानरों द्वारा पहाड़ सुडौल करके ले जाये जा रहे हैं। ७१. पहाड़ों के हट जाने से समतल पृथ्वी अधिक विस्तृत जान पड़ती है।

समान अरुणिम जान पड़ रहा है। अपने प्रत्येक हाथ से पर्वतों को ७२
उखाड़ने वाले वानर वीरों ने, जिसका साक्षी कैलाश है ऐसे राक्षसराज
रावण की भुजाओं के महान बल को तुच्छ बना दिया। उखाड़े पहाड़ों ७३
के नीचे स्थित विवरों के मार्ग से पैठा सूर्य का प्रकाश निविड़ अन्धकार
से मिल कर सघन अँधेरे पाताल को किंचित श्वेत-श्याम धूम की भाँति
धूसर बना रहा है। स्वामी के कार्य में तत्पर वानरों ने कैलाश पर्वत को ७४
निरपेक्ष भाव से उखाड़ते हुए अपने आपको, अयशस्कर कार्य करके भी,
यशस्वी बनाया। जिनका विशाल मूल-भाग वानरों के कन्धों पर स्था- ७५
पित है ऐसे पर्वत, वेगपूर्वक दौड़ने से उत्पन्न पवन द्वारा निर्झरों के झर
जाने के कारण, भारयुक्त होकर भी हल्के हो रहे हैं। आकाश से उतरने ७६
की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से, वानर सम्पूर्ण पर्वत-समूह को उठा
कर कलकल ध्वनि करते हुए आकाश में उड़ रहे हैं। चंचल तथा ७७
उखाड़ने के कार्य में तेज़ (अभ्यस्त), वानरों के एक बार के प्रयत्न से
ही स्थिर विशाल और भारी पर्वत आकाश में पाँखों से युक्त हुए से पहुँच
जाते हैं। कपिदल द्वारा पर्वतों के उखाड़े जाने से बना हुआ विवरवाला ७८
भूमिभाग, ऊपर जाकर ऊँचे-नीचे होते पर्वत-तल से टूट कर गिरती हुई
और पहाड़ी झरने के पानी से गीली मिट्टी से पहले की तरह भर सा गया
है। उखाड़ कर ले जाये जाने वाले पहाड़ों पर स्थित वनों की, भय से ७९
उद्विग्न कुछ दूर जाकर मुड़ी हुई हरिणियों द्वारा, आकस्मिक कौतूहल के
भाव से चकित तथा उन्मुख होकर देखे जाते वन शोभित हो रहे हैं। ८०
उन्मूलित पहाड़ों की नदियाँ अपने आधार से विच्छिन्न हो उनके
उठाये जाने के साथ सीधी गिरती हैं, और इस प्रकार जब पर्वत आकाश-
मार्ग से ले जाये जाते हैं, तब उन्हीं की तरह नदियाँ भी विस्तार प्राप्त

---

७७. पर्वत उखाड़ने के लिये आकाश से उतरते समय जितना उत्साह था, उससे अधिक ले जाते समय है। ८०. पर्वत के उत्पाटनादि के विक्षोभ से मृगियाँ अकस्मात् चकित होकर देखने लगती हैं। ८१. वेग के कारण उनके प्रवाह लम्बाई में फैलते जाते हैं।

८१ करती हैं। पर्वत-श्रेणियाँ आकाश में छाई हुई हैं; उनकी घाटियों में हरिण आकस्मिक उत्पात से त्रस्त कान उठाये चकित ऊपर की ओर देख रहे हैं, उनके शिखरों से मेघों का मर्दन किया गया है, कन्दराओं में भयभीत होकर पक्षी लीन हैं और शिखरों पर सूर्य के घोड़े दौड़ रहे हैं।

८२

कपि सैन्य का प्रत्यावर्तन

अपने कन्धों पर पहाड़ों को लादे हुए दाहिने हाथ से शिखरों को थामे और बायें हाथ से उनका निचला भाग सँभाले हुए कपि समूह (सागर की ओर) लौट रहा है। प्रस्थान के समय जो आकाश पहले भुजाओं

८३ को फैलाकर (मात्र) दौड़ते वानरों के लिये पर्याप्त नहीं था, वही आकाश पहाड़ उठाये हुए वानरों को ग्रहण करने में किस प्रकार समर्थ हो सकता

८४ है! वानर सैन्य जिन पहाड़ों को ढो रहा है, उनके मूल भाग एक साथ उठाये जाने से टकरा रहे हैं और शिखरों के एक साथ क्रम से उद्गत (उदित) होने के कारण नदियों के प्रवाह परस्पर टकरा कर नीचे नहीं

८५ गिरने पा रहे हैं। महीधरों के भार से बोझिल वानर, पहले उखाड़े गये पहाड़ों के, सागर जैसे विस्तृत विकट गर्तों को प्रशंसा (अथवा आश्चर्य)

८६ के भाव से देखते हुए, विलम्ब से लाँघ रहे हैं। वेग से उठाये पर्वतों के द्वारा विस्तारित तथा बढ़ती हुई महानदियों की धाराएँ, क्षण भर के लिये मेघ जिनके तट प्रतीत होते हैं, आकाश मे प्रवाहित-सी जान पड़ती

८७ हैं। कपियों द्वारा, आकाश-मण्डल में लीन होते पर्वतो के कम्पित होने पर भी पर्वताकार हाथी अपने विशाल दाँतों से पहाड़ों को पकड़े हुए उनको

८८ छोड़ते नहीं हैं। पर्वतों के अन्तराल में जिनके कृश मध्यभाग दिखाई देते हैं और (पर्वतों के आघात से) जिनके, मेघ रूपी पयोधर काँपते हैं ऐसी दिशा नायिकाएँ कुसुम के सुरभित पराग को सूँघ कर निमीलित नेत्रों वाली (आँख झपक रही हैं) हो रही हैं। वानर हथेली पर रखे हुए

८९ पर्वतों को दूसरे हाथ से स्थिर कर रहे हैं, उन पर नखों से विदीर्ण सर्प

---

८८. मूल के अनुसार पहाड़ों में दाँत लगाये हुए अलग नहीं होते।

काँप रहे हैं और वेग के कारण शिखर विलग हो रहे हैं। नभमण्डल में वेग से उड़ते वानरों द्वारा ले जाये जाते हुए पर्वत शिखरों से स्खलित महानदियों की धाराएँ क्रमशः पीछे आने वाले शैल शिखरों पर प्रवाहित होती हुई उन पर निर्झरों-सी लगती हैं। पर्वतों को लेकर वानर उड़े जा रहे हैं; गति की तेज़ी से उनके वृक्ष उखड़ गये हैं, उनसे तट-खण्डों जैसे बड़े आकारवाले मेघखंड गिर रहे हैं और प्रखर ताप से पीड़ित होकर (घाटियों में रहनेवाले) हाथियों ने उनकी कन्दराओं में आश्रय लिया है। आकाश में वेग से उड़ते वानरों से ले जाये जाते पहाड़ों के शिखरों से आच्छादित, तथा जिसका आतप दूर हो गया है ऐसे मलय पर्वत का ऊपरी भाग (तल) पर्वतों के छाया-मार्ग के पीछे लगा शीघ्रता से दौड़ता-सा जान पड़ता है। (वानर सेना कार्य में इस तत्परता से व्यस्त है कि) सुदूर आकाश से जिन पर्वतों को जिन वानरों ने देखा वे उन्हें स्थान पर नहीं मिले, जिनको उखाड़ने का संकल्प किया, उन्हें वे नहीं उखाड़ सके और जिन्हें जिन वानरों ने उखाड़ा उन्हें वे समुद्र तट पर नहीं ले जा सके। समुद्र से लगा हुआ वानरों का गति-पथ, संक्षोभ के कारण टूटे वृक्षों के खंडों से व्याप्त तथा उखाड़ कर पर फैलाये हुए पर्वतों से ऊबड़-खाबड़, दूसरे सेतु के समान प्रतीत होता है। अनन्तर वेग के कारण सागर-तट की ओर कुछ दूर (आगे) निकल कर वापस लौटा वानर-सैन्य पर्वत लिये हुए, प्रसन्नता से विकसित नेत्रों के साथ तट-भूमि पर राम के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६

---

९०. वानरों के हाथों के नाख़ून से साँप विदीर्ण हो रहे हैं और वानर तेज़ी से उड़ रहे हैं, इस कारण शिखर टूट रहे हैं। ९३. ऊपर पर्वतों की उड़ती हुई शृंखला और नीचे दौड़ती हुई छाया के प्रति कवि की यह कल्पना है। ९४. सब इतनी शीघ्रता में हैं कि एक दूसरे से पहले कार्य समाप्त कर लेते हैं, जिस कार्य को एक करना चाहता है, उसको उसके पहले दूसरा ही कर डालता है।

सप्तम आश्वास

सेतु-निर्माण का प्रारम्भ

पर्वतों को लाने के बाद, अपने पराक्रम की कसौटी के तुल्य, रावण के प्रताप को नष्ट करने के लिए आयोजित स्कन्धावार के समान तथा राम के शाश्वत यश के प्रतीक के से सेतु-पथ का वानर निर्माण करने

१ लगे। फिर पर्वतों को तट पर कुछ क्षणों के लिये रख कर वानरों ने, आदि वराह की भुजाओं द्वारा प्रलय काल में उठाये हुए पृथ्वी के टूटे

२ खण्डों जैसे पहाड़ों को समुद्र में छोड़ना आरम्भ किया। दूर से संबंध होने के समय कम्पित, क्षण मात्र में गिरने के समय विलुलित (छिन्न-भिन्न) तथा डूब जाने पर तट को प्लावित करता हुआ सागर, इस प्रकार पर्वतों के पात के समय उनसे आच्छादित-सा होकर दिखाई नहीं देता

३ है। जिसमें आघात से मृत होकर जलचर उत्तान पड़े हैं और कल्लोल के आघात से खिंचे हुए वन भँवरों में चक्कर खा रहे हैं, ऐसा उछलता

४ हुआ सागर का जल पुनः अपनी परिधि में आकर मलिन हो गया है। गिरे हुए पहाड़ों से उछाले जल में पर्वत अदृश्य होकर गिर रहे हैं, इस प्रकार का आकाश तथा सागर का अन्तराल प्रदेश, पुनः जिनके गिरने का भान नहीं होता ऐसे पर्वत-समूह से युक्त होने के कारण

५ पर्वतों से बना हुआ दिखाई देता है। वानरों ने पर्वतों को तौला, सागर को कम्पित किया और प्रतिपक्षी (रावण) के हृदय में भय पैदा किया; महापुरुषों का हार्दिक अभिप्राय ही नहीं वरन् कार्यारम्भ भी

६ महत्वपूर्ण होता है। समुद्र के तट पर पड़े जो पर्वत दिखाई देते हैं, उनसे

---

१. अग्गक्खन्ध का अर्थ सेना का अग्र भाग है। ५. सागर की उत्ताल तरंगों में गिरते हुए पर्वत अदृश्य से हैं, पर सारा आकाश से सागर तक का अन्तराल उनसे भर गया है।

जान पड़ता है कि समुद्र बँध जायगा, किन्तु सागर के पानी में गिरते हुए पर्वत कहाँ चले जाते हैं, पता नहीं चलता। सम्पूर्ण महीमण्डल के समान विशाल, अपने सहस्र शिखरों से सूर्य रथ के मार्ग को रोकनेवाला पर्वत उत्तुंग होकर भी तिमिंगिल के मुख में पड़ कर तृण के समान खो जाता है। पर्वत-शिखरों से गगनांगण की ओर उछाला गया पानी ऊपर जाकर फैलता है फिर गिरते समय वह अपने जलबिन्दुओं में रत्नों के समान दिखाई देता है, और जान पड़ता है नक्षत्र-समूह गिर रहा हो। वानरों द्वारा वेग से प्रेरित, अपने विशाल चक्कर खाते निर्झरों से घिरे पर्वत सागर में बिना पहुँचे ही भँवर में चक्कर लगाते हुए जान पड़ते हैं। वानरों के निकल जाने से जिनके शिखर खाली हो गये हैं, क्षण मात्र के लिये योजित फिर समुद्र-तल पर फेंके गये पर्वत सागर में बाद में गिरते हैं, पहले आकाश के बीच में दूसरे पर्वतों से मिलते हैं। पाताल तक गहरे, विस्तृत, ऊपर-नीचे भागों के कारण विषम तथा विकट और वायु से भरे हुए, समुद्र के वेग से प्रेरित पर्वतों के प्रवेश-मार्ग शब्दायमान है। आकाश में निरन्तर एक पर दूसरे के गिरने के कारण टूटे, वानरों द्वारा उखाड़ कर फेंके गये सहस्रों पर्वत वज्र के भय से उद्विग्न दक्षिण समुद्र में गिर रहे हैं। जिनके शिखरों के शिलातल टूट कर नष्ट हो गये हैं, और जो अपने वृक्षों से झरते फूलों के पराग से धूसरित हैं, ऐसे पर्वत समुद्र में पहले गिरते हैं; वायु के आघात से उछलती हुई महानदियों की धाराएँ बाद में गिरती हैं। निश्चल भाव से स्थित वानरों द्वारा, निर्मल जल में जिनकी गति अलग-अलग तिरछी जान पड़ती है, ऐसे देखे गये पर्वत बहुत देर बाद जल में विलीन होते हैं। फेन रूपी फूलों के अन्दर से निकले, केसर जैसे आकार के चंचल रश्मियोंवाले, जल

७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५

---

९. शिखरों से जल के साथ मानो रत्न-समूह भी उछाला गया है। ११. दूसरे वानरों द्वारा फेंके गये पर्वतों से बीच में टकरा जाते हैं; वानर एक दूसरे की अपेक्षा अधिक वेग से फेंक रहे हैं। १२. सागर पर पर्वतों द्वारा सेतु-निर्माण में काफ़ी शब्द हो रहा है।

पर तैरते हुए रत्न, (पर्वतों के आघात से) समुद्र के मूल के क्षुभित
१६ होने की सूचना दे रहे हैं। सागर वेला की भाँति पृथ्वी को कँपा रहा है,
समय (वेलोलंघन) जान कर पर्वत-समूह को चूर-चूर कर रहा है, भय के
समान आकाश को छोड़ रहा है, और मर्यादा के स्वभाव की तरह
१७ पाताल को छोड़ रहा है। सागर में पर्वत-तिरछे होकर गिर रहे हैं; उन
पर वृक्षों की जटाएँ चंचल शाखाओं के बीच लटक रही हैं, शिखरों
पर लटके मेघ उनके अवनत होने से मूल की ओर से आकाश की ओर
१८ उड़ रहे हैं और उनके निर्झर अधोमुख होने से आन्दोलित हो रहे हैं।
अस्तव्यस्त रूप से गिरते हुए पर्वतों द्वारा उछाले जल-वेग से उत्पन्न
अन्धकार में तिरोहित होकर गिरते पर्वतों का पता क्षुब्ध सागर की
१६ प्रतिध्वनि से मिलता है। पर्वतों के फेंकने से उच्छ्वासित कंधोंवाले वानर
पीछे हट रहे हैं, उनकी केसर-सटाएँ (अयाल) उछलते जल से कुछ-
कुछ धुल गई हैं और उनके मुख पर लगी गैरिक आदि धातुएँ पाताल
२० से उठी उमस से निकले हुए पसीने से पंकिल हो गई हैं। वानरों द्वारा
ऊपर से फेंके गये पर्वत, झरनों के झर जाने के कारण हल्के होने पर
भी वायु से कम्पित वृक्षों से बोझिल शिरोभाग की ओर से सागर में गिर
२१ रहे हैं। डूबते हुए पर्वतों के हरिताल से पीले मार्ग में जलराशि के फट
कर मिल जाने से फूल एकत्र हो रहे हैं और हाथियों द्वारा तोड़े वृक्षों के
२२ मद से सुगन्धित खंड तैर रहे हैं। किंचित पानी में डूबते पर्वत शिखर
से गिर कर किसी (एक) भँवर में चक्कर खाते हुए जंगली भैंसे क्रोध से
२३ लाल-आँखों को इधर-उधर फेरते डूब रहे हैं। डूबते हुए पर्वतों के कारण

---

१६. संक्षोभ के कारण रत्न की किरणें काँप रही हैं। १७. (मूल में) प्रतिध्वनि कहती रहती है (साहइ)। २०. भार को त्याग कर हल्के हो जाने से कन्धे उच्छ्वासित जान पड़ते हैं। २१. वानर पर्वतों को उलटा फेंक रहे हैं, शिखरों के हल्के हो जाने से सम्भव था कि वे फिर सीधे हो जाते। २३. ध्रुव से स्थिर लोचन भी अर्थ लिया जा सकता है।

ऊँची-नीची तरंगों द्वारा हरण किये जाने से व्याकुल, फिर भी एक दूसरे के अवलोकन से सुखित हरिण एक दूसरे से अलग होकर मिलते हैं और मिलकर फिर अलग हो जाते हैं। अपनी दाढ़ों से कुम्भस्थलों को फोड़ २४ और अपनी मुख रूपी कन्दराओं को मुक्ता मिश्रित रक्त से भर, पहाड़ी सिंह समुद्री हाथियों की सूँड़ों से दृढ़तापूर्वक खींचे जाते हुए (विवश) गरज रहे हैं। गिरते पहाड़ों के संभ्रम से प्रचंड क्रुद्ध होकर बनैले हाथियों २५ ने जल-हस्तियों को उलट दिया है परन्तु बीच में आ पड़े घड़ियालों द्वारा निर्दयता के साथ अंगों के विदीर्ण किये जाने के कारण व्याकुल होकर वे सागर में गिर (डूब) रहे हैं। किंचित डूबे पर्वत के कन्दरा- २६ मुख में घुसती हुई आवेष्ठन में समर्थ लहरें, वन-लताओं के समान, प्रवाल रूपी पल्लवों के कम्पन के साथ वृक्षों पर फैल गईं। एक साथ २७ पृथ्वी से उखाड़े जाकर सागर में गिराये जाते हुए पर्वत (समूह) पाताल को शब्दायमान करते हुए लगातार उघाड़ रहे हैं। २८

निर्माण के समय सागर का दृश्य

वेग से गिरने के कारण चक्कर काटते हुए, कल-कल ध्वनि के साथ घूमती हुई निर्झरावली से आवेष्ठित, चंचल मेघों से आच्छादित और वक्र (वलित) लताओं से आलिंगित पहाड़ (सागर में) गिर रहे २९ हैं। अपनी भुजाओं द्वारा फेंक कर जिन्होंने पर्वत को खण्डित कर दिया है, आकाश में उछले हुए जल से आवृत और कम्पित आयालों वाले वानर एक-एक के क्रम से आकर निकल जाते ३० हैं। बार-बार पर्वतों के आघात से उद्भिन्न समुद्र-जल से खाली और भरा हुआ आकाश-प्रदेश पाताल के समान और विकट उदरवाला ३१ पाताल आकाशमण्डल के समान प्रतीत होता है। संक्षोभ के कारण

---

२४. तरंगों के द्वारा जल-वेग में पड़ कर इस प्रकार हरिण मिलते-बिछुड़ते हैं। २८. पाताल दिखाई दे जाता है। ३१. आकाश पाताल समान हो रहे हैं, ऐसा भाव है।

भूमि विदीर्ण हो गई है और घाटियों से जल बह जाने के फलस्वरूप कमल-वन सूख गये हैं तथा व्याकुल हाथियों ने जिन पर आश्रय लिया है ऐसे शिखर टूट रहे हैं; इस तरह के घाटियों और शिखरों वाले पर्वत
३२ सागर में गिर रहे हैं। सागर गिरि आघात से आहत होकर भीषण ध्वनि करता है, तट को प्लावित करता है, ऊँचे-नीचे स्थलों में गिर कर चक्कर लगाता है; इस प्रकार अमृत निकालने के अन्तर को छोड़कर मंथन
३३ के समय का हो रहा। पर्वत उखाड़ कर गिराये जा रहे हैं, गर्जन करते हुए सागर के विषय में शंका है कि बाँधा जा सकेगा या नहीं; इस प्रकार
३४ लंकापुरी जाने का उपाय भी दारुण है, फिर जाने की बात ही क्या? पतन-वेग के कारण चूर होकर प्रसृत, आकाश में चक्कर काटती, चमचमाती सुवर्ण शिलाओं से आवेष्ठित और फूलों के पराग से ढके हुए,
३५ वानरों द्वारा उखाड़े पर्वत सागर में लीन हो रहे हैं। जिनके वृक्ष पवन-वेग से बढ़ा दिये गये हैं और निर्झर कन्दराओं से उत्थित पवन से उत्क्षिप्त हैं, ऐसे पर्वत सागर में गिर रहे हैं; गिरने के समय कपियो का कलकल
३६ बढ़ रहा है तथा बढ़ते हुए बड़वानल से सागर उमड़ रहा है। महानदियों के मत्स्य सुदूर आकाश से समुद्र मे गिर कर अपेय जल के कारण तट की ओर लौटते हैं, वहाँ पिसे हुए हरिचन्दन से मिश्रित जल को पा प्रसन्न हो वेग से चारों ओर फैल जाते हैं, फिर अच्छा जल न
३७ पाकर उदधि का खारी (विरस) जल पीते हैं। पर्वत समुद्र में गिर कर नष्ट हो रहे हैं; वे सर्पों के फनों की मणियो की प्रभा से किंचित ताम्रवर्ण के हैं, संघर्षण के कारण उनके विषम अधोभाग टूट रहे हैं, वे वृक्ष
३८ समूह से हरे लगते हैं और उनकी कन्दराएँ सूर्य प्रकाश से रहित हैं। पर्वत आघात से समुद्र-जल के उछलने पर वेग से संचलित तथा अकस्मात् असंतुलित हुए पृथ्वीमण्डल को, शेषनाग तिरछे होकर धारण कर रहा

३५. पल्हत्थ का अर्थ फेंकना होता है। ३६. मूल में वलइ है, जिसका अर्थ वलय की तरह घूमना है। ३७. मत्स्य नदियों के साथ पहले

है। पर्वतों ने वज्र के भय का, वसुमती ने आदि वराह के खुर से प्रताड़ित ३९
होने का तथा समुद्र ने मथन की आकुलता का एक साथ स्मरण और
विस्मरण किया। मलय पर्वत के लताकुंजों को धारण करता हुआ, अपने ४०
मथित होने के दुःख का स्मरण करता हुआ सागर, रावण के अपराध
से आपत्ति में पड़ने के कारण, पर्वत-शिखरों से आहत होकर कराह रहा
है। सागर की वर्तुल तंरगों में पहाड़ों के विलीन हो जाने पर, आघात ४१
से चूर प्रवालों से लाल-लाल-सा, गिरकर चूर्ण होने पर उठा हुआ
धातु-रज की भाँति शीकर (जल-विन्दुओं) रज का समूह ऊपर फैल रहा
है। गिरि-शिखरों से संक्षुब्ध कल्लोल युक्त तटवाला, गले धातुओं से ४२
शोभित ताम्र-सा कान्तिमान, पिसे चन्दन तथा अन्य वनस्पतियों के रस
से स्वाभाविक जलराशि की अपेक्षा कुछ भिन्न रंग का समुद्र का जल
पर्वतों की कन्दरा आदि गहरे स्थानों में प्रवेश करता हुआ घोष कर
रहा है। पहाड़ों से खिसक कर सागर-जल में गिरते, जिनकी पत्तियाँ ४३
आघात से उछाले पानी में मिली हुई हैं, ऐसे हल्के होने के कारण तैरते
वृक्ष, बिना खींचे ही आकाशतल में लग रहे हैं। राम के अनुराग के ४४
कारण रावण के प्रति कुपित, जिन्होंने अपने उज्ज्वल दाँतों से अपने
ओठों को काट लिया है तथा आकाश में अपने गमन वेग से मेघों को
फैला कर छिन्न-भिन्न कर दिया है, और जिनसे अप्सराएँ भयभीत हो
गयीं हैं, ऐसे पर्वतधारी कपियों से सागर का जल छिन्न-भिन्न किया जा
रहा है। जिसकी कन्दराएँ वायु से पूरित हैं, शिला-निवेश पवनसुत से ४५
आक्रान्त होकर ढीला हो गया है तथा चोटियों पर स्थित निर्झरों में इन्द्र-
चाप बन गये हैं ऐसा महेन्द्र पर्वत का खण्ड समुद्र में गिर गया है। ४६
गगन में शैलाघात द्वारा उछाले जल से पूरित बादलों के गर्जन से व्याप्त,
कन्दल नामक वृक्षों तथा लता-कुंजों को धारण करता हुआ पर्वत शिखर

सागर में गिरते हैं, लौट कर तह की ओर आते हैं और बाद में
फिर सागर में फैल जाते हैं। ४४. वृक्ष तरंगों से उछाले जाते हैं।
४७. छिन्न-भिन्न होकर ही गिरता है।

४७ गिर कर क्या सैकड़ों टुकड़ों में छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता ? गिरि आघात से जल के ऊपर आये मकरों द्वारा दारुण रूप से काटे गये, चमरी गायों की पूँछों के निचले बाल (भाग) घावों के बहते रक्त के कारण फेन से मिले
४८ होकर भी समुद्र में (स्पष्ट) दिखाई देते हैं। सिद्ध लोग भय के कारण संभोगप्रक्रिया से गीले अधोभाग वाले लतागृह को छोड़ रहे हैं, पहाड़ी नदियों का जल इधर-उधर बिखर रहा है और समुद्र का पानी चारों
४९ ओर फैल रहा है। यूथपति ने जल-सिंह के आक्रमण को रोक लिया है, पर अपने विकल-कलभों को ऊपर उठाये हाथियों का यूथ पहाड़ों
५० को ऊपर उठाये, विकट भँवर के मुँह में पड़ा चक्कर खा रहा है। सामने गिरे गिरि शिखरों के आघात से आन्दोलित, पवन द्वारा तरंगों में चंचल बनाई गई नदियों की ओर जब तक राम की दृष्टि पड़ती है, तभी तक
५१ वे किसी प्रकार जानकी के विरह से पीड़ित होते हैं। जिसमें विद्रुम जाल कुछ झुलस गये हैं, शराघात की ज्वाला से शंख काले-काले हो गये हैं और जो पाताल-तल में लगे राम-बाणों की पाखों को ऊपर ले आया
५२ है, ऐसा जल-समूह सागर के तल से ऊपर उठ रहा है। पाताल में भयभीत जलचर निश्चेष्ट हो पड़े हैं, अपने ही भार से टूटे पंखों वाले पर्वत लोट रहे हैं तथा क्रुद्ध सर्प दौड़ रहे हैं; इस प्रकार पहाड़ों के आघात
५३ से जिसकी जलराशि फट गई है, ऐसा पाताल साफ़ दिखाई दे रहा है। संक्षुब्ध सागर की ओर मुख किये हुए, तिरछे पर्वतों से बिछल कर फिसले हाथी जल-हस्तिओं पर टूटते और उनके द्वारा प्रत्याक्रान्त होते हुए जल
५४ में गिर रहे हैं।

वानरों द्वारा फेंके गये विशाल मध्य-भागोंवाले पर्वत उतनी जल्दी रसातल के मूल में नहीं पहुँचते, जितनी जल्दी अपने गिरने से उछाले

---

४९. पहाड़ों के गिरने से पानी बिखर रहा है। ५१. या तभी तक जानकी उनके हृदय से दूर होती हैं। ऊपर के अर्थ में राम की शत्रु-नाश संबंधी प्रयत्न की व्यस्तता की व्यंजना है। ५२. जल पाताल से उछल कर ऊपर आते समय इन चीज़ों को भी ऊपर ले आया है।

सागर में गिरते हुए पर्वतों का चित्रण

गये सुदूर आकाश में पहुँच कर नीचे गिरे जल के भार से प्रेरित होकर। जिनमें गिरि आघात से उत्तान और ५५ मूर्च्छित महामत्स्य हैं, ऐसे तटवर्ती पर्वतों से प्रतिहत होकर उन्हीं के वृक्षों को उखाड़नेवाले समुद्र के जल-कल्लोल, आकाश में बड़ी दूर तक ऊपर उठते हैं। जल में आधे ५६ डूब चुके, अस्थिर हाथियों के झुण्ड के भार से बोझिल शिखर के कारण विह्वल पर्वत की कन्दरा से निकल कर आकाश मार्ग से ऊपर को जाते हुए सुर-मिथुन, उस डूबते पर्वत के जीव जैसे जान पड़ते हैं। ५७ भुजाओं ने पर्वतों को, पर्वतों ने वृक्षों को और वृक्षों ने मेघों को धारण किया, यह दृश्य देख कर यह सन्देह होता है कि वानर समुद्र में सेतु बाँध रहे हैं या आकाश को माप रहे हैं। जिनसे वेग के साथ एक-एक ५८ पर्वत गिर रहे हैं और मणि-शिलाएँ तिरछी तथा कम्पित होकर गिर रही है, ऐसे पर्वत समूह सागर में गिर रहे हैं। उनसे उछाले जल के तटाघात से कम्पित पृथ्वी के आघात, जिसमें पृथ्वी के भार से बोझिल महासर्प के फनों की संपुट खुल गई है, ऐसे रसातल को पीड़ित कर रहे हैं। चूर्ण किये गये मैनसिल (धातु) युक्त तटवाले पर्वत के स्पन्दन से अरुणिम सागर का जल जो नष्ट हो रहा है, वह अभिमानी निशाचरपति रावण द्वारा बलपूर्वक ले जाई जाती हुई जानकी के अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखने का दारुण फल है। पर्वत शिलाओं से प्रताड़ित रत्नों में श्रेष्ठ ५९ मणियाँ समुद्र के अधस्तल में चूर-चूर हो रही हैं, और बादलों के घेरे से हीन आकाश-मण्डल (गगनांगण) पर्वतीय वनराजि के काँचीदाम जैसी हंस-पंक्तियों से भर रहा है। पाताल शब्दायमान हो रहा है, पृथ्वी ६० फट रही है, बादल छिन्न भिन्न हो रहे हैं, आकाश में वानर हट रहे हैं, पर्वत गिराये जा रहे हैं, पर्वतों के आघात से आहत होकर सागर पीड़ा से देर तक चक्कर-सा खाता है। आघात से फूटी सीपियों के मोती विद्रुम

---

५८. वानरों की भुजाओं से यहाँ अभिप्राय है। ५९. रावण द्वारा सीता के अपहरण को सागर ने चुपचाप देखा है।

जालों में लग कर समुद्र में गिरे वृक्षों की शाखाओं में लगे पल्लव युक्त
६१ फूल जैसे जान पड़ते हैं। क्रोधित हाथियों से कुचले गये, निरन्तर मधुर-
गन्ध रूपी यौवन जिनसे निकलता है, ऐसी अप्सराओं सहित डूबे पर्वतों
६२ के वनों की, कुसुम-पराग समूह रूपी ध्वज, सूचना-सी देता है। वानर
ला रहे हैं, गगनांगण सामर्थ्य प्रकट करता है,सागर अपने हाथों अर्पित
करता है और पृथ्वी भी पर्वतों के देने में मुक्तहस्त है; फिर भी पाताल का
६३ भीषण उदर पूर्ण नहीं हो रहा है। जिसमें किंचित डूबे गिरि-शिखरों की
बावलियों के कीचड़ में जंगली भैंसे आनन्दित हैं, वृक्षों से प्रवाल जाल
मिल रहे हैं, स्थल जीवों से जलजीव मिल रहे हैं, ऐसे घड़ियालों से भरे
६४ समुद्र को वानर क्षुब्ध कर रहे हैं। ऐसे सागर में बनैले हाथी की गंध पाकर
जल-सिंह क्रुद्ध होकर जँभाई लेता हुआ उठ रहा है; सामने गिरते पर्वत के
६५ भय से त्रस्त होकर हटते भुजगेन्द्र के वेग से भँवर उठ रहे हैं। इस सागर
में डूबते हुए वन के सूखे पीले-पीले पत्ते बिखरे पड़े हैं और भंग किये हुए
मदन वृक्ष से निकले कसैले रस से मत्स्य मतवाले और व्याकुल होकर
६६ चक्कर काट रहे हैं। वानरों से क्षुब्ध सागर में पर्वतों के भार से प्रेरित
(कंपित) पल्लवों के दल से अल्पकाय लता-जाल चंचल हो रहा है और
६७ वृक्षों के फूल विषधर रूपी नवीन आतप से मुर्झा कर काले हो रहे हैं।
भँवरों में चक्कर खाते हुए गिरि-शिखरों के निर्झरों के जल-कणों के
उछलने से आकाश में अन्धकार फैल रहा है और पर्वतीय वनों की
औषधियों की गन्ध से पीड़ित होकर व्याकुल सर्प पाताल से उछल
६८ कर ऊपर आ रहे हैं, ऐसे सागर को वानर क्षुब्ध कर रहे हैं। आवर्तों
में चक्कर काटते पर्वतों के मध्यभागों की प्रभा से घूमते हुए-से, किन्तु

---

६१. पाताल, पृथ्वी तथा बादलों की स्थिति पहाड़ों के गिरने के कारण है, और वानर दूसरे वानरों द्वारा गिराये पर्वत से बचने के लिये हटते हैं। फूटी सीपियों के मध्य से निकले मोती श्वेत और बड़े भी हैं। ६३. भरता नहीं है। ६४-६६ तक समुद्र के विशेषण पद चलते हैं।

पाताल से निकले सर्पों की फणि-मणियों की प्रभा से पृथक् प्रतीत होते
समुद्र को वानर क्षुब्ध कर रहे हैं। निरन्तर गिरते हुए, अन्तरहीन ६६
आयाम (विस्तार और दीर्घता) से मिलित पर्वतों द्वारा घटित सेतुपथ
आकाश में तो निर्मित (सा), पर सागर में पड़ कर विलीन (सा) हो
रहा है। इसके बाद लंकानगरी के प्रति संभाव्यमान अनर्थ की चेष्टा ७०
में सहायक सेतुपथ के नष्ट होने के समान (साथ) उत्साह के समाप्त
हो जाने पर वानर पर्वतों को अल्प परिश्रम के साथ लाने में प्रवृत्त हुए। ७१

---

६६. मिज्जन्त का अर्थ समाना और अटना तथा निश्चय करना
कोष में दिया गया है।

अष्टम आश्वास

अनन्तर जिन्होंने अपने शिखरस्थ निर्झरों से देव-

कपि सैन्य का कार्य-विरत होना तथा समुद्र का विश्राम

विमानों को ध्वजवस्त्रों को धोया है तथा अपने विस्तार से आकाश-तल को आच्छादित किया है, ऐसे पर्वत भी (जब) समुद्र में फेंके जाने पर विलुप्त होने लगे,

१ तब जिनका भारीपन केवल उतराने के समय क्षण भर के लिये लक्षित हुआ है और जिनके तट-भाग कम्पित तथा उलटे किये करतलों से गिर रहे हैं, ऐसे पर्वत वानरों द्वारा समुद्र-

२ तट पर ही फेंक दिये गये । गिरि-पात जन्य संक्षोभ से मुक्त समुद्र का जल-समूह, जिसे पहले आने (लौट आने) का अवसर नहीं मिला था, आन्दोलन के मन्द हो जाने से क्षीण और शांत होकर लौट आया

३ (गया हुआ लौट आया) । पर्वतों के संक्षोभ से कम्पायमान तथा प्लावित होने के बाद पुनः जल से आपूरित सागर (अपनी मर्यादा में) फिर वापस लौट रहा है; यह सागर पहले पर्वतों के आघात से खंडित हुआ था, पर बाद में भँवरों से युक्त हो गया और उसके इन भँवरो में छिन्न-भिन्न पर्वत

४ चक्कर लगा रहे हैं । जिसकी कल-कल ध्वनि शान्त (भंग) हो गई है और जिसमें भली-भाँति शान्त (यथोचित) हो जाने पर कुछ-कुछ भँवर उठ रहे हैं, ऐसा समुद्र का जल क्षण भर के लिये भीषण आकार धारण

५ कर पहले जैसा स्थिर दिखाई देता है । समुद्र के शांत होते जल में मुक्ता-समूह से फूल मिल रहे हैं, आवर्तों में मरकत मणियाँ और टूटे पत्ते साथ-साथ चक्कर लगा रहे हैं (भरे हैं) विद्रुम के साथ वृक्षों के नये किस-

६ लय और शंखों के साथ श्वेत कमल मिल जुल गये हैं। संक्षोभ के समय

---

२. वानर इस स्थिति पर क्रुद्ध हैं । ३. समुद्र धीरे-धीरे शांत हो चला । ६. नष्ट होती दिखाई देती है—मूल के अनुसार ।

चक्कर काट कर नीचे गये किन्तु शांत होने पर उतराते फूलों से युक्त, डूबते सूर्य की तरह रक्ताभ समुद्र-तल पर प्रसृत गैरिक पंक की आभा धीरे-धीरे विलीन होती दिखाई दे रही है। ७ बनैले हाथियों की गन्ध पाकर ऊपर आये हुए जल हाथी, आतप से पीड़ित हो तथा अपनी सूड़ों के जल-कणों से आर्द्र तथा शीतल मुखमंडल होकर फिर सागर में प्रवेश करते हैं। ८ टूटे हुए वृक्षों से मलिन तथा कसैले रस से भिन्न रंग के भासित होते फेनवाले नदियों के मुहाने तोरवर्ती प्रत्यावर्तित धूल से धूसरित (मलिन) हो गये हैं। ९ आन्दोलित सागर द्वारा इधर-उधर फेंके गये मलय पर्वत के पार्श्व भाग के खंड महेन्द्राचल के तटों में और हाथियों के समूह को कुचलने वाले महेन्द्र पर्वत के तट-खंड मलयाचल के तटों में जा लगे हैं। १० जिनके ऊपरी भाग स्थिर तथा लौटते जल से तरंगायित हुए हैं और जहाँ अविरल रूप से मोती आ लगे हैं, ऐसे विस्तृत और धवल समुद्र-तट वासुकि नाग के केचुल जैसे भासित हो रहे हैं। ११ पर्वत के आघात से उछाला हुआ, आश्चर्य से देखा जाता हुआ तथा आकाश-मार्ग से वापस नीचे गिरता हुआ जल-समूह आन्दोलित होकर शान्त हुए सागर को क्षुब्ध कर रहा है। १२

सुग्रीव की चिन्ता और नल का वीर-दर्प

इसके पश्चात्, नल की ओर दृष्टि डालते हुए, तिरछे करके आयत रूप से स्थित बायें हाथ पर अपनी ठुड्ढी का भार आरोपित कर, खंडित मणि-शिला पर बैठे सुग्रीव ने कहा—"वानर सैनिक थककर उद्वेजित हो गये हैं, महीमण्डल में विरल भाव से पर्वत दूर-दूर शेष रह गये हैं, फिर भी सेतुपथ बनता नहीं दिखाई पड़ता! कहीं राम १३

---

९. सागर का जल नदी के मुहाने में चढ़कर फिर उतर जाता है, और इस प्रकार वह उसे गंदा कर रहा है। ११. स्थिर तरंगों के लौट आने से तट-प्रदेश पर तरंगों की रेखायें बन गई हैं। १३. तिस्र का अर्थ कोश में दिया गया है—जहाँ तीन रास्ते मिलते हों।

१४ का विशाल धनुष फिर न चढ़ाया जाय? समुद्र ने मदिरा, बालचन्द्र, अमृत, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि तथा पारिजात वृक्ष आदि प्रदान किये हैं; फिर क्या कारण है कि कह कर भी इनकी (प्रदत्त) अपेक्षा अल्प सेतु-
१५ बन्ध नहीं दिया? सागर के पाताल रूपी शरीर में गहराई से धँसे हुए और उबलते हुए जल से आहत होकर शब्दायमान तथा मन्द शिखा
१६ वाले (अग्नि) राम के बाण अब भी धूमायित हो रहे हैं। हे धीर वीर नल, आज तुम लोग इतना विस्तृत सेतु निर्मित करो, जिसमें दूर तक फैले मलय और सुवेल एक हो जायँ, और समुद्र के खंडित प्रदेश दो
१७ विकट भागों में विभक्त हो जाय।" तब वानर-सैन्य की अपेक्षा सेतु-रचना के विज्ञान के अध्यवसाय के कारण कुछ भिन्न कान्ति वाले नल ने, भय-वश उद्विग्न नेत्रों को आदरपूर्वक वानरराज की ओर डालते हुए, स्पष्ट
१८ शब्दों में कहा। नल ने वानरों तथा राम के सम्मुख विश्वस्त रूप से कहा—"हे वानरराज, मेरे विषय में सेतुबन्ध सम्बन्धी सम्भावना झूठी
१९ नहीं होगी। सारे पर्वत नष्ट हो गये, रसातल विदीर्ण हो गया, सागर कम्पित हुआ, यहाँ तक हम लोगों ने प्राण ही त्याग दिये, फिर भी आप
२० के कार्य की संभावना त्रयस्त नहीं हुई। अब पृथ्वी पर महीतल के समान विस्तृत, महासमुद्र के ऊपर, सुवेल और मलय के बीच पर्वतों को जोड़-
२१ जोड़कर मेरे द्वारा बनाये सेतु-पथ को आप सब देखें। अव्यवधान रूप से जुड़े हुए पर्वतों द्वारा निर्मित सेतु से वानर-सेना समुद्र को पार करे,
२२ अथवा उछाले गये समुद्र से कुछ ऊपर उभरे भू-भाग द्वारा पार जाये। आप लोग देखें—जैसे हाथीवान् द्वारा दृढ़ता पूर्वक रोका जाता हुआ हाथी, प्रतिपक्षी हाथी से मुकाबला करते समय अपने मुख को ढकने वाले वस्त्र को दूर कर देता है, उसी प्रकार मेरे बाहुओं द्वारा दृढ़तापूर्वक

१४. चढ़ाने के लिये धनुष नत न हो? १८. णिव्वल का अर्थ विघटित अथवा प्रविगणित है, इसी प्रकार संभम का अर्थ उत्सुकता भी लिया जा सकता है। २०. णिव्वूढा से यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि सम्भावना पूरा होगी।

संरुद्ध मलय भी सुवेल की प्रतिद्वंद्विता की इच्छा करता हुआ अन्तराल में स्थित सागर को दूर करे (फेंक दे)। इसके अतिरिक्त मैं यह भी सोचता २३ हूँ कि शीघ्रता से दौड़ने वाले वानरों के संचरण योग्य मेघ-समूह के ऊपर ही क्रमिक रूप से व्यवस्थित करके रखे गये पर्वतों द्वारा सेतु-पथ क्यों न बना दूँ। अथवा सागर के अन्तस्तल से लाये गये आकाशमार्ग २४ (ऊपर) मे निश्चल रूप से स्थापित तथा मेघों से बोझिल होकर झुके पाँखों वाले रसातल के मैनाकादि पर्वत ही क्यों न लंकागामी पथ (सेतु-पथ) का निर्माण करें। अथवा हे वीरों, मेरा अनुसरण करते हुए मेरे २५ निर्देश के अनुसार (समुद्र में) पर्वतों को छोड़ते हुए, अविलम्ब ही अपने द्वारा आनायास ही बाँधे जा सकने वाले सेतु का निर्माण करो, वस्तुतः उपाय के अभाव के कारण निर्माण के सम्बन्ध में असाध्य दोष दृष्टिगत होते हैं।" २६

सेतु-निर्माण प्रक्रिया

इस प्रकार नल के बचनों से हर्षित, थकान दूर की हो जाने कारण उच्चस्वर से कल-कल ध्वनि को विस्तारित करता वानर-सैन्य दसों दिशाओं को, ऊपर संतुलित किये पर्वतों से भरते हुये चल पड़ा। तदन्तर २७ शान्त समुद्र में नियमपूर्वक स्नान करके, नल ने प्रथम अपने पिता विश्वकर्मा, फिर राम और बाद में सुग्रीव को प्रणाम किया। प्रणाम २८ करने के बाद, नल ने सुवर्ण तथा गैरिक शिलाओं के कारण रक्तपीत (आताम्र) तथा पल्लवाच्छादित अशोक वृक्ष से आपूरित कन्दरा मुख वाले पर्वत को प्रथम मंगल कलश की भाँति समुद्र में स्थापित किया। २६ नल द्वारा पहले पहल छोड़े हुए समुद्र तट पर स्थापित पर्वत को, वानर सैन्य इस प्रकार देखने में प्रवृत्त हुआ जैसे लंका के अनर्थ स्वरूप सेतुबन्ध का मुख हो। नल द्वारा प्रक्षिप्त पर्वतों से उच्छलित जल वाला ३०

---

२५. बोझिल पंखों के कारण ये पर्वत उड़ने योग नहीं हैं। २६. इसमें भाव यह है कि नल सेतु निर्माण की विशेष क्रिया जानते हैं। ३०. नल ने सेतु बाँधने के लिये पहला पर्वत तट पर स्थापित किया।

सागर इस प्रकार आकाश में भ्रमित हुआ कि उखाड़े पर्वतों की धूल
३१ से मलिन दिशाओं के मुख एक साथ धुल उठे। पानी से गीले होकर
जुटते हुए और जिनके जोड़ का पता नहीं ऐसे पर्वत समुद्र की आड़ोलित
जल-राशि से आहत होकर भी दृढ़ता से जुटे होने के कारण एक दूसरे
३२ से अलग नहीं होते। समुद्र तट पर पड़े महीधरों से अवरुद्ध नदियों के
समुद्र में आ मिलने के मार्ग (मुहाने) जल की धार के उलटे बहने के
३३ कारण उनके बाहर निकलने के मार्ग बन गये हैं। वानरों द्वारा उलट
कर फेंके जाने पर भी ऊंचे शिखा वाले पर्वत, मूलभाग के भारी होने के
कारण घूम कर, उखाड़ने की पूर्व स्थिति में (सीधे) नल के मार्ग में
३४ गिरते है। जिनकी केसर सटायें मुख में पूर्ण दृढ़ता से ग्रसित कुम्भस्थलों पर
बिखर रही हैं और जिनके नाखूनो की नोकें कुम्भस्थल पर निश्चल रूप से
स्थापित (गड़ी) हैं, ऐसे पर्वतीय सिंह जल हस्तियों की सूड़ों से कम्पित
३५ किये जाते हुए उन्हें भी कम्पित कर रहे हैं। प्रतिद्वंद्वी (जल-हस्तियों) की
मद-गन्ध पाकर उनकी ओर सूँड़ फैलाते हुए बनैले हाथियों के सूँड़ को
जल के हाथी काट कर गिरा देते हैं, लेकिन क्रोधोन्मत्त होने के कारण
उन्हें उनके कट कर गिर जाने का भान घावों पर समुद्र के खारी जल
३६ के पड़ने पर होता है। सेतु के किंचित बन जाने पर, समुद्र पर उड़ने
की (भागने की) चेष्टा करने वाले पर्वतों को, वानर उछल कर अपने दोनों
३७ हाथों से उनकी पाँखों द्वारा पकड़ कर खींच रहे हैं। उस समय, अपनी
चंचल केसर-सटा को ऊपर-नीचे उछालते हुये नल भी, घुमाकर पार्श्व भाग
से कन्धे के समीप प्रसारित हाथ से वानरों द्वारा गिराय पर्वतों को ले लेकर
३८ (शीघ्रता और तल्लीनता से) सेतु को बाँध रहे हैं। गिरते हुए अनेक पहाड़ों
द्वारा क्षुब्ध सागर में प्रकट पृथ्वी तल का जो भीषण विवर है, उसे

---

३१. आकाश तक आवर्तों में चक्कर काटने लगा। ३३. समुद्र में गिरने के मार्ग से नदियों का जल (पर्वतस्थ) बाहर निकलता है। ३४. बिहुण का चाव यहाँ आक्रमण लिया जा सकता है। वे एक दूसरे से बिंधे हैं।

विस्तार की अधिकता से भली भाँति स्थित हुआ एक पर्वत ही मूँद देता है। कपिसमूह जिन-जिन पर्वतों को सागर के तल (थाह) में स्थापित ३६ करता है, नल उन पर्वतों पर पैर रख-रख कर आगे सेतुपथ को बाँधते जाते हैं। वानरों द्वारा सेतु-पथ में एक साथ अनुपयुक्त स्थानों पर गिराये ४० गये पहाड़ों को ले ले कर, नल उपयुक्त स्थानों पर रखते जाते हैं और जोड़ते जाते हैं। नल द्वारा जोड़े हुए पर्वतों को सागर स्थिर करता है, ४१ वानरों द्वारा अनुपयुक्त स्थानों पर डाले गये पर्वतों को अपनी तरगों से उचित स्थानों पर व्यवस्थित कर देता है और बने हुए सेतु के आगे उछलता हुआ बढ़ जाता है। सूर्य के रथ के पहिये से घिसी हुई ऊँची ४२ चोटी वाले जिन पर्वतों को हनूमान ले आते हैं, नल उन-उन पहाड़ों को बायें हाथ से खेल के समान ले ले कर सेतुपथ में जोड़ते जाते हैं। ४३ सागर की सेवा में तत्पर शैवालयुक्त शिखरों वाले पातालवर्ती पर्वत, किंचित तैयार सेतुपथ से संबद्ध और जिनके ऊपर के भाग विकसित कमलों वाले सरोवरों से शोभित हैं, ऐसे पर्वतों को धारण कर रहे हैं। जाकर ४४ लौटी हुई जल-राशि के वेग से कम्पित, समुद्र तट से सम्बद्ध तथा वृक्ष रूपी किरणों से शोभित, सागर-तट के तरगों के आने जाने से फैलती और सिमटती शाखाओं वाली प्रभायुक्त वनश्रेणी आन्दोलित हो रही है। सागर के क्षोभ से उद्विग्न जंगली हाथियों की सूड़ों से उछाले गये जल- ४५ हस्तिओं के दातो में, लोहे के कड़े समान लगे हुए विशालकाय समुद्री सर्प गिर रहे है। पहाड़ों के गिरने से प्रेरित सागर के अन्य भाग के जो ४६ कल्लोल पहले लौटते हैं, वही दूसरी ओर के टेढ़े हुए नल द्वारा निर्मित पथ में जोड़े पर्वत को अपने आघात से सीधा कर देता है। क्षुब्ध हुए ४७

---

३८. त्रिक का अर्थ ठुड्ढी किया जा सकता है; नल अपने पीछे ले आये गये पर्वतों को इस प्रकार हाथ करके ग्रहण करते हैं। ३६. अर्थात् इतने इतने विशाल पहाड़ हैं। ४७ मूल में 'वलेइ' है जिसका. अर्थ घुमाना किया जा सकता है।

सागर में डूबते, निरन्तर प्रवाहित मदजल धाराओं वाले, मतवाले हाथी
४८ पैरों में उलझ कर लपटते समुद्री साँपों को बंधन के समान तोड़ रहे हैं।
(तरंगों में) मिले हुए रत्नों की आभा से अधिक विमल, वृक्षों (फल) के
रस तथा मरकत समूह के किंचित स्फुटित होने से हरित और शंखों के
४६ चूर्ण से अधिक पांडुर हुआ फेन इधर-उधर चालित हो रहा। सेतु-पथ
के निर्माण में प्रयुक्त पर्वतों से समुद्र जितना ही क्षीण होता है, नीचे से
५० निकली हुई जलराशि से पूर्ण होकर उतना ही उछलता है। जिन्होंने
नदियों के मुहाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है, शिथिल मूलवाले
पर्वतो को अपने स्थान से खिसका दिया है और सागरों को आन्दोलित
५१ किया है, ऐसे भूकम्पों ने आकाश को भी संक्षुब्ध कर दिया है।
एक ओर वानरों के हृदय को क्षण भर के लिये सुखी करने वाल सेतुपथ
समुद्र के जल में उठा हुआ है, एक ओर पर्वत गिराये जा रहे हैं और
५२ दूसरी ओर सागर के जल में गिरते हुए पर्वतों से रसातल भर रहा है।
(पहाड़ों के गिरने से) सागर का जल दो भागों में विभक्त हो जाता है
और उससे 'सेतुपथ' निर्मित हुआ सा जान पड़ता है, फिर समुद्र के
५३ जल के लौट जाने पर वही थोडा सा ही बना प्रतीत होता है। पाताल तो
भर गया, किन्तु कुपित दिग्गजों के गमन में बाधा पहुँचाने वाले
(उपस्थित करने वाले) तथा सागर को विश्राम (गहराई) देने वाले
महावराह के पैरों के खुर पड़ने से बने (विकराल) गड्ढे अब भी नहीं
५४ भर रहे हैं। गैरिक तटों के पतन से सुन्दर पल्लव जैसा लाल रंग का,
(भँवरों में भ्रमित) टूटे हुए वृक्षों से कसैला और सुगन्धित तथा पहाड़ों
से मथा जाता सागर का जल समूह ऐसा जान पड़ता है मानों मदिरा

४८. साँप पैरों में उलझ कर खिंचने से बढ़ते हैं। ४६ पाण्डर का अर्थ श्वेत-पीत तथा श्वेत दोनों होता है। ५१. सेतुपथ निर्माण के लिये फेंके गये पर्वतों से उत्पन्न भूकम्प है। ५३. जल लौट कर सेतु को घेर लेता है।

निकल रही है। समुद्र इधर-उधर पड़े हुए पहाड़ों को ज्यों-ज्यों अपनी तरंगों से चालित करता है, त्यों-त्यों शिखरों के चूर्ण से विवरों के भर जाने से सेतुपथ स्थिर होकर दृढ़ हो रहा है। नल द्वारा बनाया जाता सेतुपथ ऐसा जान पड़ता है, कहीं आकाश से बन कर तो नहीं गिर रहा है? तत्काल बनाया हुआ मलय से तो नहीं खींचा जा रहा है। अथवा समुद्र के जल पर (अपने आप) तो नहीं बन रहा है? अथवा रसातल से तो नहीं निकल रहा है? आकाश में समुद्र का उछला हुआ पानी और जलमुक्त रसातल में आकाश दिखाई देता है, पर आकाश, जल और रसातल तीनों में पर्वत समूह सर्वत्र समान रूप से दिखाई दे रहे हैं। बेला रूपी आलान से बँधा और गर्जन करता हुआ सागर रसातल स्थित सेतु को भी इस प्रकार चालित कर रहा है, जिस प्रकार वन-गज अपने खूँटे को हिला देता है। कपियों द्वारा दृढ़ता के साथ जैसे जैसे पर्वत प्रेरित होते हैं, वैसे वैसे क्षुब्ध जल-राशि से आर्द्र और विस्ताररहीन होकर वे एक-एक से जुटते जाते हैं। ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६०

बनते हुए सेतु-पथ का दृश्य

वानरों के हाथों से पर्वत सागर में गिर रहे हैं, उनसे रत्न बिखर रहे हैं और किन्नरगण भय से व्याकुल होकर खिसक रहे हैं, क्षुब्ध सागर नदियों को तीव्र भयाकुलता से मुक्त करता हुआ सा, दैन्य के साथ नहीं वरन् घोर गर्जन कर रहा है। सागर सदूर आकाश में उछलता हुआ पर्वतीय मणिशिलाओं की आभा से भासित होता है, गिरते हुए पंकिल पहाड़ों को जैसे धो रहा है, लौट कर रुद्ध-सा हो रहा है और दलित होकर फिर जुटता हुआ सा जान पड़ता है। क्षुब्ध सागर में निवास करने वाले तथा सेतुपथ के समीप गिरने वाले पहाड़ों से व्याकुल जल के हाथी और पर्वत पर रहने वाले मद की गंध से कुछ वन-गजों के समूह एक ६१ ६२

---

५७. तत्परता और शीघ्रता के कारण यह आभास होता है। निर्णय करना कठिन है कि किस प्रकार सेतुपथ बन रहा है। ६२. आभा से पूरित है। ६३. एक दूसरे के सम्मुख टूटे पड़ रहे हैं।

६३ दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। समुद्र की तरंगें अपनी टक्कर से वृक्ष-समूह को उखाड़ फेंकती है, सेतुपथ के पार्श्वों को रगड़ती है और गैरिक धातुओ के रंग से मलिन होकर सागर-तल से ऊँची उठकर (पथ के
६४ नीचे) विलीन हो जाती है। पर्वत से सेतुपथ पर गिरने के भय से कातर नेत्रोंवाले हरिण नल और सागर को एक ही भाव से देखते है। सेतु तथा पर्वतो के अभिघात से विक्षुब्ध सागर का जल नदियों के प्रवाह का अतिक्रमण करता हुआ मानों वानरो की कलकल ध्वनि को पाकर
६५ उमड़ रहा है। नल रचित सेतुपथ को वानर दृढ़ कर रहे है—इसकी उच्चना (महारम्भ) सम्पूर्ण पृथ्वीतल से पहाड़ो को उखाड़ कर निर्मित की गई है और अपनी छाया से इसने सागरवर्ती जलराशि को श्यामल
६६ कर दिया है। इसके शिलातलो क टेढ़े होकर लगे दृढ़ आघातो से महामत्स्यों की पूछे कट गई है और इसकी शिलाएँ बीच से कटे साँपो के आभोगो (शरीरो) से ज़ोरो से कस जाने के कारण विदीर्ण हो
६७ गई है। पहाड़ो के उखाड़ने के उत्पात के समय पकड़ कर छूटे हुए गजराजो के पीछे सिंह वर्ग है और यह पथ गिरि शिखर पर स्थित, ले
६८ आये गये अन्य पर्वतो से प्रेरित शब्दायमान मेघों से धुल रहा है। सेतुपथ मे संक्षोभ के कारण उलट कर गिरे बनैले हाथियो से रुद्ध निर्झर का जल दो धाराओं मे विभक्त होकर बह रहा है और पर्वतो के बीच स्थित चन्दनवन के कारण मलय के शिखर खण्ड की स्थिति का अनुमान
६९ होता है। इस प्रकार नल द्वारा बनाये जाते सेतुपथ मे सागर की तरंगो से आहत होकर काँपती हुई लताएँ वृक्षों पर लटक रही है और ऊँचे-
७० नीचे शिखरो के बीच आया हुआ सागर चपल हो रहा है। सेतुपथ

---

६४. सेतुपथ के दोनों ओर उठती हुई तरंगों का वर्णन है। ६६. यहाँ से प्रारम्भ होकर ७० तक सेतु के विशेषण पद है, अनुवाद की सरलता के कारण अलग-अलग रखा गया है। ६८. सिहों ने हाथियों को पहले पकड़ रखा था, परन्तु उत्पात में छूट गये हैं।

अपने आप विस्तृत हो रहा है, पर्वतों के आघात से सागर काँप रहा है, सेतु-मार्ग पर सुवेल के ऊपरी भाग को देखकर कल-कल ध्वनि से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वानर हर्षातिरेक से शोर मचा रहे हैं। ७१ समुद्र की द्विधा विभाजित जल-राशि में सेतुबन्धन से आक्रान्त, घबराहट के साथ खींचने के कारण खंडित, टूटने के भय से उद्विग्न हो भागने ही वाले पर्वतों के पक्षों (पंख) के सिरे दिखाई दे रहे हैं। ७२ महीधरों के आघात से संक्षुब्ध जल द्वारा क्षत तथा विघटित मूलवाले पर्वतों के थोड़ा-थोड़ा खिसक जाने पर वानर फिर सेतुपथ को नियंत्रित करते हैं। ७३ उदधि का आक्रान्त कर श्रेष्ठ सेतुपथ ज्यों-ज्यों दूसरे तट के निकट होता जाता है, त्यों-त्यों पर्वतों के आघात से समुद्र का पानी कम होने के कारण और अधिक उछलता है। ७४ महीधरों के प्रहार से जो जल समूह सेतुपथ पर गिरते हैं, वे (उसपर स्थित वृक्षादि से) टकरा कर टेढ़े-मेढ़े हो महानदियों के प्रवाह जैसे बन जाते हैं। ७५ एक ओर से दूसरी ओर दौड़ते तिमियों से जिसका शेष भाग पूरा हो गया है, ऐसा सुवेल पर्वत के तट पर्यंत कुछ-कुछ मिला हुआ सेतुपथ पूर्ण होने की शोभा को प्राप्त हुआ। ७६ अव्यवस्थित रूप से उलटे सीधे लगे विशाल पर्वतों को जब नल सेतुपथ में उचित रीति से लगाने के लिये इधर-उधर हटाते हैं, तब समुद्र समूची पृथ्वी को प्लावित करके अपने स्थान को देर में लौटता है। ७७ प्रभु आज्ञा रूप सेतु के निर्माण कार्य को समाप्तप्राय जान हर्षित वानरों द्वारा डाले गये पर्वतों के आघात से तरंगायित (वलन्तः) समुद्र, सेतुपथ और सुवेल के बीच उमड़े हुए नदी प्रवाह की तरह जान पड़ता है। ७८ जैसे-जैसे वानर सेतुपथ के अग्रभाग (अन्तिम) को बनाते जा रहे हैं, वैसे-वैसे समुद्र की जलराशि की तरह रावण का हृदय भी फटता सा जा रहा है। ७९ जिसका मूल पाताल में स्थित है और जिसमें निर्झर अविरल रूप से प्रवाहित हो रहे

---

७३. पर्वतों को जमा कर सेतु को रोकते हैं। ७६. शेष भाग कम रह गया है और तमियों से वह पूरा जान पड़ता है।

हैं ऐसा सुवेल पर्वत बिना स्थानान्तरित हुए भी पर्वतों द्वारा निर्मित सेतुपथ
८० के मुख भाग में पड़ गया। मलय पर्वत के तट पर राम के पास रहते हुए
भी वानरराज सुग्रीव ने वानरों की हर्ष पूर्ण कल-कल ध्वनि द्वारा सेतुपथ
८१ के पूर्णत? (अन्ततः) पर्वतों से तैयार हो जाने की बात जान ली।

सम्पूर्ण सेतु का रूप

सेतुपथ के आरम्भ होने के पूर्व सागर सम्पूर्ण था, किंचित निर्मित हो जाने पर (सेतुपथ) तीन भागों में विभाजित होकर असम हो गया और समाप्त होने पर वह दो भागों में विभाजित हो गया, इस प्रकार सागर
८२ कई रूपों में भासित हुआ। मलय के तट से प्रारम्भ, चलते वानरों के
भार से नत, समुद्र की तरगों से आन्दोलित विस्तृत सेतुपथ, वृक्ष द्वारा
८३ धारण किये गये वृक्ष के समान, त्रिकूट पर्वत द्वारा स्थिर हो रहा है।
सेतु महापथ से आकाश के पूर्वी और पश्चिमी दो भाग अलग कर
दिये गये हैं और दोनों पार्श्व नत हो रहे हैं, इस प्रकार बीच में उठा हुआ
८४ ऊँचा-नीचा आकार झुक सा रहा है। आकाश के समान विस्तृत समुद्र
की जलराशि पर मलय और सुवेल के तटों से लगा हुआ सेतुपथ,
उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक विस्तृत भगवान् सूर्य के रथ-मार्ग
८५ की तरह लग रहा है। जिसके महान शिखर पवन द्वारा आन्दोलित
सागर के उदर में भली भाँति स्थित हैं, ऐसा सेतुपथ अपने विकट पक्षों
को फैला कर उड़ने का उपक्रम करने वाले पर्वत की तरह प्रतीत होता
८६ है। सेतुपथ के निर्मित हो जाने पर राम की बेचैनी, ऊर्ध्वोच्छ्वास,
८७ अनिद्रा, विवर्णता तथा दुर्बलता आदि ने रावण को संक्रांत किया।
अनन्तर विशाल, विकट, तुंग तथा सागर को दो भागों में विभक्त
करनेवाला सेतुपथ, रावण कुल को नाश करनेवाले के स्थूल, तुंग और
८८ विकट हाथ की भाँति भासित हुआ। कठोर पर्वतों का बना होने के

---

८३. वानरों ने उसे सेतुपथ के दक्षिण भाग में शीर्ष रूप में स्थापित किया। ८७. सेतुपथ के निर्माण हो जाने से राम को विजय का आश्वासन हो गया और रावण की चिन्ताएँ बढ़ गईं।

कारण भारवान और दूर स्थित भी विकराल त्रिशूल जैसे सेतुपथ ने कठोर, साहसी और युद्ध में गौरव प्राप्त रावण के हृदय को छेद-सा दिया है। सेतुपथ के अधोभाग के वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, क्षुब्ध सागर ८६ से जिनके गीले पुष्पसमूह पर भौंरे मड़रा रहे हैं और पार्श्ववर्ती पर्वतों के ऊपर उनके पल्लव उलटे हुए दिखाई पड़ रहे हैं। कहीं-कहीं शांत ९० समुद्र की सी आभावाले स्फटिक शिलाओं से निर्मित पर्वतों के मध्यवर्ती सेतुपथ के भाग बीच में कटे से प्रतीत होते हैं। हिमपात से छिन्न तथा ९१ कुचले हुए चन्दन वृक्षों से सुरभित श्रेष्ठ मलय पर्वत के शिखर सेतुपथ में लगे हुए भी स्फुट रूप से पृथक् प्रतीत हो रहे हैं। जाकर लौटती ९२ हुई वेगवान् जलराशि से आन्दोलित, ग्राहों से पूर्ण सागर के कल्लोल तट की तरह सेतुपथ को भी अपने विस्तार से परिप्लावित कर रहे हैं। ९३ निर्माण-कार्य के समय पर्वतों के कर्षण से सागर में गिरे, जल से भीगे आयालों के भार से आक्रान्त, कुछ उतराते हुए वन-सिंह सेतुपथ के ९४ किनारे आ लगे दिखाई दे रहे हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में उत्पन्न जो समुद्री जीव विपरीत दिशा में गये थे, वे सेतुपथ द्वारा अविरुद्ध गति होकर पुनः अपने स्थानों के दर्शन से वंचित हो रहे हैं। सेतुपथ के ९५ दोनो किनारों पर स्थिर, श्वेत तथा गैरिक वर्ण के उतंग शिखरों वाले और पवन द्वारा आन्दोलित श्वेत वस्त्रपट रूपी निर्झरों वाले मलय तथा सुवेल पर्वत मंगल-ध्वजों की भाँति जान पड़ते हैं। ९६

वानर सैन्य का प्रस्थान और सुवेल पर डेरा

अनन्तर सेतुपथ निर्माण करने के पश्चात् बचे हुए पर्वतों को स्थल प्रदेश पर छोड़ कर, प्रस्थान करते राम के हृदय में रण के सुख को निहित करते हुए वानर-सेना (लंका की ओर) चल पड़ी। सेतुमार्ग से पार ९७ करते हुए वानर सागर को देख रहे हैं—सेतुपथ से दो

---

९०. यहाँ उव्वन्त का अर्थ है—नीचे से पर्वत-स्थित वृक्षों के पत्ते उलटे भाग की ओर से दिखाई दे रहे हैं। ९१. पर्वत काट कर मार्ग बनाये गये हैं।

भागों में विभाजित हो जाने के कारण उसका विस्तार सीमित हो गया
९८ है और वड़वानल द्वारा उसकी जलराशि शोषित की गई है। जिसमें शंख
समूह से मिलित श्वेत कमल, मरकत मणियों से मिलित हरा पत्र-समूह
और विद्रुम जाल से मिले हुए किसलय हैं, ऐसे सागर के उत्तर तट से
दक्षिण तट तक नल द्वारा बाँधे हुए सेतुपथ से, वानर-सेना प्रस्थान कर
९९ रही है। पाताल का अवगाहन करनेवाले, सब प्रकार से गौरवयुक्त
सेतुपथ को सागर धारण कर रहा है और प्रस्थान करती वानर-सेना के
१०० भार से वह झुक जाता है तथा उसमे लगे हुए पर्वत चूर्ण हो रहे हैं।
खम्भे मे बॉधे बनैले हाथी की तरह सेतुपथ में बँधा समुद्र उसके मध्य
भाग को चालित करता हुआ अपनी तरंग रूपी सूँड़ो को उस पर
१०१ डालता है। पहाड़ो को ढोने से शरीर मे पसीने के बूँद झलक रहे
हैं, ऐसे वानर गैरिकादि धातुओं से गंदे, अपने हाथों को सेतुपथ के
१०२ पार्श्ववर्ती पहाड़ो के निर्झरो में धोते हुए सागर को पार कर रहे है।
तब वे सुवेल पर्वत के ऊपरी भाग में जा पहुँचे, वहाँ रावण द्वारा ले
आये गये नन्दन वन के योग्य (तुल्य) वृक्षों का वन-प्रदेश है और पानी
१०३ के भार से मन्थर और स्थिर जलधर समूह से झुकी हुई लताएँ है।
अनवरुद्ध पराक्रम वानर-सैन्य समुद्र पार हो चुका है, सुनकर राक्षस
१०४ समूह में राक्षसनाथ की आज्ञा के प्रति ढिलाई का भाव आ गया। जब
कपि-सैन्य ने सागर के तट पर शिविर बनाने का कार्य प्रारम्भ किया,
१०५ तब मानों यमराज ने अपने बायें हाथ से रावण के सिर का स्पर्श किया।
राम और रावण का प्रताप सभी लोकालोको के मध्य में एक प्रकार
से असामान्य है, परन्तु एक का प्रताप बढ़ रहा है और दूसरे का घट
१०६ रहा है, इस तरह प्रकार-भेद से वह दो रूप का हो गया है। तब फिर

---

१०४. राक्षस सेना का उत्साह कम हो गया और आशंकित हो उठी।
१०५, आवास ग्रहण करना आरम्भ किया।

देवताओं के मन में प्रेम उत्पन्न करनेवाले मृगांक राम के पार हो जाने पर, मथित सागर की लक्ष्मी के साथ उसकी शोभा भी निर्मल हुई। १०७

———

१०७. यहाँ व्यंजना है कि चन्द्रमा के बाद सागर मंथन में लक्ष्मी और वारुणी का आविर्भाव हुआ।

नवम आश्वास

सुवेल दर्शन

इसके बाद वानरों ने दक्षिण दिशा को आच्छादित (विनष्ट) किये हुए सुवेल पर्वत को देखा—वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आक्रान्त करने के लिये जैसे अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरों को बढ़ाये हुए है और संसार की समस्त दिशाओं को व्याप्त करने के लिये दौड़-सा रहा है। सम्पूर्ण भुवन का विष्णु की भाँति, १ संसार के रक्षण के भार से व्यस्त विष्णु का शेष की तरह, शेष का सागर की तरह, वह समुद्र के विश्राम का आश्रयस्थल है। पृथ्वी के २ धारण करने की शक्ति रखने वाले सुवेल में सागर को भरनेवाली नदियों के प्रवाह हैं तथा वह आकाश को मापने और प्रलयकालीन पवन के वेग को रोकने में समर्थ है। दिशाओं में दूर तक फैला हुआ, पाताल को ३ सुदूर तक झुकाए हुए, आकाश-तल को सुदूर तक ऊपर उठाये हुए सुवेल पर्वत समीप में पाये जानेवाले फल-फूल के वृक्षों से ढका है। इस ४ पर्वत की जड़ें पातालगत सागर में लगी हैं, पार्श्व में नदियाँ प्रवाहित हैं और यह आदि वराह द्वारा उछाले जाने के समय ऊपर को स्थित पृथ्वीमण्डल के समान है। वह अपने अधोभाग से पाताल-तल को भर ५ रहा है, वज्र की नोक से खोद कर अटल रूप में स्थापित किया गया है और ऐरावत के कन्धों के खुजलाने से घिसे पार्श्वों वाले आलान के खंभे के समान है। पाताल तक फैले होने पर भी उसके मूलभाग को शेषनाग ६ (सर्पपति) ने नहीं देखा है और उसका शिखर तीनों लोकों को मापने के लिये बढ़े हुए त्रिविक्रम द्वारा भी छुआ नहीं गया है। उसके तट प्रदेश ७

---

२. विश्राम देने में समर्थ या सहायक। ५. मूल में, सागर की पातालवर्ती गोद को नहीं छोड़ रहा है—ऐसा अर्थ है। ६. आलान हाथी बाँधने की रस्सी को कहते हैं।

से टकरा कर सागर का जल उछल रहा है, मध्यभाग को चक्कर लगाते हुए सर्पराज ने आवेष्ठित किया है और विष्णु के हाथों द्वारा आलिंगित मन्दराचल की तरह समीपवर्ती सूर्य की किरणें उसको स्पर्श कर रही हैं। ८ वह शेष के सिर के रत्नों से घर्षित अपने मूल भागों की मणियों से पाताल तल के अन्धकार को दूर करता है तथा अपने ऊँचे शिखरों में सूर्य के भटक जाने पर गगन में अँधेरा कर देता है। निकटवर्ती चन्द्रमण्डल की ९ रगड़ से उसकी काली-काली चट्टानों पर अमृत की रेखा बनी हुई है और चाँदनी के जल-कणों से प्लावित होकर उठती भाप से सूर्य-रथ के मार्ग का अनुमान लगता है। चाँदनी रातों में जब कभी उसके शिखर १० पर विरल जल-भार वाले मेघ आ लगते हैं, तब अपनी सूड़ से उखाड़ कर कमल उठाये हुए तथा किंचित कीचड़ लपेटे हुए ऐरावत की भाँति शिखर-स्थित चन्द्रमा शोभित होता है। सुवेल पर्वत पर शिखरस्थ नदियों ११ की धाराएँ हरे वन के कारण दूर से दिखाई दे रही हैं और वहाँ पवन से छिन्न होने के कारण मुरझाये किन्तु चन्द्रमा के पृष्ठ भाग पर गिरने के कारण किसलय सफ़ेद जान पड़ते हैं। दूर तक दिशा-दिशा में १२ दौड़ते-से जिसके शिखर सागर के जल में विकट आकार में प्रतिबिम्बित होते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों चोटी पर वज्र प्रहार होने से उसका एक भाग समुद्र में गिर गया दिखाई पड़ रहा है। अधिक बोझिल होने १३ के कारण सुवेल के अधोभाग के मूल को शेषनाग बड़े प्रयत्न से उठाये हुए है और प्रलय काल के पवन द्वारा उखाड़ कर लाये पहाड़ उसके तट से टकरा कर चूर्ण हो गये हैं। वहाँ जल भरे मेघों से प्रेरित होकर १४ निश्चल भाव से बड़े-बड़े भैंसे विश्राम कर रहे हैं और सिंहों द्वारा मारे हाथियों के रक्त से रंजित शिलातलों पर मोती के गुच्छे सूख कर चिपक गये हैं। इस सुवेल पर्वत पर खारी पानी की फुहारों से वृक्षों के सुन्दर १५ पल्लवों की लालिमा बदल गई है और सिंह के नाद से डर कर भागने

१२. शिखर के चन्द्रमा अति निकट है, यह भाव व्यंजित होता है।
१४. जल भरे मेघों से वर्षा की आशा से भैंसे आनन्दित हैं।

के लिये तत्पर हरिण संकुचित होकर एक पैर आगे किये तथा कानों को
१६ खड़ा किये खड़े हैं। मध्यभाग द्वारा प्रसारित, सूर्य-किरणों द्वारा प्रकाशित
कन्दराओं से व्याप्त तथा दक्षिण दिशा में स्थिति इस पर्वत में सभी
१७ दिशाएँ परिव्याप्त हो रही हैं। यह रात में सुदूर आकाश में उठे हुए
शिखरों के रत्नों से जैसे बढ़ा दिया जाता है, शिखर के घास वाले भाग
१८ में चर कर मृग सुखपूर्वक बैठे हैं। यह पर्वत कुपित राम के दृढ़ बाण से
काँप गया है और शिखरों के सन्निकट स्थिति चन्द्रमण्डल के बहते
जलप्रवाह से गीला है। इसने अपने मूल को दूर तक फैला रखा है,
इसके सूर्य के प्रस्थान से भी ऊँचे शिखरों पर अन्धकार है, आकाश तथा
सागर दोनों में समान रूप से व्याप्त इस पर्वत का आधा भाग धँसा-सा
१९ जान पड़ता है। झंझावात से आन्दोलित चन्दनों में रगड़ से लगी आग
के कारण इसमें सुगन्धित धुँआ निकल रहा है तथा शिखरों पर समुद्र
के किंचित जल को पीकर मेघ घिरे हुए हैं जिनके पिछले भाग पानी
२० पीने से भारी हैं। तटों से सागर का जल टकरा रहा है, ऊपर निर्झर के
धाराघातों से सिंह का क्रोध जाग गया है। शिरोभाग पर नक्षत्र शोभित
२१ हैं तथा शिखर-स्थित चन्द्रमण्डल से माला का आभास मिलता है।
इसके शिखर चन्द्र से भी ऊँचे उठ गये हैं, कन्दराओं में हवा के चलने
से नदियों की जलधारा शान्त हैं, मणि से युक्त सुन्दर पार्श्व हैं और
२२ इसकी सुवर्ण शिलाओं पर हरिण सुखी होकर सो रहे हैं। यहाँ हाथी,
जिन्होंने उनके मस्तक विदीर्ण किये हैं ऐसे सिंहों को दाँतों से विदीर्ण
कर सूँड़ से ऊपर उठाये हुए हैं और विवरों में बैठे हुए साँपों की मणि-
२३ प्रभा जलधारा के समान निकल रही है। तीक्ष्ण कंटकों जैसे मणियों वाले
उसके तट-प्रदेश को ऊँचाई के कारण चंचल समुद्र के जलकणों का छू
सकना कठिन है; और यहाँ जिनके नखों में मोतियों का गुच्छा लगा है

१६. खारी पानी से रंग बदल गया है। २४. व्यंजना है कि मणियों की तीक्ष्णता के भय से जलकण नहीं छू पा रहे हैं।

ऐसे सिंह हाथियों के सिर पर चढ़े गरज रहे हैं। इस पर्वत पर मेघों से २४
विमर्दित होकर छोड़े गये तथा वर्षा के कारण कोमल वनों में कल्पलता
पर सूखने वाले श्वेत वस्त्र पवन द्वारा उड़ा कर बिखरे गये हैं। २५

सुवेल का आदर्श सौन्दर्य

इसके तट पर आधे उखाड़े हुए हरे-भरे टेढ़े मेढ़े वृक्ष हैं और यह समुद्र जलराशि पर आरूढ़-सा है तथा इसमें कुसुमराशि से पूर्ण एवं स्फटिक तटवाली नदियाँ छिछली-सी होकर प्रवाहित हो रही हैं। २६ इसके
शिखरों के पवन द्वारा उछाले हुए झरनों से, कुछ-कुछ गोली लगाम
वाले तथा लार के फेनकणों से युक्त, सूर्य के रथ के घोड़ों के मुख
धुल रहे हैं। २७ रात में प्रज्वलित औषधियों से आहत, मृगचिह्न को प्रकट
करते हुए चन्द्रमा को, यह पर्वत अपने आकाशगामी (तीन) शिखरों
पर काजर पारने के दिये के समान धारण किये है। २८ पृथ्वी को उठा
लेने के कारण भयानक शुन्यता से युक्त, आदि वराह द्वारा पंकराशि
के निकाले जाने से अत्यन्त गहरा तथा प्रलयकाल के सूर्य के ताप से
शोषित समुद्र को यह पर्वत अपनी नदियों से भर रहा है। २९ अज्ञात
दिशाओं से उठाते तथा कन्दराओं से गुँजारित सिंहों के नाद से
भयभीत होकर मृग लौट पड़े हैं और जंगली हाथियों ने भी कान खड़े
कर लिये हैं। ३० सुवेल पर्वत समुद्र-तट के पवन से उड़ाये जलकणों से
गीले वनों से हरा है, वन कमलों के परिमल से कुछ-कुछ लाल है,
हंस सरोवरों को मधुर निनाद से गुंजार रहे हैं और सिंहनी ने मांस
ग्रहण किया है। ३१ समुद्र के एक भाग को अन्तर्निहित किये हुए, आकाश
मण्डल की शून्यता से युक्त तथा दसों दिशाओं में परिव्याप्त भुवनत्रयी
जैसी इसकी कन्दराओं में सूर्य उदय भी होता है और अस्त भी होता
है। ३२ पर्वत शिखर से निकलते समय थोड़े प्रवाह वाले तथा आगे बढ़ने

---

२५. इसके वन नन्दन वन के समीप ही हैं। २६. स्फटिक पर बहने के कारण नदियों के पेटे साफ़ दिखाई पड़ते हैं और इस कारण वे छिछली जान पड़ती हैं।

पर समुद्र के उछले हुए पानी से मिल कर अधिक विस्तार वाले निर्झर
३३ उद्गम प्रदेश में मधुर हैं पर आगे चल कर खारे हो गये हैं। इस
पर्वत के सरोवरों में रत्नों की प्रभा से धोये जाते हुए कमल खिले हुए
हैं जो शेष के विशाल फण के नतोन्नत होने से कम्पित हैं; तथा मध्य
३४ प्रदेश में उगी हुई लताओं पर सूर्य-रथ की धूल पड़ी हुई है। इसके
मणिमय तट आकाश की तरह नीले और पार्श्वों में किरणों के फैलने
से मृगमरीचिका से आवेष्ठित सरोवर के समान जान पड़ते हैं, जिन पर
३५ उमस से व्याकुल भैंसे नीचे उतरने का रास्ता ढूँढ़ रहे हैं। वन के जीव
अनुरूप स्थानों में अपना क्रोध प्रकट रहे हैं—कहीं हाथी तमाल वन
रौंद रहे हैं, कहीं रजत शिखर के खंडों को सिंह अपने मुख से काट
३६ रहे हैं और कहीं काली चट्टानों से जंगली भैंसे भिड़ रहे हैं। कहीं सिंहों
के थपेड़ों से घायल हाथियों के मस्तक से निकले गज मुक्ताओं के गुच्छे
बिखरे हुए हैं और वन में लगी आग से डर कर भागे हाथियों द्वारा
३७ नदियों को पार करते समय तृण राशि कुचल गई है। इसके मध्यभाग
पर सूर्य का रथ हिलता-डुलता प्रयाण करता है, ताल-वनों में मार्ग न
पाकर प्रचंड तारे उलझ पड़ते हैं और इस प्रकार यह समीप के भुव-
३८ लोक के ऊपर स्थित है। यह सुवेल पर्वत विचित्र शिखरों से युक्त है,
जिसके आधे भाग तक ही सूर्य की किरणें पहुँचतीं हैं, पूर्णचन्द्र की
किरणें तो कुछ भाग तक ही पहुँच पाती हैं तथा ऊपरी शिखर तक न
३९ पहुँचा हुआ गरुड़ बीच के शिखर पर विश्राम लेता है। यहाँ देव
सुन्दरियों के वक्षस्थल पर धारण किये जाने योग्य रत्नालंकरण से
दक्षिण समुद्र रत्नों बाज़ार जान पड़ता है। यहाँ कमलिनियों के
दलों के सम्पर्क से सरोवरों का जल मधुर और श्याम है तथा घाटियों

---

३० सिंहों का नाद कन्दराओं से प्रतिध्वनित हो कर ऐसा जान पड़ता है कि सामने से ही भीषण ध्वनि आ रही है। ३६. सिंहों ने शिखरों को अपने मुख में अवरुद्ध किया है।

में बकुल बन के परिमल का गन्ध फैल रहा है। मध्याह्न के तीव्र ताप ४० से तप्त हरिताल गन्ध से हरिण मूर्च्छित हो रहे हैं और ताप से घनीभूत समुद्र जल के लवण-रस के स्वाद के लिये भैंसे तटीय शिलाओं को चाट रहे हैं। यह अपने ऊँचे रजत शिखरों से तारों को छू रहा है। ४१ यहाँ पड़े हुए मुक्ता-समूह सिंहों द्वारा मारे गये हाथियों के रुधिर से अरुणिम हो गये हैं। अपने असीम धैर्य के कारण सुवेल ने कितने प्रलय सहे हैं और सागर से लगे हुए इसके सरोवर में शंख प्रवेश कर रहे हैं। मणिमय विवरों में प्रवेश करता हुआ जल श्याम-श्याम सा ४२ जान पड़ता है; यक्षों के आमोदपूर्ण क्रीड़ा-गृह हैं, सरोवरों के कारण दावाग्नि नहीं लगती है और यहाँ काम के बाणों से परिचित गंधर्वों को निद्रा आ रही है। अभिमानी रावण को आनन्द देने वाले इस ४३ पर्वत की कन्दराओं में जल सिल्हक से श्यामल है, मध्य भाग स्वच्छ रजत प्रभा से भासमान् है तथा विषवृक्षों की प्रभा से जीवों का नाश हो रहा है। पुरानी विष नाशक लताओं के लिपटने से चन्दन वृक्षों ४४ की शाखाओं को विषधर ने छोड़ दिया है तथा दूसरी ओर जाते हुए सर्पों की मणियों की प्रभा से वृक्षों की छायाएँ उद्भासित हैं। सुर सुन्दरियों ४५ का मधुर आलाप सुनाई दे रहा है। यह प्रलय काल की उमड़ी जल-राशि से पूर्णतया धुल नहीं पाता। इसका धरातल स्फटिक मणियों से धवलित हो गया है और इसके विवरों से चन्द्रमा की भाँति उज्वल रजत शिलाएँ निकलती हैं। रमणीय चन्द्र ज्योत्स्ना इस सुवेल पर्वत ४६ का आवरण पट है, निकटवर्ती वृक्षों से कन्दराएँ रम्य हैं, श्रेष्ठ नक्षत्रों से इसके शिखर उज्वल हैं तथा स्वर्ग के बन्दी देवताओं के लिये इस

---

४१. सागर पर्वत के तट की शिलाओं को अपनी तरंगों से नमकीन बना रहा है। ४२. मुक्ता-स्तवक हाथी के गण्डल स्थल के हैं। ४३. नील-मणि अथवा लताकुंजों के कारण जल श्याम रंग का भासित होता है। ४४. वरक्ख का अर्थ गन्ध-द्रव विशेष है और त्रिफला भी।

४७ समय सर्वस्व है। यहाँ जंगली बावलियों के कीचड़ से निकला सुअर सिंह द्वारा आक्रान्त होकर फिर उसी में घुस पड़ता है और इस प्रकार अपने प्रयत्न में विफल हो सिंह चोट खाया-सा जान पड़ता है। सुवर्ण-मय वृक्षों के गुच्छे सरोवर के जल में गिर कर अपने बोझ के कारण
४८ डूब रहे हैं। सजल नील मेघ जैसी लावण्यमयी, नक्षत्रों के ग्रंथन से रचित मेखला वाली नभश्री को अपने शिखर रूपी बाहुओं से आच्छा-दित करता हुआ सुवेल, पीछे आती हुई दिशा रूपी प्रतिनायिका के
४९ क्रोध को दूर करता है। यह राक्षसों की बन्दिनियों (अप्सराओं) के लिये आश्रय-स्थल है; यहाँ भयानक ध्वनियाँ गूँजती हैं, यह दिशाओं के आधार के समान है, सूर्य को छू-सा रहा है, अंधकार रूपी नरपति के
५० राजभवन के समान है तथा सूर्यकात मणियों के पालक जैसा है। बलि की भूमि का अपहरण करते समय विष्णु और प्रलय काल में मेघों तथा समुद्रों से भी जो नहीं भर सका, उस भुवन को यह सुवेल अपने आकार
५१ से भर रहा है। समीपवर्ती शिखर की वनाग्नि से आक्रान्त-अदृश्य मण्डल, ज्वालमाल के भीतर से निकलती हुई रक्ताभ किरणों वाले अस्त
५२ होते हुए-से सूर्य को यह पर्वत धारण किये हुए है। अपने घर को छोड़ना स्वीकार न करनेवाली नदी रूपी पुत्रियो के लिये, यह पर्वत बड़वानल के संताप से तटों को विदीर्ण करने वाले सागर के भारी तरंग-प्रवाह को
५३ सहन कर रहा है। रात के समय, इसकी पद्मरागमणि की शिलाओं पर पड़ती द्वितीया के चन्द्रमा की छाया, इस प्रकार जान पड़ती है मानों
५४ सूर्य के घोड़ों की टापों से चिह्नित मार्ग हो। टेढ़ी, ऊपर चढ़ती लताओं के जाल से आच्छादित, आतप के खंड के समान ऊँची-नीची सोने की
५५ शिलाएँ पड़ी हैं। आतप के भय से उधःप्रदेश से उद्विग्न हुए साँपों ने

४७. रावण ने स्वर्ग के देवताओं को बन्दी कर रखा है, और वे नन्दन वन के अभाव में सुवेल पर ही दिन बिता रहे हैं। ४९. नभश्री को छिपा कर दिशा नायिका के क्रोध से बचता है। ५३. जिस प्रकार ससुर जामाता के कठोर वचन सहता है। ५४. शिलाओं से व्याप्त है।

सूर्य के अलोक-ताप से रहित मध्यप्रदेश स्थित वनों में बसेरा लिया है, सूर्य के नीचे स्थित रहने के कारण इन वनों की छाया ऊपर फैलती है। ५६ इसके काफ़ी ऊँचे तट प्रदेश (नितम्ब भाग), लगे हुए दाँतों के विस्तीर्ण मध्यभाग से मुख के विस्तार के सूचक, ऐरावतादि हाथियों के परिघ जैसे दाँतों से चिह्नित हैं। विचरण करने वाले देव हाथियों के कनपटी खुजलाने से पीले तथा सूँड़ की निश्वास की ऊष्णता से हल्की आभावाले ५७ पारिजात के पत्ते इस पर्वत पर गिर कर इकट्ठे होते हैं और फिर बिखर जाते हैं। इसके पार्श्व भाग में आने पर चन्द्र का मृग-कलंक उसके ५८ मणिमय मध्य भाग की आभा से धवलित हो गया है और पिछले भाग पर गिरते हुए महानिर्झर से उसका मण्डल उलट गया है। इस पर ५९ स्थित वनराजि समुद्र के समीप होने से अधिक श्यामल हो गई है, समुद्र के उछले जल से उसके फूल धुल गये हैं और सूर्य का प्रखर आलोक उसके ६० ऊपर दिखाई दे रहा है। इस पर सुर-गजों का मार्ग फैला हुआ है, जब इस मार्ग से सुर-गज नीचे उतरते हैं तब भ्रमर साथ होते हैं और जब ऊपर चढ़ते हैं तब वे उनके साथ नहीं रहते, क्योंकि दूर समझ ऊँचे भाग से वे लौट आते हैं। स्थान-स्थान पर ढकी हुई प्रज्वलित अग्नि के समान ६१ रत्न छिपे हैं, जिनके निकलते हुए थोड़े-थोड़े प्रकाश से अन्धकार किंचित दूर हो गया है। ६२

पर्वतीय वनों के दृश्य

यहाँ बनैले हाथियों का युद्ध-संघर्ष चल रहा है, जिसके कारण मुड़ कर वृक्ष सूख गये हैं, उलझ कर लताएँ पूंजीभूत हो गई हैं और आपस के प्रहार सेउ नके परिघ जैसे दाँत टूट गये हैं। मन्द्राचल के चालन से ६३

---

५६. वन सूर्य के वृत्त के ऊपर है, और इस कारण इसके वृक्षों की छाया ऊपर की ओर जाती है। ५७. कटक भाग में हाथियों के दाँतों के चिह्न से उनके मुख का अनुमान लगाया जा सकता है। ५८. नन्दन वन सुवेल के इतने समीप है कि पारिजात के पत्ते झड़ कर उस पर गिरते हैं।

उछाला हुआ सागर का अमृतमय जल अब भी इसके विस्तृत मणिमय
६४ विवरों में निहित है। वज्र की नोक से खंडित पंख के शेष भाग के
समान विषम रूप से लगी पूँछोंवाले राम के बाण समुद्र-जल के संक्षोभ
६५ के कारण सुवेल के तट में लगे हुए हैं। वहाँ कुम्भ-स्थलों पर आक्रमण
करने वाले सिंहों के आयाल जंगली हाथी अपनी सूड़ों से उखाड़ रहे
हैं; और सहचरी भ्रमरी की गुंजार सुन कर उधर ही को मुड़े हुए भौंरे
६६ से आश्रित लतापुष्प उलट गया है। वहाँ दिवस के आगमन से
अचमत्कृत-सी, कुछ-कुछ सूखी हुई तथा हिम की तरह शीतल चन्द्रकांत
६७ की मणिशिलाओं पर पवन के सम्पर्क से शैवाल कुछ-कुछ काँप रहा है।
नलिनी दलों पर ढलकने वाले जलकणों जैसी कांतिवाला पारद रस
इसकी मरकत शिलाओं पर लुढ़क रहा है और उससे विचित्र प्रकार
६८ की गंध उठ रही है। प्रातःकाल वेगपूर्वक ऊर्ध्वगामी मण्डल के भार
से जिसके घोड़े आकुल हैं, ऐसा सूर्य इस पर्वत पर आरूढ़ होता है और
६९ सन्ध्या समय समतल प्रदेश को पार कर नीचे उतरता सा है। सुवेल पर,
उसके मध्य भाग के विषम प्रदेशों से बचने के लिये चक्कर काटते हुए
वनचर सामने आकाश से गुज़रती हुई तारिकाओं से प्रकाश पाकर अपने
७० रास्ते को पार करते हैं। इसके शिखर मार्ग से बिल्कुल मिलकर चलता
हुआ चन्द्र-बिम्ब, प्रियतम से विरहित किरात युवतियों के उच्छ्वास से
मलिन किया गया है और उनकी पुष्पांजलियों से उसके अग्र भाग में
७१ चोट लगती है। यह आकाश मंडल की भाँति ही ग्रह-नक्षत्रों से शोभित
है और सीमा रहित है, अपने शिखरों से प्रलय पवन के वेग को रुद्ध कर
व्यर्थ बनानेवाला है, अपने रत्नमय शिखरों की लाली से बादलों को
रक्तिम करता है और इसकी कन्दराओं के मुख में सिंहों की भीम
७२ गर्जना फैल रही है। इसमें दिशाएँ समाप्त-सी, पृथ्वी क्षीण-सी, आकाश
७३ लीन-सा, समुद्र अस्त-सा, रसातल नष्ट-सा और संसार स्थित-सा है।

६४. जिससे अमृत नहीं निकाला गया है। ६६. पुष्प चंचल हो गया है। ७१. चन्द्रमा का अग्र भाग पुष्पांजलियों से ताड़ित होता है।

भीत अरुण से लौटाये जाने के कारण जिनके आयाल नाक पर आ गये हैं और जूये के टेढ़े होने से जिनके कंधे टेढ़े हो गये हैं, ऐसे सूर्य के तुरंग इस पर प्रायः तिरछे होते रहते हैं। सुवेल पर्वत पर रात में वन के ७४
समीप नक्षत्रलोक पुष्प-समूह के समान जान पड़ता है और प्रातःकाल तारों के विलीन हो जाने पर ऐसा जान पड़ता है कि वन के पुष्प तोड़ लिये गये हैं। यहाँ रात में, चन्द्रमा के स्पर्श से प्रकट चन्द्रकान्तमणि के ७५
निर्झरों में प्लावित जंगली भैंसे अपने निःश्वास से कोमल मेघों को उड़ाते हुए अपनी निद्रा को पूर्ण करते हैं। सामने के मार्ग के अवरुद्ध होने के ७६
कारण चट्टानों की दीवारों पर तिरछे होकर चलता हुआ चंद्र-बिम्ब पर्वत के शिखर का चक्कर काटता है और उसकी किरणें कभी महासर्प की फणि-मणि की ज्योति के आघात से नष्ट-सी हो जाती हैं। पाताल तल ७७
को छोड़ कर ऊपर उमड़ा हुआ, प्रलय के समान उत्पात से कम्पित और आन्दोलित दक्षिण समुद्र इसके तट को प्लावित करता है, पर आगे बढ़ कर दूसरे समुद्रों से नहीं मिल पाता है। यहाँ अकुंश जैसे नखाग्रों ७८
से शिखर के पास आये गरजते हुए मेघों को खींचनेवाले सिंह घूमते हैं, जिनके केसर मुख पर गिरे विद्युत-वलय से कुछ-कुछ जल गये हैं। निर्झर ९७
में स्नान करने से सुखी, फिर भी धूप से व्याकुल हो जंगली हाथी अपने कंधे से रगड़े हुए हरि-चन्दन वृक्षों की छाया में बैठकर सुखी होते हैं। ८०
यहाँ सूर्य के शीघ्रगामी घोड़ों का मार्ग दिखाई देता है, इसके मध्यभाग की वन-लताओं पर घोड़ों के रोएँ गिरे हुए हैं, भ्रमर गुंजार रहे हैं और उनके उच्छ्वास के पवन से फूलों का पराग आर्द्र हो गया है। यहाँ ८१
अंजन के रंग से धूसर तथा कपोलों पर गिर कर विषम रूप से प्रवाहित, रावण द्वारा बन्दी बनायी गयीं देव सुन्दरियों के नेत्रों का अश्रु प्रवाह कल्पलताओं के वस्त्रों को मलिन बनाता है। दक्षिणायन और उत्तरायण, ८२
दोनों कालों में आकाश में आने-जाने से घिसा सूर्य का मार्ग इसके एक

---

७९. बादलों के खींचने पर बिजली उनके मुख पर आ पड़ती है।

८२. धूसर का अर्थ यहाँ मलिन है।

ही शिखर पर समाप्त हो जाता है, इस मार्ग पर वृक्षों का समूह सूख कर
८३ छिन्न-भिन्न होकर पड़ा है। इसने अपने विस्तार से पृथ्वी को भर लिया
है, रसातल को आक्रान्त कर लिया है और आकाश को व्याप्त कर चारों
८४ ओर से फैलता हुआ तीनों लोकों को बढ़ा-सा रहा है। यहाँ अपने गंध
से भौरों को आकृष्ट करनेवाले, सुन्दर-सजे, परस्पर विरुद्ध तथा नन्दनवन
का अनुसरण करनेवाले ऋतु, एक ही विशालकाय स्तम्भ में बँधे सुरगजों
८५ की तरह निवास करते हैं। निकटवर्ती रावण के भय से उद्विग्न, शिखरों
के अन्तराल में अन्तर्निहित होकर पुनः छूटा हुआ सूर्य अपने मण्डल
८६ को तिरछा करके भागता-सा दिखाई देता है। यहाँ जुगाली को भूले हुए,
किन्नरों के मन भावने गीतो से सुखी होकर खिलती सी आँखों वाले
८७ हरिणों का रोमांच बहुत देर बाद पूर्वावस्था को प्राप्त होता है। यहाँ
सरोवरों में पर्वतीयतट-प्रदेशों पर विचरण करनेवाले हंस सुशोभित हैं
तथा क्रुद्ध वन गज लड़ाई करते हैं; इस सरोवर के चन्द्रमण्डल के
समीपस्थ कुमुदवनों के विकास में सूर्य-किरणों के दर्शन से भी विघ्न
८८ नहीं होता है। मधुमथ के करवट बदलने के समय विपुल भार से चित
हुआ (बोझिल) शेषनाग, पार्श्ववर्ती पर्वतों को अपनी मणिप्रभा से
८९ उद्भासित करने वाले अपने विकट फण को इस पर्वत में लगा कर सहारा
लेते हैं। गह्वर के समान विकराल मृग-छाया वाला तथा दोनो ओर
९० किरणों को प्रसारित करनेवाला (मध्यभाग स्थित) चन्द्रमा शिखर के
निर्झरों से भिन्न मण्डलों वाला जान पड़ता है। इसके मध्य में समान
रूप से बिना अन्तर के मिले हुए तीनों भूमण्डल, त्रिविक्रम की स्थूल
९१ और उन्नत भुजाओं में तीन वलय जैसे जान पड़ते हैं। वहाँ सूखे हुए
वृक्षों से सूर्य का मार्ग, नवीन शीतल सुखद वनपंक्ति से चन्द्रमा का मार्ग
जान पड़ता है, पर वनों के बीच में क्षुद्र तारकों के मार्ग का पता नहीं

---

८३. इस पर्वत पर वर्ष के दोनों भागों में सूर्य आता है और वापस जाता है। ९०. चन्द्रमा केवल मध्म भाग तक पहुँचता है, और इसी कारण निर्झरों से वह दो मण्डलों वाला जान पड़ता है।

चलता। यहाँ सुरसुन्दरियों के कानों में पहने हुए तमाल किसलयों को, जिनकी गंध अलकों में भी लगी है, पवन अलग करता है; ये किसलय सूखने के कारण सुगन्धित हैं और शिलातल पर कुचल कर बिखर भी गये हैं। विपरीत मार्ग से आये हुए, ऊपर मुख करके झरनों के जल को पीते हुए मेघ, घाटियों से, पवन के आहत होने के कारण पुनः आकाश में जा लगते हैं। छिपे हुए जंगली हाथियों से ढहाये गये तट के आघात से मूर्च्छित सिंहों के जागने के बाद की गर्जना से व्याकुल होकर किन्नर मिथुन आलिंगन में बँध गये। और यहाँ ऊँचे तटों से गिरते निर्झरों से मुखरित कृष्ण मणि-शैलों में विहार करनेवाली सुर युवतियों का अनुराग शिथिल नहीं होता। ९२ ९३ ९४ ९५ ९६

———

९३. इन सुन्दरियों ने शिलातल पर शयन किया है।

दशम आश्वास

सूर्यास्त

इसके पश्चात् वानर सैन्य ने विश्वस्त भाव से अपने निवास स्थान की चोटियों के समान सुवेल पर्वत की चोटियों पर अलग-अलग डेरा डाल दिया, जैसे न

१ मरने पर भी रावण मर-सा गया हो। इस पर्वत को सूर्य आक्रांत नहीं कर सका, विश्वस्त रूप से पवन द्वारा यह छुआ नहीं गया, तथा देवताओं ने भी हार कर इसे छोड़ दिया, पर इस सुवेल के शिखरों का वानरों ने मृदन

२ किया। राम ने लंका की ओर शत्रु-नगरी के कारण रोषयुक्त तथा सीता-

३ निवास के कारण, हर्षयुक्त, दृष्टि इस प्रकार डाली मानों वीर तथा रौद्र दोनों रसों से आन्दोलित हो। तब राम के आगमन का समाचार सुन-कर क्रुद्ध हो उठा रावण धैर्यहीन होकर, आक्रांत शिखरों वाले सुवेल

४ के साथ ही काँप उठा। इतने समीपवर्ती वानर सैन्य के कोलाहल से क्रुद्ध रावण के भयंकर दृष्टिपात को, जिससे उसके समस्त परिजन दूर

५ हट गये हैं, दिन छोड़-सा रहा है। कमलिनी को खींचते हुए, ऐरावत की कमल के केसरों से धूसरित सूँड़ (कर) के समान, दिवस की कान्ति को खींचते हुए सूर्य का हरिताल का-सा पीला-पीला किरण समूह संकुचित

६ हो रहा है। अस्पष्ट स्पर्शों वाली, क्षीण होते हुए आतप में दीर्घाकार

७ हुई तथा खींचकर बढ़ाई हुई-सी वृक्षों की छाया क्षीण सी हो रही है। हाथी के सेन्दूर लगे मस्तक की-सी कान्तिवाला, समुद्र-मंथन के समय मन्दर पर्वत के गैरिक से रंग उठे नागराज वासुकि के मंडल की तरह

८ गोल सूर्य का मंडल विद्रुम की भाँति किंचित लाल-सा दिखाई दे रहा है। दिन की एक हल्की आभा शेष रह गई है, दिशाओं के विस्तार

१. निर्द्वंद्व होकर वानरों ने वहाँ डेरा डाला। ५. क्रोध के कारण परिजन रावण के सामने से हट गये। संध्या हो रही थी।

क्षीण से हो रहे हैं, महीतल छाया से अंधकार पूर्ण हो रहा है और पर्वतों की चोटियों पर थोड़ी-थोड़ी धूप शेष रह गई है। धूल रहित ऐरा- ९
वत की भाँति, रजरूपी आतप से रहित दिवस के अस्ताचल पर जा पहुँचने पर, गिरते हुए धातु-शिखर की तरह सूर्य बिम्ब गिरता-सा दिखाई दे रहा है। जब दिन अस्त हो गया, तब धूप के क्षीण होने के कारण १०
कान्तिहीन तथा मकरन्द पीकर मतवाले भौंरों के चलायमान पंखों से जिनका मधुरस पोंछा गया है, ऐसे कमलों के दल मुँद रहे हैं। वानरों के ११
पैरों से उठी धूल से समाक्रांत अस्त होता सूर्य और नाश निकट होने के कारण प्रतापहीन रावण समान दिखाई पड़ते हैं। सूर्य का आधा १२
मण्डल पच्छिम सागर में डूब-सा रहा है, शिखर आदि उच्च स्थानों पर धूप बची है; और वह पृथ्वीतल को छोड़ता हुआ विवश आकाश में बहता हुआ-सा क्षीण होकर पीड़ित हो रहा है। बनैले हाथी द्वारा उखाड़ १३
गिराये हुए वृक्ष की भाँति, दिन से उखाड़े और औंधे पड़े सूर्य का किरण समूह, शिफा-समूह की तरह ऊपर दिखाई पड़ता है। फिर दिन का १४
अवसान होने पर रुधिरमय पंक-सी संध्या-लाली में सूर्य इस प्रकार डूब गया, जैसे अपने रुधिर के पंक में रावण का शिर-मंडल डूब रहा हो। १५
भ्रमरों के भार से झुके हुए तथा पके केशर के गिरते हुए परिमल कणों से भारयुक्त कमल के दल सूर्यास्त होने पर, एक दूसरे से मिले हुए भी अलग-अलग जान पड़ते हैं। पश्चिम दिशा में विस्तार से फैला हुआ १६
किरणों का धूल धूसरित प्रभा-समूह काल के मुख द्वारा दिवस के घसीटे जाने का मार्ग-सा जान पड़ता है। सूर्य का मण्डल ऊपर से खिसक १७
पड़ा है और उसके पृथ्वीतल में विलीन हो जाने पर उछलते हुए आतप से रक्ताभ सन्ध्या की लाली में बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े निमग्न हो गये हैं। मेरु के पार्श्व भाग में लगे कनकमय पंक के कारण और भी १८
लाल, अस्ताचल के शिखर पर संध्या का राग, टेढ़े होकर घूमते सूर्य रथ

१४. पेड़ जब उखड़ कर गिर पड़ता है, तब उसकी जड़ों का समूह ऊपर आ जाता है। १५. भविष्य का संकेत है।

१६ से गिर कर फहराते हुए ध्वज की तरह जान पड़ती है। धवल और किंचित लाल, हाथी के रक्त से भीगे सिंह के आयालों की आभा वाला, सन्ध्या की अरुणिमा से रंजित कुमुद समूह, पवन के आन्दोलन से चपल
२० हो विकसित हो रहा है।

अंधकार प्रवेश दसों दिशाओं को धूसरित करने वाली, अंधकार से मुक्त दिन डूबने के समय की छाया, जिसमें कहीं-कहीं संध्या राग लगा-सा है, अस्पष्ट-सी लम्बी होती जाती
२१ है। सन्ध्या समय के आतप से मुक्त, जलकर बुझे हुए अग्नि के स्थान की तरह डूबे हुए सूर्य वाला आकाश तल, प्रलयकाल का रूप धारण कर
२२ रहा है। दिन के बचे हुए प्रकाश के समाप्त हो जाने पर, जिनका प्रकाश सन्ध्याराग से अब तक रुका हुआ था ऐसे दीप, अंधकार के बढ़ जाने
२३ से और ही शोभावाले होकर प्रकाश फैला रहे हैं। चकवा-चकवी का जोड़ा बिछुड़ गया है, उनका प्रेम का बन्धन टूट-सा गया है, उनका एकमात्र सुख नदी के दोनों तटों से दृष्टि मिलाना मात्र रह गया है और उनका
२४ जीवन हुंकार मात्र पर निर्भर है। तभी सन्ध्या के विपुल राग को नष्ट कर तमाल गुल्म की भाँति काला-काला अंधकार फैल गया, जैसे स्वर्णिम तट-खंड को गिरा कर कीचड़ सने ऐरावत हाथी के देह खुजलाने का स्थान
२५ हो। सर्वत्र समान रूप से फैला हुआ अंधकार दृष्टि प्रसार का अवरोध करता हुआ निकट में विरल, थोड़ी दूर पर अधिक तथा अधिक दूरी पर
२६ और भी घना प्रतीत होता है। वृक्षों की स्थिति का भान उनके फूलों की गंध मात्र से हो रहा है, क्योंकि उनकी विस्तृत शाखाओं में अविरल अंधकार व्याप्त है, अंधकार से व्याप्त होकर मनोहर पल्लव मलीन हो गये हैं
२७ और फूल पत्तों में स्थित भर (अन्तर्निहित) हैं। सूर्यास्त के अनन्तर प्रलय काल के समान, घोर अंधकार फैल रहा है, दिशाओं की भिन्नता दूर हो गई है, समीप के लिये भी आँखों का प्रकाश व्यर्थ-सा है, और
२८ पृथ्वीतल का केवल अनुमान मात्र सम्भव है। अंधकार चारों ओर फैल

---

२८. पृथ्वीतल का अनुमान अथवा साक्षात्कार स्मृति या दीपालोक

रहा है, यह उन्मील योग्य होकर भी दृढ़ है, खने जाने योग्य होकर भी अत्यधिक सघन है, भित्ति आदि की भाँति दृढ़स्थित है तथा घना (गठित) होने पर भी चन्द्रमा के द्वारा भेद्य है। पृथ्वीतल में सघन होकर व्याप्त अंधकार समूह उसका वहन-सा कर रहा है, पीछे से, प्रेरित-सा कर रहा है और ऊपर स्थित होकर जगत् को बोझिल-सा कर रहा है। २९ ३०

चंद्रोदय

काली शिला से भिन्न जलकणों की तरह श्वेत, पूर्व दिशा को किंचित आलोकित करता हुआ उदयाचल में अन्तरित चन्द्र किरणों का क्षीण-सा प्रकाश अंधकार से मिला हुआ दिखाई दे रहा है। भूतल के एक भाग में शशि किरणों से मिटते हुए अंधकार वाली पूर्व दिशा प्रलय काल में धूम्र रहित अग्नि में जलते सागर की तरह प्रत्यक्ष हो रही है। बाल चंद्रमा के कारण धूसर पूर्व दिशा में चन्द्र के क्षीण आलोक के पश्चात् उदयाचल पर ज्योत्स्ना बिखर रही है और अंधकार को दूर कर निर्मल प्रकाश फैल रहा है। नव मुकलित कमल के भीतरी भाग की तरह किंचित ताम्रवर्ण का चंद्रबिंब केसर के समान सुकुमार किरणों को फैला रहा है, लेकिन समीपवर्ती अंधकार को विरल ही करता है, नष्ट नहीं कर पाता। उदित होने के अनन्तर पश्चिम की ओर मुख करके स्थित ऐरावत के दाँतों के खण्ड की तरह वर्तुल चंद्र मंडल उदयगिरि शिखर पर स्थित अंधकार को मिटा कर धवल आभावाला हो गया है। चंद्रकिरणों द्वारा अंधकार के नष्ट होकर तिरोहित हो-जाने पर आकाश में तारक समूह मलिन हो गया है, और इस प्रकार आकाशफूलों से बिछे हुए नीलमणि के शिलातल की भाँति जान पड़ता है। वृक्ष चंद्र किरणों से कुछ-कुछ मिल कर, अंधकार के धोये जाने के कारण कुछ धूसर आभा वाले हो गये हैं, उनकी पतली शाखाएँ प्रकट हो गई हैं तथा कुछ छाया का मंडल ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६

आदि से सम्भव है। ३०. संसार स्थित वस्तुओं से यहाँ तात्पर्य है।

३७ बाँधे खड़े हैं। चंद्रबिंब ने अपनी सबल किरणों से (स्थैर्यप्राप्त) अंधकार को उखाड़ फेंका है और अपने उदयकालीन मुग्ध भाव को छोड़ कर
३८ प्रौढ़ तथा धवल रूप में नभ को पार करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। चंद्रमा ने पूर्ववत् बिखरे हुए शिखर समूह, फैले हुए दिशा मंडल तथा व्यक्त हुए नदी प्रवाह वाले पृथ्वीतल को मानों शिल्पी के समान अंधकार
३९ में गढ़ कर उत्कीर्ण-सा कर दिया है। चंद्रमा की किरणें, अंधकार समूह के प्रचुर होने पर भी अलग-अलग स्थिर की हुई वृक्ष छायाओं का नाश
४० करने में असमर्थ हैं, फिर भी उनके चारों ओर घेरा डाले पड़ी हैं। चंद्र तो कुमुद में (भौंरों के प्रवेशार्थ) छिद्र मात्र करता है, पर खुलते हुए दलों वाले कुमुद को, एक दूसरे की अपेक्षा न करने वाले भौंरे कर-
४१ चरण आदि के आघात से पूर्णतः विकसित करते हैं। क्या अंधकार समूह को चंद्रमा ने पूरी तरह पोंछ डाला? या अपने स्थूल करों से एक साथ ही ढकेल दिया? अथवा खंड-खंड कर डाला? या चारों ओर बिखेर
४२ दिया? या निर्दयता से पी डाला है? चंद्रमा के प्रकाश ने, घनीभूत कीचड़ के समान, हाथ से पकड़ने योग्य सघन, तथा दिशाओं को मलिन करने वाले अंधकार को उखाड़ कर मानों आकाश का मुंडन कर दिया
४३ है। कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देनेवाले सुन्दर पल्लवों के वनों को चाँद ने व्यक्त-सा कर दिया है, और वृक्षों की शाखाओं के रंध्रों में किरणों का
४४ प्रकाश छा रहा है जिससे वन का दुर्दिन रूपी अंधकार मिट गया है। वृक्षों के फूलों को मृदित करने वाले, दिग्गजों की निकलती हुई मदधारा
४५ तथा कमल वनों का आस्वादन करनेवाले भौंरे कुमुद कोषों पर टूट रहे हैं। चंद्रमा का किरण समूह, सरोवर का पानी पीते समय दिग्गज की

---

३७. चन्द्र प्रकाश में आकार का आभास कुछ-कुछ मिलने लगता है। पतली शाखाएँ जाल के समान जान पड़ती हैं, उसीका यहाँ संकेत है। ३९. शिल्पी की व्यंजना अंतर्निहित है। ४३. केश रहित अर्थात् धवल कर दिया है। ४४. किरणें पत्तों के बीच पड़ रही हैं, ऐसा भी अर्थ लिया जा सकता है।

सूड़ की तरह दीर्घाकार होकर नीलमणि के फर्श पर लटकता-सा है। ४६
चन्द्र रूपी धवल सिंह द्वारा अंधकार समूह रूपी गज समूह के भगा दिये
जाने पर, उनके कीचड़ से निकले पंकिल चरण चिह्नों जैसे भवनों के
छाया समूह लम्बे-लम्बे दिखाई दे रहे हैं। तिरछे भाग से ऊपर की ओर ४७
चन्द्रमा का बिम्ब बढ़ता जा रहा है, उसकी किरणें गवाक्षों से घरों में
प्रविष्ट होकर पुनः बाहर निकल रही हैं, और वह गुफाओं के अन्धकार
को विच्छिन्न कर रहा है तथा छाया के प्रसार को सीमित कर रहा है। ४८
ऊपर के झरोखे से घर के भीतर प्रविष्ट ज्योत्स्ना, पुंजीकृत चूर्ण के रंग
तथा कुछ-कुछ पीले वस्त्र के समान अभ्रक की आभा जैसे दीप-प्रकाश
से मिलकर क्षीण-सी हो गई है। रात्रि के व्यतीत होने के साथ किंचित ४९
विकास को प्राप्त, गाढ़ी प्रतीत होने के कारण हाथ से हटाये जाने योग्य
ज्योत्स्ना से बोझिल कुछ-कुछ खिला हुआ कुमुद अपने भार से फैले हुए
दलों में काँप रहा है। चन्द्र किरणों से घिरे हुए वृक्षों की चोटियाँ पवन ५०
से काँप रही हैं, डालियों के ऊपर-नीचे जाने से उनकी छायाएँ काँप रही
हैं; ऐसे वृक्ष ज्योत्स्ना के प्रवाह में पड़ कर बहते-से जान पड़ते हैं। ५१
दीपों की प्रकाश किरणों से कम हुई, जल में घिसे चन्दन जैसी कान्ति
वाली ज्योत्स्ना शाखादि के अन्तराल में स्थित अंधकार को दूर करती
हुई विषम-सी (नतोन्नत) जान पड़ती है। घनीभूत चन्द्रिका से अभिभूत ५२
आकाश अपनी नील आभा से रहित है, उसमें चन्द्रमा चन्द्रिका प्लावित
हो रहा है और फैली हुई किरणों से तारे क्षीण हो गये हैं। आकाश के ५३
मध्य में स्थित चन्द्रमा द्वारा स्पष्ट शिखरों वाले पर्वतों का छाया मण्डल
हर लिया गया है, उनके नीचे के तट-भाग दिखाई दे रहे हैं और वे ५४
धवल-धवल जान पड़ते हैं। जिन स्थलों में वृक्षों की छाया के कारण

---

४८. चन्द्रमा ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता जाता है त्यों-त्यों वस्तुओं की छाया कम होती जाती है। ५२. भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अंधकार को चचल करती है। ५५. अंधकार के कारण गड्ढे जान पड़ते हैं और चाँदनी के कारण विवर समतल स्थल जान पड़ते हैं।

अन्धकार फैला है, वहाँ विवर जान कर कोई नहीं जाता, और ज्योत्स्ना
५५ से भरे विवरों में प्राणी विश्वस्त होकर घुस जाते हैं।

निशाचरियों का संभोग वर्णन

इस प्रकार, जिस प्रदोष काल में चक्रवाक मिथुन काम पीड़ा से जागते हुए नदी के दोनों तटों पर खिन्न हो रहे हैं तथा कमलों के मुद जाने पर भ्रमर दुःख पीड़ित
५६ हैं, वह व्यतीत हो गया। इस समय राम के आगमन से बढ़े हुए आवेग वाले काम के वशवर्ती विलासिनियों के हृदय सुरत
५७ व्यापार की अभिलाषा भी करते हैं और त्याग भी। जिसका आस्वादन कामवश प्राप्त होकर पुनः भय के कारण नष्ट हो जाता है तथा जिसका उमड़ता हुआ काम सुख आवेग के कारण विलीन होता है, इस प्रकार सुरति रस को विघटित और संस्थापित करने वाला प्रेमिकाओं का
५८ प्रेमी-जनों द्वारा किया जाता चुम्बन गुप्त नहीं हो पाता है। लंका की युवतियों का समूह उच्छ्वासें लेता है, काँपता है, तड़पता है, शय्या पर अशक्त अंगों को पटकता है; पता नहीं चलता कि वे कामपीड़ित हैं अथवा
५६ भयभीत। भावी समर की कल्पना से कातर राक्षस युवतियाँ अपने पतिजनों के वक्षस्थल में, आक्रमण करने वाले दिशा गजों के दाँतों के द्वारा
६० किये गये घावों को देख कर काँप उठती हैं। किंचित भ्रमर से आकुलित मालती पुष्प के समान, सुरत सुख मे अधझपीं, आकुलतावश उन्मीलित तारिकाओं वाले युवतियों के नेत्र युग्म आगत युद्ध भय की
६१ सूचना-सी दे रहे हैं। इस प्रदोष काल में चन्द्रमा ने आमोद उत्पन्न किया, मदोन्माद के कारण प्रिय के लिये अभिसार का सुख बढ़ गया, कामेच्छा के कारण मान भी नष्ट हो गया और सुरत सुख अनुराग के
६२ आधीन हो गया है। मदमाती विलासिनियों का समूह विलास में प्रवृत्त हुआ, संतापित तथा कुपित होकर भी बिना मनुहार के ही उसने हर्षित

---

५६. बीत जाने पर अर्थात् आधी रात होनेपर। ५७. भयातुरता के कारण। ६२. और ६३. का अन्वय एक साथ है, अनुवाद की सरलता के कारण अलग रखा गया है।

होकर प्रियतमों को अपना शरीर अर्पित कर दिया और उनके चुम्बन से हर्षित होकर वह सुख की साँस लेता है। रोषवश अपने अधरों को पोंछ डालनेवाली, प्रियतमों द्वारा बलपूर्वक खींचकर किये चुम्बन के कारण रोती हुई युवतियों का मुख फेर कर उपालम्भ वचन कहना, कोप की गम्भीर व्यंजना से प्रियतमजनों के हृदय को हरता है। युवतियाँ चन्द्रमा के आलोक में ठिठक कर अभिसार नहीं करती हैं, केशों को सँवारती नहीं हैं, दूती से मार्ग नहीं पूछती हैं, केवल मुग्धभाव से काँप रही हैं। राक्षसों के प्रदोष काल का आगमन सुशोभित हुआ, इसमें रामकथा का अनादर है, युवतीजनों का संभोगादि व्यापार पूर्ववत् जारी है तथा रावण द्वारा रक्षित है। नायक के समीप से आयी हुई दूतियाँ जो सामने झूठी बातें कभी कहती हैं, कामिनी स्त्रियाँ उस पीड़ा देनेवाली वार्ता की भी आवृत्ति कराती हैं। प्रणय कलह होने पर, सामने बैठे हुए प्रियतमों द्वारा लौटाई जाती हुई भी प्रणयनियों ने शय्या पर मुख नहीं फेरा, केवल उनके नेत्रों में जल भर आया। अनुनय से क्षण भर के लिये सुखी परन्तु किसी अपराध के कारण पुनः विह्वल मानिनियों के हृदय में प्रणयवश भारी-सा कोप बड़ी देर में शान्त होता है। प्रियतमों के दर्शन से नाच उठा युवयितों का समूह विमूढ़ हुआ बालों का स्पर्श करता है, कड़ों को खिसकाता है, वस्त्रों को यथास्थान करता है और सखीजनों से व्यर्थ की बातचीत करता है। प्रियतमों द्वारा आलिंगन किये जाने पर व्याकुल विलासनी स्त्रियाँ उठने के लिये हड़बड़ी करती हैं और बिना आभूषण कार्य समाप्त किये ही उनका शय्या पर जाना भी शोभित होता है। बिना मनुहार के प्रियजनों को सुख पहुँचाने वाली कामिनियाँ सखियों द्वारा एकटक देखी जाने के कारण लज्जित हुईं और इस आशंका से

६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१

६३. भय के आतंक से उनका मन शृङ्गार की ओर प्रवृत्त हुआ। ६४. चुम्बन करने पर युवतियाँ अस्वीकृति सूचक कोप प्रकट करती हैं, पर यह कोप विलास मात्र है। ६५. अनुपस्थिति से प्रिय अनुरागहीन न समझ लें। ६६. शत्रु-निवारण का उसी में अध्यवसाय किया गया है।

त्रस्त हुई कि इन युवतियों का झूठा कोप प्रियतमों द्वारा जान लिया
७२ गया। प्रियतम से अभिसार करने के मार्ग में उपस्थित विघ्नों में साथ-साथ आगे बढ़ कर मार्ग प्रदर्शित करनेवाली सखी के समान लज्जा को
७३ पहले काम दूर करता है और फिर मद पूर्णतः हटा देता है। सखीजनों के हाथों द्वारा, बिन्दी से विभूषित तिरछे मुड़े मुख को आकृष्ट कराके
७४ दूतियाँ युवतियों के द्वारा उत्सुकता के साथ पढ़ाई जा रही हैं। सखियों के समीप दूतियों को अन्य दूसरे प्रकार की बातें सिखाती हुई युवतियाँ
७५ प्रियतमों को देखकर अधीर हो कुछ और ही कह रही हैं। किसी-किसी प्रकार सामने गोद में उठाते हैं, चुम्बन किये जाने पर मुख फेर लेती हैं तथा लज्जा अथवा काम पीड़ावश अस्फुट स्वर करती हैं; इस प्रकार नवयुवतियों
७६ के साथ खेद मिश्रित सुरत युवकों को धैर्य ही प्रदान करता है। नायकजनों के सम्मुख मान छोड़ कर बैठा हुआ युवती वर्ग रूठे मन के पुनः प्रसन्न हो जाने से अपने रोमांच द्वारा अपना मनोभाव प्रियजनों पर प्रकट-सा
७७ करता है। प्रियतमों द्वारा प्रदान किये अधर का पान नहीं करतीं, न अपने अधरों को उन्नत करती हैं और न आकृष्ट अधरों को बलपूर्वक छुड़ाती ही हैं; इस प्रकार प्रथम समागम के अवसर पर परांगमुख (लज्जावश) युवतियाँ किसी-किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से रति-व्यापार को स्वीकार
७८ करती हैं। 'धैर्य धारण करो, प्रदोषकाल होने पर भी क्या वे नहीं आयेंगे?' इस प्रकार जिनके प्रियतम पहले ही ले आये गये हैं ऐसी विलासिनियाँ
७९ दूतियों द्वारा तौली-सी जा रही हैं। सुख-दुःख दोनों ही स्थितियों में सद्भाव प्रकट करनेवाली मदिरा विलासिनियों को सखी की भाँति लज्जाविहीन
८० होकर वार्तालाप करने की योग्यता प्रदान करती है। चन्द्र ज्योत्स्ना द्वारा

---

७२. लज्जा का उद्घाटन हुआ। ७४. पहले दूतियाँ प्रिय के समीप जाने के लिये प्रस्थान कर चुकी हैं, पर सखीजन उनके मुख को फिर नायिका की ओर आकृष्ट कर देती हैं। ७५. नायक एकाएक आ गया। ७९. दूतियाँ इस प्रकार उनके धैर्य की परीक्षा लेती हैं।

मद अथवा मद द्वारा चन्द्र ज्योत्स्ना विकास को प्राप्त हुई ? या इन दोनों के द्वारा कामदेव अथवा कामदेव के द्वारा ये दोनों अन्तिम सीमा तक बढ़ाये गये। इसके साथ ही प्रदोषकाल में ज्योत्स्ना, मदन तथा ८१
मदिरा—इन तीनों से, प्रियतमों के विषय में युवतियों का अनुराग बढ़ाया जाकर चरम उत्कर्ष की सीमा पर पहुँच रहा है। ८२

एकादश आश्वास

रावण की काम व्यथा

१ तब चन्द्रमा दूर कर दिया गया, रात्रि के व्यतीत होने से सब कार्य (संभोगादि) भी रुक गये और कामिनी वर्ग जाग कर सचेत हो गया, इस प्रकार प्रदोषकाल के कठोर याम बीत गये। रात्रिकाल के बीतने पर राक्षस पति रावण ने अपने दसों मुख से दीर्घ निःश्वास लिया, जिससे उसके हृदय की चिन्ता के साथ धैर्यहीनता व्यक्त हुई और जान पड़ा कि

२ दसो दिशाएँ सूनी हो गई हैं। रावण के मन में सीता विषयक वासना अब विस्तार नहीं पा रही है, वह अब चिन्ता करता है, साँसें लेता है, खिन्न होता है, भुजाओं का स्पर्श करता है, अपने मुखों को धुनता है

३ और एक सन्तोषहीन हँसी हँसता है। हरण करने के समय घुमाई जाती सीता के द्वारा स्पर्श हुए अपने वक्षस्थल को रावण भाग्यशाली मानता है, पर प्रणयिनी सीता के मुखामृत का रसास्वादन न कर पाने वाले

४ मुख समूह की निन्दा करता है। रावण का हृदय कभी व्याकुल होता है, कभी निवृत्त होकर सुस्थिर होता है, पुनः चंचल होकर विदीर्ण होने लगता है और उसमें कठिन कम्प उत्पन्न होता है; इस प्रकार रावण का

५ शासित हृदय महान होकर भी चंचल हो रहा है। तब रावण का मुख चिन्ता के कारण उलटी हुई तथा विरल रूप से फैली हुई अँगुलियों पर कुछ देर के लिये थामा गया, फिर आयास के बढ़ जाने से अश्रु-प्रवाह

६ ढुलक पड़ा; और इस प्रकार मुख कंधे पर अवस्थित हुआ। दन्त व्रण

३. भुजाओं का स्पर्श अपने रणकौशल के भाव से करता है। ४. हरण करने के समय सीता को जब रावण ने पकड़ा, तब वह उससे अलग हटने के लिये उलट गई होंगी। ५. रावण के मन में रात के आगमन से अनेक तर्क-वितर्क उत्पन्न हो रहे हैं।

से पीड़ित अधरों से निकले तथा विविध प्रकार से उच्चारित प्रियतमाओं के मधुर जयशब्द को, रावण अस्थिर चित्त होने के कारण अवज्ञापूर्वक सुनता है। रावण शय्या का त्याग करता है किन्तु फिर वांछा करता है, ७ रात्रि का अवसान चाहता है किन्तु दिन की निन्दा करता है, शयन-गृह से बाहर निकल जाता है पर प्रिय को प्राप्त करने के उपाय (स्वप्न में) के लिये आतुर मन पुनः लौट आता है। रावण यद्यपि छिपाने के प्रति ८ सतर्क है, प्रियतमाओं के सम्मुख ही उसके मुख-समूह से सीता विषयक हृदयस्थित अनेक प्रलाप निकल ही पड़ते हैं। देखते समय वह सीता ९ को ही देखता है, बातें करते समय वह उसी का नाम लेता है तथा काम के अतिरिक्त अन्य बातों की चिन्ता करते समय भी उसके हृदय में सीता की स्मृति ही बनी रहती है। निवास कक्ष के एक भाग में अस्तव्यस्त १० पड़े पुष्पों तथा उसकी उच्छ्वासों से नन्दन वन के मुरझाते हुए पल्लवों वाले उपचार से उसका आन्तरिक संताप प्रकट हो रहा है। पृथ्वी पर ११ बिछा हुआ रावण का बिस्तर उसके आकार के समान विस्तृत है, उसके भार से उसके पार्श्वभाग कुचल कर अस्तव्यस्त हो गये हैं तथा बीच का हिस्सा बहुत अधिक धँस गया है। इस शय्या पर (पुष्प तथा पल्लवों की) वह अपने हाथों को पटकता हुआ करवटें बदल रहा है। खिन्न १२ हुआ रावण का मुख समूह अपने अन्तःपुर की कामिनियों के मुखों पर विभोर होकर (चुम्बनार्थ) स्थिर नहीं हो पाता, क्योंकि दाक्षिण्य के रक्षण मात्र के उद्देश्य से वह प्रेरित है अन्यथा उसका मन सीता के प्रति उत्कंठित है। जब तक वह विलासिनियों को अपने एक मुख के हास १३ से ठगना (बहलाना) चाहता है, तब तक असह्य संताप से उसका दूसरा मुख शोकावेग के कारण मलिन हो जाता है। प्रियाओं के चातुर्य- १४

७. रावण का मन विविध चिन्ताओं के कारण अस्थिर है। ८. मन उद्विग्न होने के कारण निश्चय वह नहीं कर पाता। १३. रावण दक्षिण नायक है और दक्षिण नायक अन्य में अनुरक्त होकर भी अपनी पहली स्त्री के प्रति कर्त्तव्यपरायण रहता है। लज्जा से खिन्न है।

पूर्ण हास से युक्त सीता-प्राप्ति के निश्चय को झूठा हुआ सुन कर भी, रावण सीता में एकान्त भाव से लीन होने के कारण स्पष्ट रूप से निश्चय
१५ नहीं कर पाता है। कामिनियों के ईर्ष्या तथा मत्सर से बोझिल तथा आरोपयुक्त निन्दा के साथ बढ़ते हुए उपालम्भ तथा आलाप-कलाप को
१६ रावण किसी-किसी प्रकार टालता है। रावण द्वारा सीता का नामोच्चारण स्वरभंग के कारण अवरुद्ध होकर अस्पष्ट हो गया है और कण्ठ के बाष्पावरुद्ध हो जाने के कारण पदविन्यास अस्फुट हो गया है; इस प्रकार यह नामोच्चारण विमन हुई कामिनियों द्वारा भली-भाँति निश्चित नहीं
१७ किया जा सका। बिना बुलाये 'क्या है' ऐसा उत्तर देने वाले तथा प्रियतनाओं द्वारा अश्रुपात सहित रोषपूर्वक बिना कुछ कहे देखे गये अपने
१८ आपको रावण ने किसी-किसी प्रकार सँभाला। अन्यमनस्क होने के कारण रावण क्रोध से प्रसारित तथा समाहत हुँकार का, 'विलासजनित है' इस भ्रम से अभिनन्दन करता है तथा अन्तःपुर की कामिनियों के पूर्णतः फड़कते हुए अधर और ओष्ठों वाले अवलोकन का भी अभि-
१९ नन्दन करता है। रावण सीता की कल्पना से आसन छोड़ कर उठ बैठता है, पर निराश होकर फिर लौट आता है, इस पर प्रिय स्त्रियाँ कोप तथा संभ्रम के साथ उसकी ओर देखती हैं और वह बड़ी कठिनाई से
२० बहाना ढूँढ़ता हुआ अपने आप क्षण भर हँसता है। नियंत्रणहीन विरह की पराकाष्ठा में पहुँचा रावण प्रियाओं के द्वारा जाना न गया हो, ऐसी बात नहीं; जान कर उन्होंने उसकी हँसी न उड़ाई हो, ऐसी बात भी नहीं, पर हँस कर भी उसके विषय में (स्वास्थ्य आदि के विषय में) चिन्तित
२१ न हुई हों, ऐसी भी बात नहीं।

---

१६. रोने चिल्लाने को। १८. वह अपने आप उत्तर दे उठता है। २०. मूल में अन्य सब 'अप्पाणं' के विशेषण-पद हैं। २१. रावण के विषय में मन्दोदरी आदि चिन्तित भी हैं; यद्यपि उसकी दशा पर उन्हें हँसी भी आती है।

रावण के मन में तर्क-वितर्क

दोनों ओर की उच्छ्वासों से आहत अपने हाथ को आसन्नवर्ती मुख के दोनों कपोलों पर स्थापित कर, रावण ने विचार करना शुरू किया—"रात्रि के रतिव्यापार सम्बन्धी विघ्न की सम्भावनावश बिल्कुल मेरी गोद में (समीप) आये वानर सैन्य को मैं क्षमा करता हूँ। पर यह किसे शोक प्रदान करता है ? सुरत-सुख से वंचित मेरा ही हृदय तड़पता है। क्या मैं अपनी बाहुओं के बीच में, चक्कर काटते, भयवश भागते, फिर पकड़ कर खींचे गये और पीटे गये, व्यर्थ में ही चपल और मुखर समीप-स्थित वानर सैन्य को अकस्मात् ही भींच दूँ ? अथवा चन्द्रकिरणों से आहत होकर उन्मीलित नेत्रों में आन्दोलित अश्रुतरंगों वाली तथा केशाकर्षण के कारण मौन तथा खिन्न मुख वाली जनकसुता का आस्वादन करूँ। पति के विरह में भी मेरे प्रति प्रतिकूल रहने वाली सीता भला पति की उपस्थिति में मेरी ओर आकर्षित होगी, कमलिनी वैसे भी चन्द्रमा को नहीं चाहती, फिर सूर्य को देख कर कैसे चाहेगी ? सीता प्रार्थना नहीं सुनती है, त्रिभुवन के वैभव से भी लुभाई नहीं जा सकती है, तथा शरीर के नाश की चिन्ता नहीं करती; वह भला मुझ पर किस प्रकार कृपा करेगी ! पति के माहात्म्य से आश्वस्त होकर पृथ्वी के निःशेष वीरों के दर्प की अवहेलना करने वाली जानकी केवल राम के कटे हुए सिर को देखकर ही वश में हो सकती है।" जो लज्जा से अपरिचित है, जिसका आशा का सम्बल रक्षण की सम्भावना के अभाव में टूट चुका है, जो पराधीन है तथा जो बान्धव जनों से हीन होने के कारण गौरवहीन है, वही व्यक्ति भयवश मर्यादा भंग करने का साहस करता है। इसके पश्चात् खेद तथा आलस्य के साथ जभाँई लेते मुख समूहों के साथ रावण की भ्रकुटियों द्वारा आज्ञा दिये गये परिजन, एक साथ ही उनके पार्श्वों में आकर उपस्थित हो गये। तब चिरकांक्षित सीता

(२२ · २३ · २४ · २५ · २६ · २७ · २८ · २९ · ३०)

२८. सिर प्रस्तुत करने की कल्पना से उसे सीता प्राप्त करने का यह उपाय जान पड़ा।

प्राप्ति के उपाय के अक्षरों से बोझिल, अपने एक हृदय में सोचे हुए विचार को, रावण एक साथ दस मुखों से भी अपने अनुचरों को पढ़ाने
-३१ में समर्थ नहीं हुआ। आदेश वचन को रावण के किसी मुख ने प्रारम्भ किया, पर अन्य ने हर्षवश कहना आरम्भ कर स्वरभंग के कारण पूरा नहीं किया (वचन को खंडित कर दिया); किसी अन्य मुख ने आधा कहा
-३२ और दूरे किसी ने किसी-किसी प्रकार समाप्त किया। इतना कहने के बाद, शोक प्रकाशित करते हुए रावण ने एक हृदय को संतापित करनेवाली, पर दस कण्ठों में पड़ने के कारण हल्की होती गहरी साँस
३३ ली; ऐसा जान पड़ा अन्तस्ताप की धूमरेखा मुख पर डोल रही हो। पृथ्वीतल पर दोनों हथेलियों को रखने के कारण तिरछे स्थित नितम्ब पर अपने देह के आधे भाग को सँभाले हुए तथा आज्ञा पाने के साथ ही
३४ उत्तर देते हुए राक्षसों से रावण ने कहा—"हे राक्षसो, शत्रु को देखने से भयावह रूप से कुटिल भाव लिये स्थिर नेत्रों तथा विरह के कारण
-३५ पीले मुख वाले मायारचित राम के कटे सिर को सीता को दिखाओ।" तब जैसे क्रोधवश दोनों भौहैं तन कर मिल गई हों तथा ललाट की तरंगित रेखाएँ उभर आई हों, ऐसे राम के सिर को राक्षसों ने उसी समय बिल्कुल जैसा का तैसा निर्मित कर दिया, मानों काट कर ले आया
३६ गया हो। पूर्ण रूप से प्रचारित रावण की आज्ञा में संलग्न तथा संभ्रम के साथ डग भरने के कारण भयावह रूप से ऊँचे उठे राक्षस तब लज्जा
-३७ के कारण किसी-किसी प्रकार प्रमद-वन की ओर चले। राक्षस उस प्रमद-वन में जा पहुँचे, जिसमें हनूमान द्वारा फूटी वावलियों के मणि तटों के विवरों में कमल कलियाँ खिल गई हैं तथा उनके द्वारा भग्न किये गये
-३८ वृक्षों में बाल किसलय निकल आये हैं। राक्षस सीता को देख रहे हैं, जिसने (भय और आशंकावश) मुख पर रखी हुई हथेली को हटा कर

---

३४. राक्षस रावण के सम्मुख आदर प्रदर्शन के लिए विशेष मुद्रा में उपस्थित हैं। ३५. कटने के कारण क्रोध का कुटिल भाव स्थिर हो जायगा। ३८. हनूमान द्वारा वन के ध्वस्त होने की सूचना सन्निहित है।

छाती पर रख लिया है और जिसके नेत्र, राक्षसों के पग चाप की ध्वनि से रावण के आगमन की आशंकावश त्रस्त हैं। ३९

सीता की विरहावस्था

सीता का वेणीबन्ध प्रिय द्वारा भेजे गये मणि से हीन होकर पीठ पर बिखरा हुआ है और उसके उन्नत स्तन कलस अश्रुप्रवाह से प्रक्षालित (ताड़ित) होकर चाँदी के समान सफ़ेद हो गये हैं। खुला होने के ४० कारण वेणीबन्ध रूखा-रूखा है, मुखमण्डल आँसू से धुली अलकों से आच्छादित है, नितम्ब प्रदेश पर करधनी नहीं है तथा अंगरागों और आभूषणों से रहित होने के कारण उसका लावण्य और भी बढ़ गया है। सीता के आयत नेत्र कुछ-कुछ खुले और मन राम में लीन होने के ४१ कारण शून्य भाव से एक टक देख रहे हैं। वानर सैन्य के कोलाहल को सुनकर उनका हर्ष का भाव अश्रुप्रवाह में प्लावित हो गया है। ४२ सीता के कपोल कुछ-कुछ रजकणों से युक्त होकर श्वेत-रक्त हो गये हैं और अश्रुकणों के सूख जाने से कठोर से जान पड़ते हैं; अंग राग के छूट जाने से धूसर वर्ण के ओठों की लाली स्वाभाविक रंग की हो गई है। कलाओं के अपूर्ण रहने के कारण लम्बा सा (जो गोल नहीं ४३ हुआ है) तथा जिसके पूर्ण होने में कुछ दिन शेष हैं ऐसे चन्द्रमा के सदृश, दुर्बल कपोलों के कारण लम्बे लगने वाले मुख को सीता वहन करती हैं। सीता के आभूषण पहनने के स्थान शेष देह की कान्ति की ४४ अपेक्षा विशेष प्रकार की कान्तिवाले हैं, गोरोचन के लगे होने के कारण इनकी आभा भिन्न प्रकार की जान पड़ती है, और दुर्बल दिखाई देते हैं। प्रियतम समीप ही स्थित हैं, इस कारण देखने की चाहना से ४५ नेत्र चंचल (उत्कंठित) हो रहे हैं और प्रिय के आलिंगन की लालसा

४०. बालों को ऊपर बाँधकर निचले भाग को खुला पीठ पर छोड़ दिया गया है (वेणी)। ४२. सीता की दृष्टिपथ में कोई वस्तु नहीं है। आशाजनित सम्भावना स सीता के आनन्दाश्रु निकल पड़े हैं। ४३. वाहविन्दु ट्ठाणम का अर्थ कपोल लिया जा सकता है।

से फड़कती हुई बाहु लताओं वाली सीता, रतिकाल में एक ही शय्या
४६ पर स्थित मानिनी के समान खिन्नमना हो रही है। चन्द्रमा के असहन-
शील दर्शन से दूनी उत्कण्ठा हो जाने के कारण सीता के अंग निश्चेष्ट
हो गये हैं; जीवन हानि की आशंका से उसके स्पन्दनहीन हृदय को
४७ राक्षसियाँ अपने हाथों से छू रही हैं। सीता का मुख, अश्रुजल से भीगने
के कारण बोझिल तथा लम्बे केशों से आच्छादित है और उसका एक
पार्श्वभाग प्रिय द्वारा प्रेषित अंगुलीय (अंगूठी) में जटित मणि की प्रभा
४८ से स्पष्ट हो रहा है। निकट भविष्य के युद्ध के कारण सीता अन्यमनस्क
है, राम के बाहुओं के पराक्रम के परिचय से उनके मन का सन्ताप
शान्त हो गया है तथा रावण की कल्पना से (पता नहीं क्या होगा)
४९ ऐसा सोच-सोच कर वह व्याकुल होती हैं। सीता कल्पना में सम्मुख
उपस्थित हुए राम को देख कर लज्जित होती हैं, लज्जित होने के कारण
आँखें झँप जाती हैं, आँखों के झँपने पर हृदय प्रिय-दर्शन के लिए
उत्सुक हो उठता है और उत्सुक हृदय के कारण उन्मीलित नेत्रों के
५० सामने प्रिय के ओझल हो जाने पर वह व्याकुल हो जाती है।

मायाजनित राम शीश को देखकर सीता की दशा

सीता की करुण दशा को देखकर राक्षस विस्मृत हुए पर (रावण के भय वश) उन्हें कर्त्तव्य का स्मरण आ गया, पर वे सीता के समक्ष मायामय राम के सिर को उपस्थित करने में कातर भाव से
५१ उपस्थित हुए। फिर उन्होंने सीता के सम्मुख काटने
से निकले माँस से वेष्टित राम के मुख मण्डल तथा कटे हुए बायें हाथ
५२ में स्थित उनके धनुष को रखा। उस सिर को देखते ही सीता म्लान मुख
हो गई, समीप लाये जाने पर काँपने लगीं, और जब राक्षसों ने कहा

४६. **सीता को राम के सागर पार आ जाने का समाचार मिल गया है। मान के कारण नायिका नायक से विमुख हो रही है। ४८. मूल में 'सीता वहन करती है' इस प्रकार है। ४९. रावण को अजेयता का वर प्राप्त है।**

कि यह राम का सिर है तब वे मूर्च्छित हो गईं। जानकी जब गिर पड़ीं, तब मूर्च्छा के कारण हाथ के शिथिल होकर खिसक जाने पर, उनका पाण्डुर कपोल कुछ उत्फुल्ल जान पड़ा, और बाँयें कुच के भार से दाहिना कुच विशेष (उन्मुक्त) ऊँचा हो गया। बन्धुजनों की मृत्यु ५४ पर बन्धुजन ही अवलम्ब होते हैं, इसी कारण पृथ्वीपुत्री सीता कठिन शोक से चक्कर खाकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर ही गिरीं। सीता ने आँसू ५५ नहीं गिराये, मायारचित राम का कटा सिर उनके द्वारा देखा भी नहीं गया; केवल मूर्च्छा आ जाने के कारण जीवन-रहित होकर शाखा-हीन-सी पृथ्वी पर गिर पड़ीं। सीता के मुख पर क्षण भर के लिये निःश्वास ५६ रुक गया, मूर्च्छा की अचेतना के कारण कान्ति श्यामल हो गई, पलकें कुछ-कुछ खुली रह गईं और मूर्च्छा के कारण पुतलियाँ उलट गईं। ५७ मूर्च्छा के कारण आँखें मूँदे हुए जानकी ने वियोग जनित पीड़ा को भुला कर राम मरण के महाकष्ट से तत्क्षण मुक्ति पा सुख ही प्राप्त किया। ५८ स्तनों के विस्तार के कारण सीता के वक्षस्थल में अधिक आवेग से उठा हुआ उच्छ्वास किंचित भी नहीं जान पड़ता है, केवल काँपते हुए अधरोष्ठों से ही सूचित होता है। थोड़ी-थोड़ी साँस लेती हुई, मूर्च्छा के ५९ बीत जाने पर भी, अचेत-सी पड़ी सीता ने सतत् प्रवाहित अश्रुजल से भारी और कष्ट के कारण चढ़ी हुई पुतलियों वाले नेत्र खोले। सीता ६० ने कटे हुए राम के सिर को देखा—वेग से गिरी हुई काँती (खड्ग) के आघात से वह तिरछा कटा हुआ है और उसमें अपाग, कानों तक धनुष की प्रत्यंचा के साथ खिचे हुए बाणों के पुंखों की रगड़ से श्यायाम ६१ हो गये हैं। निःशेष रूप से रक्त के बह जाने के कारण पाण्डुर और संकुचित मांस से कण्ठनाल का छेद बन्द हो गया है तथा कण्ठ से लग

५४. कपोल पर हाथ रखने से वह दबा हुआ था, हाथ के हट जाने से उसकी कोमलता कुछ उभर आई। ५६. मूल में 'विसण्णा' है जिसका अर्थ स्थित होने के साथ संज्ञाहीन होना भी है। ५८. राममरण की कल्पना से उत्पन्न पीड़ा।

६२ कर टूटे हुए खड्ग की धारा के लौह-कण प्रहार-स्थल पर लगे हुए हैं। निर्दयता के साथ (क्रोध के कारण) चबाये हुए अधर पर हीरे के समान दाँत कुछ-कुछ चमक रहा है और जमे हुए रक्त के पंक समूह से काला-
६३ काला कण्ठ का छेद भर गया है। राक्षसों द्वारा बालों के खींच कर लाने से ललाट पर भौंहों का तनाव मिट चुका है, खून बह जाने के कारण हल्का हो गया है और निष्प्राण हो जाने से पुतलियाँ उलट गई
६४ हैं। इस प्रकार के मायारचित राम-शीश को सीता देख रही हैं। सीता अपनी दृष्टि उसी सिर पर लगाये रहीं, उनका कपोल से हटा हुआ हाथ पूर्ववत् वक्षस्थल पर ही पड़ा रहा, केवल जीवन रहित के समान वे
६५ भूमितल पर स्तन भार से निश्चेष्ट पड़ी रहीं। मूर्च्छा से सचेत होकर सीता ने 'यह क्या ?' ऐसा कह कर आकाश और सारी दिशाओं में
६६ सूनी-सूनी-सी दृष्टि घुमाई और शब्दहीन मुख से रुदन करने लगीं। माया सिर को देख कर उसकी ओर उन्मुख हुई असमर्थ तथा अचेत
६७ आत्मा आकाँक्षा करती हुई भी न वाणी पा सकी और न मृत्यु ही। अनन्तर अपने अंगों को प्रसारित कर, धूलधूसरित वेणीबन्ध इधर-उधर बिखेरती हुई सीता पुनः गिर पड़ीं और वक्षस्थल के पृथ्वी से दबने के
६८ कारण उनके स्तन चक्राकृति हो गये। पृथ्वी पर सभी अंगों को फैलाकर पड़ी हुई सीता का, सभी उदर रेखाओं के मिट जाने से विस्तृत कटि भाग, स्तन तथा जघनों (स्फीत तथा विपुल) के कारण बीच में आकर
६९ पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाता। खेद पूर्वक देखे जाने योग्य, प्रियतम के इस प्रकार मुख के, आकस्मिक दर्शन के कारण द्रवित हुआ चिरकाल तक

---

६१ से ६४ तक रामशिर के विशेषण-पद हैं। ६२. इससे कण्ठ की कठोरता व्यक्त होती है। प्रहार के समय जैसे राम ने क्रोध से अपने अधर को दाँत से काट लिया हो। ६६. इस समय सीता की मानसिक स्थिति विश्वास-अविश्वास के बीच की है। ६८. सव्वङ्गणि सण्णाद्य—समस्त अंगों को फैलाकर पट पड़ी का अर्थ लिया जायगा।

मूर्च्छा को प्राप्त सीता का हृदय अश्रुप्रवाह के साथ लौट-सा आया । ७०
तब किसी-किसी प्रकार चैतन्य हुई सीता अश्रु से भीगे कपोल तल पर बिखरे अलकों को हटाना चाहती हैं, पर उनके विह्वल हाथ अलकों तक पहुँच नहीं पाते । उसके बाद आवेग पूर्वक उठाये हुए, खेद उत्पन्न ७१
होने के कारण निश्चेष्ट तथा लड़खड़ाते सीता के हाथ पयोधरों तक बिना पहुँचे गोद में गिर पड़े । देख सकने में असमर्थ, तिरछे झुके हुए ७२
अशक्त मुख से तिरछे आननवाली विमुग्ध हृदया सीता के द्वारा राम का इस प्रकार का सिर कठिनाई के साथ देखा गया । हाथ से ताड़ित ७३
वक्षस्थल से उछले रक्त के कारण विवर्ण पयोधरों वाली सीता ने अपने शरीर से राम के दुःख के आनयन के साथ रोना शुरू किया । ७४

सीता का विलाप

—"इस दुःख का आरम्भ ही भयंकर है, अन्त होना तो अत्यन्त कठिन है । मैंने तुम्हारा इस प्रकार अवसान देखा और सहन भी किया, जो महिला के लिये बड़ा ही बीभत्स है । घर से निकलने के समय से ही प्रारम्भ ७५
तथा अश्रु प्रवाह से उष्ण अपने हृदय के दुःख को, सोचा था, तुम्हारे हृदय से शांत करूँगी, पर अब किसके सहारे उसे शांत करूँगी । तुम्हें ७६
देखूँगी, इस आशा से विरह में मैं किसी-किसी प्रकार जीवित रही और ७७
तुम इस प्रकार देखे गये ! मेरे मनोरथ तो फल कर भी पूरे नहीं होते । पृथ्वी का कोई अन्य पति होगा और राजलक्ष्मी तो अनेक असाधारण पुरुषों के विषय में चंचल रहती है; इस प्रकार का असाधारण वैधव्य तो मुझ पर ही पड़ा है। मेरा यह प्रलाप भी क्या है ? विस्तृत खुले ७८
हुए नेत्रों से मैंने देखा, और तब मैं निर्लज्जा 'हे नाथ यह तुम्हारा मुख

---

७०. सीता को अपने उद्धार में विलम्ब हुआ जान कर राम के प्रति खेद है । ७१. केश दृष्टि को रोकते हैं, इस कारण वह हटाना चाहती हैं । ७१. सीता ने छाती पीटने के लिए हाथ उठाये पर क्लेश के कारण वे काँप कर गिर गये । ७२. आणण का अर्थ मुखमण्डल है । ७६. प्रलाप करने के लिये जीना निर्लज्जता ही है ।

७६ है' यह कह कर रो पड़ी। मैंने तुम्हारा वियोग सहा और सहचरियों के समान राक्षसियों के साथ दिन बिताये, तुम्हारा मिलन हो ही जाता
८० यदि इस जीवन का अंत हो जाता। तुम्हारे दिवंगत होने पर, अनुसरण-कार्य के सुखद मार्ग के प्रशस्त हो जाने से भी मेरा हृदय रावण-वध
८१ को बिना देखे हर्ष के स्थान पर दग्ध हो रहा है। मुख अश्रुजल को रोक नहीं पाता, और आशाबन्ध हृदय को अवरुद्ध नहीं कर पाता, फिर विचार करने पर पता नहीं चलता कि जीवन को किसने रोक रखा
८२ है। आपने मेरे लिये सागर पार किया और आप का मरण भी हुआ, इसलिये, हे नाथ! आपने तो अपने कर्तव्य का निर्वाह किया, किन्तु मेरा
८३ अकृतज्ञ हृदय तो आज भी नष्ट नहीं हो रहा है। हे राम, तुम्हारे गुणों की गणना करके लोक तुम को पौरुषमय कह कर तुम्हारा उच्च स्वर से गान करेगा, किन्तु जिसने अपने स्त्री-स्वभाव का त्याग कर दिया है,
८४ ऐसी मुझ जैसी की बात भी न करेगा। 'तुम्हारे बाणों से खण्डित प्राण-हीन रावण के सिर-समूह को देखूँगी' इस प्रकार किये गये मेरे मनोरथ भाग्यचक्र द्वारा टकरा कर विपरीत रूप में पर्यवसित होकर नष्ट हो गये
८५ हैं। साधारण विरह में भी व्यक्ति स्नेहवश अपने प्रियजन के विषय में शंका करता है, पर इस प्रकार का फल (दारुण), अपने प्रिय के सिर को
८६ देखती हुई मुझ को ही मिला है।"

त्रिजटा का आश्वासन देना

इस तरह विलाप करते-करते सीता निश्चेष्ट हो गई। उनके दोनों नेत्र हृदय की व्याकुलता से शून्य से हो
८७ गये। फिर त्रिजटा हाथ से सीता के मुख को ऊपर उठा कर मधुर शब्दों में सान्त्वना देती हुई कहने लगी—"सीमातीत विषाद, पूर्ण मुग्धता तथा प्रेम अन्धे होते हैं; वैसे

---

८१. अभी तक सीता आशा के अवलम्ब पर दुःख सहते हुए भी जी रही थीं, पर अब राम-मृत्यु का समाचार पाकर मरण का पथ मुक्त हो गया है। ८६. मरणादि की शंका करने लगता है।

युवतियों का विवेक शून्य स्वभाव भी होता है जो अन्धकार से दिनकर के भयभीत होने की चिन्ता कर सकता है। हे सीता, जो त्रिभुवन ८८ का मूलाधार है, जिसने विह्वल इन्द्र द्वारा त्यक्त रण भार का वहन किया है, ऐसे पति को जानते हुए भी तुम उन्हें दूसरे साधारण पुरुषों के समान क्यों समझती हो ? बिना सागरों के जल के एकीकरण के, भली-भाँति ८९ स्थित तथा पर्वतों के कारण बिना उलटे तलवाली पृथ्वी राम के कट कर गिरे सिर को धारण करेगी, ऐसा आप क्यों विश्वास करती हैं! ९० पवन द्वारा भग्न वृक्षोंवाला तथा चन्द्रकिरणों के स्पर्श से मुँदे कमलों-वाला रावण का यह प्रमदवन श्री विहीन है, फिर राम का मरण किस प्रकार संभव है। रोइये मत, आँसुओं को पोंछ डालिये ! कंधों पर स्थित ९१ सिर का आलिंगन करके विरह के दुःखों का स्मरण करके पति की गोद में अभी रोना है। विरहवश दुर्बल तथा पीली आभावाले, क्रोध दूर हो ९२ जाने के कारण सहज अवलोकनीय तथा धनुष त्याग कर निश्चिन्त दशरथ पुत्र राम को आप शीघ्र देखेंगी। विश्वास कीजिये कि शिव ९३ द्वारा भी जिसके कण्ठच्छेद की कल्पना नहीं की जा सकती, ऐसा राम का सिर यदि छिन्न भी होता तो बालों को पकड़ कर ले जाये जाने के अपमान से क्रुद्ध होकर अवश्य टुकड़े-टुकड़े हो जाता। राम के ९४ आज्ञापालक एक वानर-वीर द्वारा विध्वस्त वृक्षोंवाले, रावण के दर्पभंग के सूचक इस प्रमदवन को देखती हुई तुम आश्वस्त होने के स्थान पर मोहग्रस्त क्यों हो रही हो ? जिससे उखाड़ कर अन्य सुरलोक स्थापित ९५ हैं तथा अभिमानी राक्षसों द्वारा पीड़ित भुवन जिसके अवलम्ब पर आश्रित है, ऐसे बाहुओं के आश्रय के बिना संसार कैसे स्थिर रह सकता है ! मूर्छा आ जाने के कारण पृथ्वी पर पतित तथा निश्चेष्ट अंगोवाली ९६ तुम इस प्रकार मोहग्रस्त हो गई हो कि 'यह राक्षसों की माया है' स्पष्ट इस बात को जानती हुई भी विषाद युक्त हो गई हो। उस ओर गये ९७

---

८९. देवासुर संग्राम के अवसर पर।

हुए राक्षसों के सामने ही जिसने सुवेल और मलय के बीच सेतुपथ का निर्माण करवाया है और त्रिकूट के शिखर पर अपना सैनिक डेरा डाल दिया है, उन राम के विषय में क्या आज भी तुम्हारा अनादर भाव
९८ है। जिसने मलय पर्वत के मध्य भागों को रौंद डाला है, जिसने महासागर के जल में स्थल के समान संचरण किया है और जिसने सुवेल की चोटी पर पड़ाव डाला है, ऐसे राघव के विषय में आज भी
९९ क्या तुम्हारा अनादर भाव है?"

सीता का पुनः विलाप और त्रिजटा का आश्वासन

तब जाकर पुनः लौट आये जीवन-व्यापार के कारण विशेषरूप से मोहग्रस्त सीता ने यद्यपि त्रिजटा का उपदेश स्वीकार नहीं किया, फिर भी वह सखी के
१०० सौहार्द्र के अनुरूप उसकी छाती से चिपट गई। नेत्रों के सम्पर्कवश संलग्न तथा कपोल के दबाव के कारण प्रवाहित, तिरछी पड़ी जानकी का अश्रुजल
१०१ त्रिजटा के वक्षस्थल पर बहा। इसके बाद आकस्मिक रूप से सीता की प्राणवायु उच्छ्वसित हो उठी तथा वक्षस्थल पर प्रलुण्ठित वेणी के अग्रभाग
१०२ से स्तनों में लगी पृथ्वी की धूल पुँछ गई, और वे बोलीं—"हे त्रिजटा, बताओ जिस सिर को देख कर मैं पहले पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गई थी,
१०३ उसी को मूर्च्छा से चेतना में आकर मैं देखती हुई भी क्यों जीवित हूँ? हे नाथ, मैंने राक्षस-गृह का निवास सहन किया और आप का इस प्रकार का अन्त भी देखा, फिर भी निन्दा से धुधुँआता हुआ मेरा हृदय
१०४ प्रज्वलित नहीं हो रहा है। तुम्हारा यह निधन पूर्णतः पुरुषोचित है और रावण ने निशाचरों के समान ही काम किया है, किन्तु चिन्ता मात्र से
१०५ सुलभ महिलाजनोचित मेरा मरण क्यों सिद्ध नहीं हो रहा है? पवनसुत के निवेदन करने पर, शीघ्रता के साथ विरह से नष्ट हुए जैसे मेरे जीवन के अवलम्ब के लिये आते हुए आप के जीवन का मैंने अपहरण कर

---

९८. विभीषणादिक राक्षसों के सामने जो राम की ओर गये हैं।

१०३. इसका क्या रहस्य है, मुझे समझाओ।

लिया।" जिसका मुख बिखरी अलकों से श्यामायित हो रहा है और वेणी-बन्ध सम्मुख आकर गले में लिपट गया है, ऐसी मोहाकुलित हृदयवाली सीता बोलने के किंचित श्रम को न सह कर पुनः पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गईं। इसके बाद, राम के वक्षस्थल पर शयन के विषय में आशाशून्य हृदयवाली सीता पृथ्वी की गोद में, ढीले होकर खुल गये वेणी-बन्ध के ऊपर की ओर आये अस्त-व्यस्त केशों के बिस्तरे पर गिर पड़ीं। सीता अपने अभिनव किसलय जैसे कोमल तथा ताड़न के कारण लाल और विह्वल हाथ से मुख नहीं साफ़ कर सकीं, केवल किसी-किसी प्रकार एक कपोल की अलकों को समेट भर सकीं। जब आँसुओं से आकुल दृष्टि सामने उपस्थित दृश्य को ग्रहण करने में असमर्थ प्रतीत होने लगी, तब सीता ने दोनों हाथों से नेत्रों को पोंछ कर अपने मुख को अश्रुहीन किया। बहते हुए पवन से अस्त-व्यस्त रूप में बिखरे अलकों से पोंछे गये अश्रुवाली सीता ने राक्षसों द्वारा काटे गये सिर को भूमि पर लुढ़कते देखा। जिसमें विषाद परिलक्षित हो रहा है तथा अधिक विस्फारित होने के कारण स्थित गोलकों वाली, राम के सिर को एकटक देखती हुई सीता की दृष्टि अश्रुओं से धुलती जा रही है, अवरुद्ध नहीं होती। फिर इस प्रकार उस सिर को देख कर त्रिजटा की ओर दृष्टि डालते हुए, मरण मात्र की भावनावाली सीता, अश्रु प्रवाह के कारण सूने नेत्रों के साथ (मुझे मरण का आदेश हो) इस भाव से (दैन्य भाव) मुस्कराईं। "हे त्रिजटे, राम-विरह के सह लेने तथा दारुण वैधव्य को हृदय में स्वीकार कर लेने के कारण मेरे स्नेहहीन तथा निर्लज्ज मरण को सहन करो!" यह कह कर सीता रोने लगीं। "सब की यह गति होती

(१०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४)

---

१०९. वक्ष-ताडन का भाव है। ११०. मूल के अनुसार मुख को पोंछे हुए नेत्रोंवाला किया—ऐसा होना चाहिए। ११४. पति के मरण के बाद इतने समय जीवित रहना निर्लज्जता ही थी, इस कारण अब मरण गौरव का विषय नहीं रहा।

है, किन्तु इस प्रकार का मरण गौरवशाली जनों के अनुरूप नहीं है।"

११५ ऐसा कहती हुई सीता वक्षस्थल को पीट कर गिर पड़ीं। अपने जीवन से लज्जित, विषाद की उग्रतावश निर्बलता के कारण हल्के-हल्के विलाप करती हुई सीता ने 'दशरथ पुत्र' ऐसा तो कहा, किंतु 'प्रिय' ऐसा न

११६ कह सकीं। अब सीता शोक नहीं करना चाहतीं, अपने अंगों पर कठोर प्रहार भी नहीं करना चाहतीं, वे अपने अश्रु प्रवाह को बहने नहीं देतीं वरन् रोकती ही हैं क्योंकि उनका हृदय मरने के विषय में निश्चय दृढ़

११७ कर चुका है। तब मरण के लिये दृढ़-निश्चय सीता से त्रिजटा ने कहना आरम्भ किया, उस समय त्रिजटा के काँपते हुए हाथों से कुछ गिरे किन्तु

११८ सम्हाले गये शरीर के कारण सीता अस्त-व्यस्त होकर झुक गई थीं। "हे सीता, मैं राक्षसी हूँ इसीलिये मेरे स्नेह-युक्त वचनों की अवहेलना मत करो। लताओं का सुरभित पुष्प चुना ही जाता है, चाहे वह उद्यान में

११९ हो अथवा वन में। सखि, यदि राम का मरण असत्य न होता, तो तुम्हारा जीवित रहना किस काम का? परन्तु राम के जीवित रहने की स्थिति में

१२० तुम्हारे मरण की पीड़ा से मेरा हृदय क्लेश पा रहा है। जिस प्रकार आपने सम्भावना कर ली है, उस प्रकार की सम्भावना तो दूर, चिन्ता भी व्यर्थ है; यदि वैसा होता तो क्या आप को साधारण जन के समान

१२१ जीवित रहने के लिए आश्वासन देना मेरे लिये उचित होता। एक वानर (हनूमान) द्वारा समस्त राक्षस-पुरी रोदन के कोलाहल से पूर्ण कर दी गई थी, फिर बिना राक्षसों के अमङ्गल के राम निधन कैसे सभव हो सकता है! 'राम मारे गये' यह गलत है, शीघ्र ही त्रैलोक्य राक्षस-

१२२ विहीन हो जायगा। मैं साक्षी रूप में कह रही हूँ, स्पष्ट रूप से विश्वास

---

११७. शत्रु अथवा अन्य का शरीर मान कर जैसे प्रहार करती हों। १२०. मरण के निश्चय से। १२२. इस समय वानर सैन्य प्रस्तुत है जो राम-निधन पर लंका को ध्वस्त कर डालती।

कीजिये। भला, अपने कुल का नाश किसी को भी प्रिय हो सकता है ?
उठिये, शोक छोड़िये। आँसू के प्रवाह से मलिन वक्षस्थल को पोंछिये। १२३
सुनो, पति के मरणोन्मुख होने पर इस प्रकार का अश्रुपात शकुन नहीं
माना जाता है। राम के अतिरिक्त किस दूसरे के द्वारा, लज्जाजनित १२४
पसीने की बूँदों से पूर्णमुख वाला रावण अपने गढ़ में रुद्ध कर निष्प्रभ
बना दिया गया है। शीघ्र ही रघुपुत्र, पसीजती हथेलियों के स्पर्श से १२५
कोमल हुए बालोंवाली तथा काँपती हुई अँगुलियों से विलीन होते
अस्त-व्यस्त भागोंवाली (तुम्हारी) वेणी के बन्धन को खोलेंगे। मैं आपके १२६
कारण इतना दुःखी नहीं हूँ, जितना राम के जीवित रहते लज्जा त्याग
कर इस तुच्छ कार्य को करते हुए रावण के पलटे स्वभाव के विषय में
चिन्तित हूँ। हे जानकी, आप राम के बाहुबल को हल्का न समझें, १२७
बालि-बध से उसके महत्व का पता चल गया था, उसने बाण के द्वारा
समुद्र को अपमानित कर उससे स्थल-मार्ग दिखलवाया और लंका की १२८
परिधि का अवरोध कर रखा है। मैंने स्वप्न में देखा है कि आप की
उठती हुई प्रतिमा सूर्य-चन्द्रमा से जाज्वल्यमान होकर शोभित हो रही
है और आपका आँचल ऐरावत के कर्णरूपी ताल-व्यंजन-सा फड़फड़ा
रहा है। और मैंने स्वप्न में रावण को देखा है कि दशमुखों की श्रेणियों १२९
के कारण उसके गले का घेरा भयानक रूप से विस्तृत हो गया है तथा
मृत्यु-देवता के पाश द्वारा आकृष्ट होने से उसके सिर जुटते, कटते और १३०
गिरते जा रहे हैं। इसलिये आप धैर्य धारण करें और अमङ्गल-सूचक
रुदन आदि बन्द करें, और तब तक यह वास्तविकता का ज्ञान हो जाने
के कारण तुच्छ अतएव अनादृत और निष्फल माया दूर हो। यदि यह १३१
इस अवस्था में भी राम का सिर होता तो परिचित रसवाले आपके हाथ
के अमृत जैसे स्पर्श के सुख को पाकर अवश्य जीवित हो उठता।" १३२

---

१२४. अगर यह प्रत्यक्ष सत्य न होता तो मैं कैसे कहती।
१२७. इस कार्य द्वारा मानों अपनी आसन्नवर्ती मृत्यु की सूचना देता है।

सीता का विश्वास

इस प्रकार राम के प्रेम-कीर्तन रूप दुःसह वज्राघात से पीड़ित हृदयवाली सीता ने राम के असामान्य प्रेम-प्रणय का स्मरण करके मरण के निश्चय के भाव १३३ से और ही प्रकार का रुदन किया। इसके बाद सीता

त्रिजटा के वचनो

से तब तक आश्वस्त नहीं हुई, जब तक उन्होने वानरों का कल-कल तथा रणोद्यम के लिये प्रेरक होने के कारण अपेक्षाकृत १३४ गम्भीर, राम के प्राभातिक मङ्गल पटह को नहीं सुना। फिर सीता ने विविध प्रकार के आश्वासनो से लौटाये गये आशाबन्ध वाला, तथा शोकविमुक्त होने के कारण उन्मुक्त और स्फीतरूप से पयोधरों को उन्नमित १३५ करनेवाला उच्छ्वास लिया। तब आश्वस्त होने के कारण सुखित और वानरो के कोलाहल से पुनः स्थापित विश्वासवाली सीता का वैधव्य १३६ दुःख दूर हो गया और पुनः विरह दुःख उत्पन्न हुआ। मायाजनित मोह का अवसान होने पर और रण के लिये उद्यत वानरों के कल-कल को सुनकर सीता ने मानो त्रिजटा के स्नेह एवं अनुराग के कथन का फल- १३७ सा (प्रत्यक्ष रूप मे) पाया।

———

१३३. शृङ्गारिक भावना से प्रेरित रुदन।

द्वादश आश्वास

प्रातःकाल

जब त्रिजटा द्वारा आश्वासन पाकर सीता का विलाप शान्त हुआ, उसी समय (त्योंही) प्रभात काल आ गया, जिसमें कमलों से उठती हुई परिमल रूपी धूल से हंस मलिन हो रहे हैं और कुमुद सरोवर किंचित मुंदे हुए कुमुदों से हरितायमान हो उठे हैं। अरुण (सूर्य सारथि) की आभा से किंचित ताम्रवर्ण, वर्षा काल के नये जल क तरह कचित मलिन चन्द्रिका के द्वारा स्पृष्ट मूल तथा गैरिक से लाल हो उठे पर्वतीय तट की भाँति रात का अन्तिम प्रहर खिसक रहा है। अरुण की किरणों से मिटती हुई चाँदनी वाले पृथ्वी तल पर विलीन होती हुई धुँधली तथा काँपती हुई वृक्षों की छाया ही जानी जाती है। कुमुद वन संकुचित हो रहा है, चन्द्र-मण्डल आधा डूब चुकने के कारण प्रभाहीन हो गया है, रात की शोभा नष्ट हो रही है और पूर्व-दिशा में अरुण की आभा से तारे हतप्रभ हो गये हैं। अंधकार से मुक्त, पल्लव की तरह किंचित ताम्र वर्णवाले अरुण की आभा से युक्त विरल मेघोंवाला पूर्व दिशा का आकाश, पिसे हुए मैनसिल के चूर्ण से चित्रित मणि-पर्वत के अर्द्ध-खण्ड की तरह जान पड़ रहा है। नव वर्षा के जल से भरे हुए, हाथी के चरण पड़ने से बने हुए गर्त्त के-से रंग वाला चन्द्रमा, अरुण के द्वारा उठाये जाने के कारण एक ओर झुक गये आकाश से खिसक कर अस्ताचल के ऊपर पहुँच गया। प्रातःकाल वन पवन से आन्दोलित हो रहा है, पक्षियों के स्फुट

१ २ ३ ४ ५ ६

---

२. मलिन चाँदनी और प्रातःकाल का प्रकाश मिल कर धुँधले हो उठे हैं ६. अरुण की किरणों से आकाश पूर्व की ओर उठ गया और पच्छिम की ओर छुक गया, और इस कारण चन्द्रमा खिसक गया।

तथा मधुर शब्द से निनादित हो रहा है, मधुकरों से गुंजारित है, और किरणों के स्पर्श से ओस-कणों के सूख जाने से वृक्ष के पत्ते हल्के हो रहे

७ हैं। अरुण से आक्रान्त होकर स्थान-भ्रष्ट चन्द्रबिम्ब अपने अंक में स्थित विपुल ज्योत्स्ना से बोझिल होकर, उखाड़ी हुई किरणों का सहारा

८ लेता हुआ अस्ताचल के शिखर से गिर गया। रात में किसी-किसी तरह प्रियतम के विरह दुःख को सह कर चक्रवाकी, चक्रवाक के शब्द करने पर उसकी ओर बढ़ती हुई मानो उसका स्वागत करने जा रही

९ हो। चन्द्रमा के सम्पर्क से अस्ताचल का पार्श्वभाग अधिक दीप्त औषधियों की शिखाओं से दन्तुरित हो गया है और उसमें अधिकता

१० से द्रवित होती हुई चन्द्रकान्तमणि की धाराएँ बह रही हैं। जिस आकाश से नक्षत्र दूर हो गये हैं और ज्योत्स्ना अरुण की किरणों से गरदनिया कर ढकेल दी गई है, वह आकाश चन्द्रमा के साथ अस्त होता है और

११ उदयाचल से उठता हुआ-सा जान पड़ता है। पति की प्राप्ति से कामिनियों के लिये प्रदोषकाल सफल था, फलप्राप्ति के कारण रात्रि का मध्यकाल भी सफल था; परन्तु विरह की सम्भावना के कारण उत्कंठित करनेवाला तथा अपूर्ण कामचेष्टा वाला प्रभात असफल-सा बीत रहा

१२ है। प्रभातकाल का सुरत विश्वास के कारण संभोग शृंगार को दीप्त करने वाला है, अधिक अनुराग के कारण इस समय तगड़ियाँ बिल्कुल खसक गई हैं और मदिरा आदि के नशे के उतर जाने के कारण औचित्य पूर्ण है, इस प्रकार यह सुरत प्रदोषकालिक सुख की अपेक्षा

१३ अधिक संयत है। थोड़ी मदिरा के शेष रह जाने के कारण अर्द्ध कमल-दल से आच्छादित-सा कामिनियों द्वारा छोड़ा गया चषक, जिसमें पान के समय की ओठों की लाली लगी हुई है, मुर्झाते बकुल पुष्प की भाँति

१४ गन्ध को नहीं छोड़ रहा है। इस समय कामिनियों के बाल बिखरे हुए

---

१२. प्रदोष रात्रि का पहला प्रहर है। आलिंगन और चुम्बन द्वारा फल मिल गया। १४. चषक में मदिरा की गन्ध, पुष्प में बकुल की गन्ध।

हैं, उलटी हुई तगड़ियों से नितम्ब अवरुद्ध हो रहे हैं, कस्तूरी आदि गन्ध आभासित हो रही है; इस प्रकार वे प्रियतमों से मुक्त होकर दुबली-सी जान पड़ती हैं। युवतियाँ प्रिय के सम्मुख से लौट कर जाने की बात बड़ी कठिनाई से स्थिर कर पाती हैं, वे जब दुःख से भूमि पर अपना बायाँ पैर रखती हैं, उस समय मोटी होने से उठाने में असमर्थ जंघाओं के कारण उनके पैर ठीक नहीं पड़ते। कमल-सरोवरों को संक्षुब्ध करनेवाला तथा सन्ध्या के आतप रूपी कुछ-कुछ ताम्रवर्ण के गैरिक पंक से पंकिल मुख वाला दिवस, स्थान-भ्रष्ट हाथी की भाँति, रात भर घूम कर लौट आया। विकसित कमल आये हुए सूर्य का अभिनन्दन-सा कर रहे हैं और उसकी अगवानी के लिये अरुण से जगायी दिवस-लक्ष्मी के चरण-चिह्नों की सूचना-सी दे रहे हैं। प्रदोष के समय समुद्र के जल में विश्वस्त होकर एक-एक करके अलग हुए शंख-शिशु प्रभातकाल में कातर हुए-से जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र प्रतिमा को इस प्रकार घेरे हैं, जैसे उनकी माँ हो। विकसित होते कमलाकरों की संचालित परिमल के कारण मधुर तथा, चिरकाल (रात्रि) तक निरोध के कारण निकलने के लिये उत्कंठित-सी गंध, अब पवन द्वारा इधर-उधर फैल कर भी कम नहीं होती। १५ १६ १७ १८ १९ २०

युद्ध के लिये राम का प्रस्थान

युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय आज्ञा लेते राक्षसों के कामिनी वर्ग के अश्रु झरने लगे और इस प्रकार मानो यह आलिंगन का सुख अपुनर्भावी हुआ। २१

इसके पश्चात् रणोद्यम के कारण राम के मन से सीता के कल्पनाजन्य समागम का सुख दूर हो गया, तथा दशमुख के प्रति वैर-भाव निभाने के लिये दिवस का आगमन हुआ। २२ विरह वेदना के कारण उन्हें नींद नहीं आ सकी थी, पर प्रातः होते ही वे प्रबुद्ध हो

---

१७. कमलों को विकसित करके। २१. आलिंगन के समय अश्रुपात अपशकुन का सूचक हुआ। २२. रात में सीता के समागम की कल्पना से अविभूत।

गये। सीता वियोग के दुःख को सहन करते राम का चार प्रहरों वाला दिन का लम्बा समय भी बीत गया, परन्तु असम होने के कारण एक
२३ रात नहीं बीती! उनकी उन्मीलित होती दृष्टि, नींद न पूरी होने के कारण झुके नेत्रों से प्रसारित होकर उस धनुष पर जा पड़ी जिस पर सारा
२४ का सारा रण का असामान्य भार आ पड़ा है। राम हृदय के आवेग की सूचना देनेवाली अपनी शिला-शय्या को छोड़ रहे हैं, जो उनके सदैव करवट लेने के कारण अस्त-व्यस्त हो गई है, जिसके फूल मुरझा गये हैं
२५ और पार्श्ववर्ती तकियों के शीर्षभाग पिचक गये हैं। तब राम ने पर्वत के समान सारयुक्त तथा गौरवशाली, निकट भविष्य में प्रिय-मिलन की सूचना
२६ देनेवाले फड़कते हुए पीवर भुजदण्डों की देर तक प्रशंसा की। और फिर वे धार्मिक कृत्य सम्पन्न कर, धनुष-संधान के स्थान से हटा कर सँभाले केशों को, शय्या पर पड़े मसले हुए तमाल पुष्प की गन्ध से वासित कर
२७ जटा-जूट बाँध रहे हैं। जिस दृष्टि से अश्रु प्रवाह हो चुका है, चिरकाल के संचित क्रोध से लाल है तथा विस्फारित पुतलियों के कारण जिसकी
२८ ओर देखना कठिन है, ऐसी दृष्टि लका की ओर लगा कर, राम विदित शक्ति तथा सीता द्वारा सूनी की गई शय्या में स्थापित धनुष को उठा रहे हैं, जिसकी नोक अनेक बार विरह की उत्कंठावश मुख समीप लाकर
२९ गिराये गये आँसुओं से गीली हुई है। तब भूमि पर स्थापित तथा बाएँ हाथ से दृढ़ता से पकड़े धनुष को राम ने अपनी तिरछी होती देह के
३० भार से झुकाकर दाहिने हाथ से प्रत्यंचायुक्त कर दिया।

---

२३. रात्रि के प्रहरों की अनियंत्रित चर्या है, और वह मान की दृष्टि से समान होने पर भी दिन के समान नहीं है। विरह के कारण रात्रि का चरण-क्षेप भारी हो जाता है। २५. सारी रात राम विकल रहे हैं, इस कारण शय्या और भी अस्त-व्यस्त है। २७. धार्मिक कृत्यों में संध्या-वन्दन आदि है। २८. यह। नेत्रों के स्थान पर दृष्टि का प्रयोग है, इस कारण एक वचन है।

अस्थिर सुवेल पर आरोपित धनुष जिसका एकमात्र रण का साधन है ऐसे राम सीता-विरह के कारण लिये गये उच्छ्वास से मन्थर तथा भारी सिर के कम्प से शत्रु को तर्जित करते हुए युद्धस्थल की ओर चल पड़े। ३१

वानर सैन्य भी चल पड़ा तब वानर सैन्य भी चल पड़ा, जिनके हाथ में उठाये पर्वत शिखरों के मिलने से आकाश में पर्वत-सा बन गया है तथा जिनकी लम्बी भुजाओं पर धारण की गई शाखाओं के कारण वृक्ष अलग-अलग जान पड़ते हैं। कवच कायर धारण करते हैं, कवच भार से वीर पुरुष क्या लाभ उठाते है? वानर वीरो के लिये अपना बल ही कवच है तथा शत्रुओ द्वार अप्रतिहत उनकी भुजाएँ ही उनके शस्त्र हैं। राम ने लंका के मार्ग के विषय में प्रवीण विभीषण के सैन्य को अपने महान वानर सैन्य का अगला भाग बनाया, क्योंकि वह लंका की रण-शक्ति से भली-भाँति परिचित है तथा माया को काटने वाले युद्ध कौशल में दक्ष है। रण के लिये उद्यत राम से बालिबध रूपी उपकार से 'कैसे मुक्त होऊँ' ऐसा सोचकर वानर-राज सुग्रीव दुःखी हुए और उनके (राम के) धनुष धारण करने पर विभीषण निशाचर वंश की चिन्ता करने लगे। राम द्वारा धनुष धारण किये जाने पर चलायमान सुवेल से सागर उछलने लगा और काँपते घर तथा परकोटे रूपी अंगों के संचलन के साथ लंका काँप-सी रही है। दुर्बल और पुलक युक्त अंगोवाली तथा अपूर्व हर्ष से पूर्ण मुख मण्डल वाली सीता राम के प्रथम संलाप के समान उनकी चाप ध्वनि को सुन कर आश्वस्त हुई। राक्षस युवतियों को मूर्च्छित करने वाला, रावण के हृदय रूपी पर्वत के लिये वज्र के समान तथा सीता के कानों को सुख देनेवाला वानरों का कल-कल नाद लकापुरी के वासियों को व्यामोहित कर रहा है। वानरों की भीषण

३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८

---

३१ सुवेल राम के चरण चाप से चंचल है। ३३. उनके बाहु शत्रु से कभी पराजित नहीं हुए। ३६ धनुष टंकार सुनकर वे राम के आगमन से परिचित हो गईं। ३८. भय और आतंक से भ्रांत हो रहे हैं।

कल-कल ध्वनि से आहत होकर वेग के साथ उछलता हुआ सागर का जल बेला का अतिक्रमण कर सुवेल से टकराता है, और जल से भरते कन्दरा रूपी मुखवाला तथा फैलते हुए जल से प्रतिध्वनित होता सुवेल भी गर्जन कर रहा है। राम के प्रथम धनुष्टंकार का निर्घोष समस्त

३९ अन्य कल-कल ध्वनियों का अतिक्रमण करता हुआ अमर्ष भाव के कारण उत्सुक मुखोंवाले रावण के द्वारा सुना जा कर देर में शान्त

४० हुआ। धनुर्निर्घोष के शान्त होने तक, राक्षस राज रावण, नगर-कोट की ओट में स्थित तथा घेरा डाल कर पड़े हुए युद्ध-वीर वानर-सैन्य को परवाह न करता हुआ अपनी नींद के स्वाभाविक रूप से पूरी होने पर

४१ ही जाग्रत हुआ। धीरे-धीरे निद्रा दूर हो रही है, शय्या के दूसरे भाग में करवट बदलने से सुख मिल रहा है, कुछ-कुछ तन्द्रा की स्थिति में होने के कारण प्राभातिक मंगल-पाठ ठीक-ठीक सुनाई नहीं दे रहा है,

४२ इस प्रकार धीरे-धीरे रावण की खुमारी (घूर्णन) दूर हो रही है। इसके बाद राम के धनुर्नाद को सुन कर क्रोध से नष्ट हुई-सी रावण की खुमारी दूर हो गयी, (क्योंकि) मदिरा का नशा नष्ट हो गया और

४३ आँखों के समूह से धीरे-धीरे लाली दूर हो रही है। आपस में एक दूसरी से गुँथी हुई अँगुलियों के कारण दन्तुरित, ऊँचे मणिमय तोरणों के समान ऊँचे उठे हुए बाहु युग्मों को, रावण तिरछा कर-करके अपनी

४४ शय्या पर छोड़ रहा है। इसके बाद राक्षस सैन्य के रणोत्साह की सूचना देनेवाला रावण का युद्धवाद्य बजना आरम्भ हो गया, जिससे भयवश

---

३९. कपि-सैन्य के समान ही। ४१. वस्तुतः वानरों का कोलाहल पहले हो रहा था, पर रावण ने उसकी परवाह नहीं की। वह राम की धनुष टंकार से जागा। ४२. मूल के अनुसार 'नष्ट होती हुई खुमारी को धारण करता है,' ऐसा होना चाहिए। ४३. 'णिहासंस' का अर्थ नींद की खुमारी लिया गया है। ४४. रावण अपनी बीस भुजाओं को संभालता हुआ उठ रहा है।

भागे ऐरावत के द्वारा भग्न बन्धन-स्तम्भ के कारण देवता उद्विग्न हो गये। ४५

राक्षस सैन्य की रण के लिये तैयारी

रण वाद्य की संकेतिक ध्वनि से जागकर राक्षस, सामने जो भी पड़ा, उसी शस्त्र को लेकर तथा गले से लगी हुई युवतियों का एक पार्श्व से आलिंगन करके अपने-अपने घरों से निकल पड़े। अकस्मात कूच के ४६ लिये रण-भेरी की आवाज़ को सुन कर, रणभूमि के लिये प्रस्थान की आज्ञा माँगी जाती प्रणयिनियों द्वारा ग्रहीत प्रियतमों के छुड़ाये गये शिथिल अधर, उनके (युवतियों के) मुख से बाहर आ रहे हैं। रणभेरी का नाद सुनने पर, प्रियतमों के कण्ठ में लगा युवतियों ४७ का भुज-बन्ध (दोनो बाँहें), लेश मात्र के भय से सुस्त-क्षेप के कारण खिसक रहा है। युद्ध पटह का रव सुन कर शीघ्रता करने वाले राक्षस ४८ युवकों के हाथ सामने पड़ने वाले आयुध को ग्रहण करने में काँप कर तिरछे हुए और वे अपने वक्षस्थल में भली भाँति सटते स्तनों वाले अपनी प्रेमिकाओं के आलिंगन से उत्पन्न सुख से अपने आप को अलग कर रहे है। प्रियतमों द्वारा कभी पहले नहीं किये गये प्रणय-भंग के ४९ उपस्थित होने पर, प्रियतमों को युद्धार्थ प्रस्थान से रोकती युवतियों का बढ़ा हुआ मान उनके भय से उद्विग्न हृदय में उद्भूत नहीं हो रहा है। राक्षस योद्धा का रणोत्साह जैसे-जैसे प्रिया द्वारा (आलिंगनादि से) ५०

---

४५. रण के बाजे को सुन कर ऐरावत ने भयभीत होकर बन्धन के खम्भ को भग्न कर डाला और भाग निकला। जिससे देवताओं में खलबली पड़ गई; इस का कारण यह भी है कि ऐरावत रावण के युद्धों से परिचित है। ४७. विदा के समय प्रियतमाएँ अपने ओठों से प्रियों के अधर पानार्थ ग्रहण किये हुए हैं पर शीघ्रता में वीर अपने अधरों को छुड़ा रहे हैं। ४८. वीर रस के उदय के कारण श्रृंगार-रस तिरोहित हो रहा है। ४९. वीर-रस तथा श्रृंगार के समानान्तर उदय के कारण राक्षस युवकों की यह विभ्रम की स्थिति हैं। ५०. प्रणय-भंग का अर्थ रति-क्रीड़ा में अन्तराल पड़ने से है। भावी अशंका से मान नहीं करती हैं।

रुद्ध होता है, वैसे-वैसे स्वामी के संभावित अपमान की कल्पना से समाहत द्वेष की भावना से बढ़ भी रहा है। प्रियतमाओं के बाहु-पाश ५१ में आबद्ध राक्षस योद्धा प्रणयानुभूति से विचलित तथा प्रेम-रागवश मुग्ध होकर भी आत्मसम्मान की भावना से कर्तव्योन्मुख किये जाकर युद्धोद्यम के पक्षपात के कारण रण-भूमि की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। देवताओं ५२ के साथ युद्ध करने की उच्चाकांक्षा वाले राक्षस वानरों को प्रतिद्वंद्विता में तुच्छ समझ कर युद्ध में कवच धारण करने में लज्जित हो रहे ५३ हैं, किन्तु तुच्छ भी शत्रु के अतिक्रमण को सहने में वे असमर्थ हैं। महोदर का कवच घाव के स्थानों पर गहरा, घावों की पट्टियों पर मुखरित तथा उसका एक भाग खिसक रहा है। वक्षस्थल पर यह ऊँचा- ५४ नीचा है पर पीठ पर ठीक जमा हुआ है। जिसका पराक्रम देवयुद्ध में देखा जा चुका है, जो राक्षस-राज रावण का चलता-फिरता प्रतिरूप है, ऐसा बाण-प्रहार में सिद्धहस्त प्रहस्त (रावण सेनापति) निर्भीक भाव से ५५ क्रम से कवच धारण कर रहा है। रावण पुत्र त्रिशर द्वारा ऊपर को उठाया हुआ कवच तीनों कण्ठों के मध्यवर्ती अन्तर के कारण छिद्रयुक्त होकर, एक साथ उठाये हाथों के कारण सीमित (से) वक्षस्थल पर ५६ भली भाँति फैल नहीं सका। मेघनाद के वक्षस्थल पर ऐरावत के दंत रूपी मुसल के प्रहार की, नवीन होने के कारण कोमल झलक है, ५७ और उस पर कवच गहरा-गहरा-सा हो कर ऊँचा-नीचा हो रहा है। भूकम्प के धक्के से महोदर का शरीर हिल गया, जिससे उसके वक्ष प्रदेश पर सिकुड़ा हुआ कवच अपने ही भार से पूरी तरह से फैल गया

---

५२. वीर तथा श्रृंगार की भावना का अन्तर्द्वन्द्व के कारण ऐसा है। ५४. पेट बड़ा है इस कारण कवच ऊँचा-नीचा है, पर पीठ पर न घाव है और न वह ऊँची-नीची है। ५६. वक्ष पर नया घाव है। मेघनाद का वक्ष अत्यन्त उन्नत है।

है। रावण-पुत्र अतिकाय की जंघाओं तक कवच देर से विस्तृत होकर ५८
फैल सका, और उसके शरीर की प्रभा से अभिभूत होकर अपनी प्रभा
से हीन वह, काले मेघ खंडो के दूर हो जाने पर नभ प्रदेश के समान
हो गया। वज्र की नोक से बन्धन काट दिये जाने से वक्षस्थल पर ५९
खुला होने के कारण ठीक बैठ नहीं रहा है तथा कन्धे दिखाई दे रहे
है, ऐसे कवच को धारण कर धूम्राक्ष खिन्न हो रहा है। चिरकाल से बढ़े ६०
हुए अशनिप्रभ के घावो के रोध के कारण फूट पड़ने पर, उसके कवच
के छिद्रो से, उत्पात मेघो से जैसे रुधिर निकले, वैसे ही रुधिर निकला। ६१
क्रोध के आवेग से निकुम्भ के फूले हुए वक्ष प्रदेश पर लोहे के छल्लों
की बनी हुई माढी (जिरह) ऊपर तानी जाने के कारण विस्तृत हुई
और सीमान्त रेखा तक दिखाई देकर वह दो टुकड़े हो रही है। रावण ६२
का मन्त्री शुक भी देवताओं के शस्त्रों के आघात को सहने में समर्थ
सुपरिच्छद नामक कवच धारण कर रहा है, किन्तु सामने उपस्थित ६३
राम के दुर्निवार बाणो के उपद्रव को नहीं जानता है। शीघ्रता में
अनुमति लेते समय कामिना के द्वारा तिरछे हो कर जो आलिंगन किया
गया, उसके अभिज्ञान स्वरूप (वक्ष पर लगी हुई) स्तन की कस्तूरी
आदि के परिमल की रक्षा करता हुआ सारण (मन्त्री) बिना कवच
धारण किये रण-भूमि को जाता है। कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ के रथ में ६४
माया से बद्ध शब्दायमान अंधकार पताका है, सिंह नधे हुए हैं और
देवताओं के रक्त से संलग्न आयाल के कारण व्याकुल सर्प लगाम के
रूप में हैं। "यह क्रोध उत्पन्न करता है, स्वामी के महान उपकार का ६५
बदला चुकाता है और शत्रु के गर्व को दूर करता है।" ऐसा सोच कर
राक्षस सैनिकों ने तलवार की मूठ पर अपना हाथ स्थापित किया। ६६

---

६०. वानरों से युद्ध करने में अपमान समझ कर। ६१. कवच की रगड़ से घाव फूट निकले। ६४. कवच बाँधने से वक्ष पर लगा हुआ परिमल मिट जायगा। ६७. वे इस उत्सुकता में हैं कि वीरगति प्राप्त योद्धा का स्वागत करें।

समर्थ राक्षस सैनिक कवच धारण करते हैं, उनसे वानरों का कल-कल सुना नहीं जा रहा है तथा युद्ध मे विलम्ब जानकर उनका हृदय खिन्न हो रहा है । देवागनाएँ विमानो के द्वारो से बाहर जाकर फिर भीतर

६७ आती है और अपने नेपथ्य (वेश-भूषा) की रचना करती है ।

जब तक युद्ध के लिए उत्कंठित राक्षस-समूह हर्षित होकर कवच धारण कर रहा है, तब तक राम द्वारा निरीक्षित वानर सैन्य एकत्र हो गया । भग्न

दोनों सैन्यों का उत्साह

६८ उपवनों के कारण उद्विग्न-सी, ध्वस्त उद्यानों, भवनों तथा द्वारों के कारण कुछ विरल-विरल-सी शोभा का उदाहरण जैसी

६९ राक्षस नगरी को वानर रौंद रहे है । राक्षसो को समीप आया जान, क्रोध में दौड़ पड़ा वानर-सैन्य, धैर्यशाली सुग्रीव द्वारा शात किये जाने

७० पर रुक कर कल-कल नाद कर रहा है। वेग से एकत्र गर्वशाली वानर सैन्य के गर्जन से (भय मुक्त हो कर) लंका के नभ प्रदेश में देवता इकट्ठे हो गये हैं और उनकी स्त्रियाँ वन्दो भाव से देखने योग्य

७१ लंका नगरी को देख रही है। युद्ध के लिए शीघ्रता करने वाले वानरो के विशाल वेग से छिन्न-भिन्न वृक्ष पर्वतों की चोटियों से खिसक कर, पहले टूटने पर भी अपनी अपेक्षा दूर निकल गये वानरो के मार्ग से

७२ बाद में गिर रहे हैं। वानर आकाशतल में उठे हुए परकोटे की आड़ में छिपी पताकाओं द्वारा हौदे आदि से रक्षित हाथियो के सजाये हुए

७३ घण्टा-बन्धों पर बैठे हुए राक्षसों का अनुमान कर रहे है । गिरते-उठते चरणों से उछलता-सा, वृक्ष टूटने के शब्द के कारण नत तथा उन्नत और पृथ्वी से प्रतिध्वनित होकर गंभीर हुआ वानर-सेना का ज़ोर-ज़ोर

---

७०. आक्रमण के लिए उद्विग्न हैं। ७१. चारों ओर से घिरी हुई होने के कारण ७२. उस के संघर्ष के वेग से वृक्ष उखड़ जाते हैं पर वे वानरों के दूर निकल जाने के बाद मार्ग में गिरते हैं ।७३. आक्रमणकारी पताकाओं की आहट से शत्रु सेना का अनुमान लगा रहे हैं ।

से बोलने का हल्ला पवन की गति के अनुसार फैल रहा है। वानरों ने ७४ मणिशिलाओं से निर्मित तटवाली परिखा को तोड़-फोड़ दिया है, जिससे जिधर को विवर मिलता है इधर पानी फैल रहा है, मानो सुवेल की चोटियो से झरने झरते हुए इधर-उधर फैल रहे हैं। रावण द्वारा रण में ७५ पराजित तथा भयभीत होकर भागे महेन्द्र के चरण चिह्न, केवल वानर सैनिकों द्वारा ही तोरण द्वार के ध्वंस के समय मिटाये गये। राक्षस नगरी ७६ में परकोटे के भीतर ही ध्वजपट बज रहे हैं तथा वानरों द्वारा आलोड़ित परिखा के जल से क्षण भर में रावण की प्रतापाग्नि बुझा दी गई है। पर्वतो के से विशालकाय तथा अविरल रूप से स्थित वानरों ७७ द्वारा घिरी लंका ऐसी जान पड़ी कि उसकी परिखा ही प्राकारों के बीच में स्थित है। इसके बाद तोरण द्वार से प्रवेश करने के लिए वानर सैन्य ७८ खिसकता हुआ विशाल रूप में वहाँ एक हो गया, फिर न अट सकने के कारण द्वार के विस्तार को नष्ट कर अपने घने स्थित समूहों द्वारा उसने लंका के प्राकार पर घेरा डाल दिया। जिन्होंने दूसरे समुद्र जैसी ७९ परिखा पर दूसरा सेतुपथ बाँधा हैं, ऐसे वानरों ने दूसरे सुवेल जैसी लंका के उत्तुंग प्राचीर को लाँघना प्रारम्भ कर दिया। वानरों द्वारा लंका के ८० आक्रात होने पर, राक्षस सैन्य कल-कल नाद करता हुआ आगे बढ़ा, जैसे प्रलयाग्नि द्वारा पृथ्वीतल के आक्रांत होने पर सागर का जल चल पड़ता है। समीपवर्ती हाथियों से आगे बढ़ने के लिए तिरछे होते तथा ८१ जुआ से जिसके कंधे के बाल टूट गये हैं ऐसे शरभों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर आरूढ़ होकर निकुम्भ शीघ्रता से युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा है। शीघ्रता में किसी-किसी प्रकार कवच धारण कर तथा ८२ समस्त वानर-सैन्य से युद्ध करने के लिये उत्साहित प्रजङ्घ (राक्षस-

---

७६. इसके पहले लंका पर शत्रु ने कभी आक्रमण करने का साहस नहीं किया था। ७८. वानर सेना लंका की खाई के पास फिर आई है। ८१. पृथ्वी की ज्वाला को शांत करने के लिए।

सेनापति) जल्दी करने के लिये धनुष की नोंक की चोट से घोड़ों को
८३ प्रेरित करता हुआ रथ पर प्रस्थान कर रहा है। पताका समूह को फहराता हुआ तथा स्वर्णमयी गृहभित्ति के समान बड़ा ही विस्तृत मुख भाग वाला मेघनाद का रथ, लंकापुरी के एक भाग के समान आगे
८४ बढ़ा। उसके रथ को जो घोड़े वहन कर रहे थे वे कभी अश्व रूप से बदल कर सिंह बन जाते हैं, क्षण भर में हाथी के रूप में दिखायी देते हैं, क्षण में भैंसे, क्षण में मेघ तथा क्षण भर में गतिमान् पर्वतों के रूप
८५ में दिखाई देने लगते हैं। आकस्मिक रूप से क्षोभ के कारण शोर मचाते हुए तथा बिना आज्ञा के (वानर सेना का प्रतिरोध करने के लिये) चल पड़े अपने सैन्य में अपनी आज्ञा का उल्लंघन भी रावण को उस समय
८६ सुखमय प्रतीत हो रहा है। शोभित हो रहे राक्षस सैन्य में योद्धाओं ने कवच धारण कर लिया है और कर भी रहे हैं, रथ युद्ध की जल्दी के कारण नधे हैं और नध भी रहे हैं, गजघटा सज्जित हुई हैं और सज
८७ भी रही हैं तथा घोड़े चल चुके हैं, और चलने का उपक्रम कर रहे हैं। प्रस्थान करते हुए राक्षस सैन्य में हाथी पर चढ़े योद्धाओं ने राम को, रथारोहियों ने वानर राज सुग्रीव को, अश्वारोहियों ने हनूमान को तथा
८८ पैदलों ने पदचारी वानर-सैन्य को युद्ध के लिए चुना। रथों के जमघट से मार्ग अवरुद्ध हैं, तोरण द्वार पर गजघटा एकत्र हो रही है, इस प्रकार राक्षस सैन्य भवनों के बीच के संकीर्ण मार्ग में व्याकुल होकर
८९ एक साथ ही आगे बढ़ रहा है। राक्षस योद्धाओं के रथ गोपुरों को बड़ी कठिनाई से पार कर रहे हैं, इनके कपाट टेढ़े होते घोड़ों की जुओं की नोंक से विघटित हुए हैं तथा जिनके द्वार के ऊपरी भाग सारथि द्वारा तिरछे

---

८५. मेघनाद मायावी है, उसके घोड़े भी मायावी। ८८. वानर सेनापति इस समय लक्ष्मण थे ऐसा माना जा सकता है, इस कारण 'सोमेत्ति' है। ८९. संकीर्ण में युद्धोत्साह के कारण धक्कम-धक्का की चिन्ता नहीं कर रहे हैं।

झुकाये ध्वजों से छुये गये हैं। दिग्गजों को पददलित करने वाली, शेषफणों ९०
को भग्न करने वाली, पाताल को दलित करने वाली महान भारशाली
राक्षस सेना के भार को, जो निकट भविष्य में ही हल्का होनेवाला है,
पृथ्वी सहन कर रही है। आगे बढ़ती हुई राक्षस सेना अपने अगले ९१
भाग से बाहर होकर फैली, बीच मे द्वार के मुख पर अवरुद्ध होकर
पिछले भाग में घनी हो गई और उसने उमड़ कर मुहल्लों के रास्तों से होकर
निकटवर्ती भवनों के प्रांगण को भर दिया है। इस प्रकार द्वार पर ९२
संकीर्णता के कारण पुंजीभूत होकर बाहर निकलने पर विस्तार पाती हुई
राक्षस सेना, एक मुख वाली कन्दरा से निकल कर समतल प्रदेश में
विस्तार के साथ बहती नदी के समान आगे बढ़ रही है। उस क्षण युद्ध ९३
भूमि की ओर प्रस्थान करते हुए योद्धाओं से रिक्त राक्षसों के घरों के
आँगन, पहले भरी हुई और बाद में रिक्त पहाड़ी नदी के तट प्रदेश के
समान हो गये। लंका को घेरने के लिए जल्दी करता हुआ वानर समूह
द्वार से निकले राक्षस यूथ को देख कर, पवन द्वारा उद्दीप्त दावानल के ९४
समान गर्जन करता हुआ आगे बढ़ा। प्रहार के लिये पैदल भाले की ९५
नोकें ताने हैं, दक्षिण तथा वाम दोनों ही पार्श्वों में घुड़सवार फैल गये हैं,
हाथी अंकुश मुक्त कर दिये गये हैं तथा रथों के घोड़ों की लगामें ढीली
कर दी गयी हैं, इस प्रकार राक्षस सैन्य आगे बढ़ता ही जा रहा है। ९६
इसके बाद (राक्षसों को देख कर) अडिग धैर्यवाले वानर योद्धाओं में
एक साथ ही वेग आविर्भूत हुआ और उन्होने एक साथ पृथ्वीतल पर
लम्बा चरण क्षेप किया; इस प्रकार के वानर वीरों की मण्डलाकार
होकर लंका की ओर कूच करने वाली सेना खड़ी है। क्रोधपूरित योद्धा ९७
शत्रुपक्ष के योद्धाओं को ललकारते ही नहीं वरन् उनके द्वारा ललकारे

---

९०. नगर द्वार पर राक्षस सेना एकत्र होकर घनी हो गई है। ९२. राजमार्ग पर भीड़ हो जाने पर सेना का पिछला भाग दूसरे मार्गों में उमड़ पड़ा है।
९७. आक्रमण करने के लिये सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा में है।

भी जाते हैं, युद्ध करने का अहंकार करने वाले योद्धा शत्रु पक्ष के योद्धा
९८ का वध करते हैं और मारे भी जाते हैं।

---

९८. युद्ध प्रारम्भ हो गया है।

त्रियोदश आश्वास

आक्रमण : युद्ध का आरम्भ

अनन्तर आगे निकलकर बढ़ते हुए, मिल कर एकत्र होते हुए तथा आगे बढ़-बढ़ कर राक्षसों और वानरों ने गौरवशाली रणयात्रा सुलभ (प्रहार) सिंहनाद (के साथ) किया और सहा भी। १ विपक्षी वीर द्वारा गिराये गये अग्रगामी सैनिक के मृत शरीर पर चरणों को रख कर प्रस्थान के लिये जल्दी करते हुए योद्धा एक-दूसरे के निकट हो-हो कर प्रहार की इच्छा से आवश्यकतानुसार पीछे खिसक गये। २ युद्धि-भूमि में राक्षस सैनिकों ने जैसा हृदय से निश्चित किया और धूल से आविल नेत्रों से जैसा निर्धारित किया, ठीक वैसा ही शस्त्र शत्रु पर गिराया भी। ३ राक्षस सैनिकों में, जो क्रोध का विषय है, ऐसे शत्रु-व्यूह के समीप आ जाने पर अधिक वेग आ गया है, उन्होंने मुट्ठी में दृढ़ता के साथ खड्ग धारण किया है और पूर्वनिर्धारित अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, ऐसे राक्षस सैनिक प्रथम प्रहार के विषय बन कर भी पीछे नहीं भागते। ४ राक्षस सेना के बलवान हाथी, वानर योद्धाओं के हाथों से फेंके गये तथा कुम्भ स्थल से टकरा कर भिन्न हुए, चलित शाखाओं वाले तथा मुखमण्डल पर चक्कर काटने से सेन्दूर को पोंछने वाले वृक्षों को पुनः फेंक कर चलाते हैं। ५ राम के क्रोध तथा रावण के असह्य काम (पीड़ा) इन दोनों के अनुरूप

---

१. आक्रमण करने के समय जय नाद दोनों ओर से किया गया। २. सामने आ गये ऐसा अर्थ भी लिया जा सकता है। ४. वानरों द्वारा प्रथम ही प्रहृत होने पर भी। ५. वानर वृक्षों को हाथियों पर फेंकते हैं, उन्हीं को हाथी पुनः फेंक कर मारते हैं। ६. दोनों पक्षों से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ।

६ दारुण परिणाम एक साथ ही आरम्भ हुआ। वानर राक्षस सैन्य के हाथियों से हाथियों को, घोड़ों से घोड़ों को, रथों से रथारोहियों को नष्ट कर रहे हैं, इस प्रकार उनका प्रतिपक्षी राक्षस सैन्य है, साथ ही वह आयुध
७ भी हो रहा है। समर-भूमि में घूमते हुए राक्षसों ने अपने बाण प्रहार द्वारा वानरों से गिराये गये पर्वतों को रज कणों के रूप में विकीर्ण कर दिया है, जो बाणों से पूर्ण नहीं हुए उन शैल खण्डों को मुद्गरों से ध्वस्त किया है, और पुनः (वानरों से) फेंके गये पर्वतों को अपने
८ हाथों के मुक्कों से ही चूर्ण कर डाला है। वानर सैनिक के विस्तृत पर्वत के समान विकट स्कन्ध प्रदेश पर एक भाग में गिरा हुआ, हाथी की सूँड़
९ का विस्तृत अगला-भाग उसको लपेटने में असमर्थ लहरा रहा है। क्रुद्ध वानरों द्वारा फेंका गया पर्वत राक्षसों के वक्ष-प्रदेश से टकरा कर चूर्ण हो जाता है, तब उसकी धूल ऊपर उड़ती है और शिला-समूह नीचे
१० की ओर गिरा जा रहा है। शत्रु सेना के बीच में लम्बा-चौड़ा, मारे गये तथा सघन रूप से गिराये योद्धाओं से निर्दिष्ट, असाधारण पराक्रम के प्रतीक के समान महायोद्धाओं के आगे बढ़ने का मार्ग देखने में भी
११ दुष्कर (भयानक) जान पड़ता है। युद्ध में पराक्रम का निर्वाह किया जा रहा है, असमर्थ योद्धाओं द्वारा किये गये हल्के प्रहार का उपहास किया जा रहा है, समान योद्धा के प्रहार से आक्रमण का उत्साह अधिक बढ़ता है और सामर्थ्यशाली योद्धा प्राणों की बाजी लगा कर साहस
१२ के कार्यों में भाग ले रहे हैं। सिर के कट जाने पर भी योद्धाओं का कबन्ध नहीं गिरता, शूल द्वारा फाड़ा गया भी वीरों का हृदय नहीं फटता, और विपक्षी सैनिकों द्वारा उत्पन्न किया जाता हुआ भी भय

---

८. मूल के अनुसार—ऐसे राक्षस घूम रहे हैं। ९. गले से सूँड़ पूरी तरह लिपट नहीं पाती। ११. मार्ग मरे योद्धाओं के बीच से निकल गया है। १३. कबन्ध विपक्षियों पर शस्त्र चलाता रहता है, हृदय से युद्ध की आकांक्षा शान्त नहीं होती और महायोद्धाओं के हृदय में भय नहीं लगता।

अपरिचित होने के कारण लग नहीं पाता। वे अपने दर्प के कारण १३ वानरों प्रहारों को सहते हैं, दर्पस्थानों को (प्रहार सहते आगे बढ़ने आदि में) उनका पुरुषोचित अध्यवसाय सहता है तथा योद्धाओं का निर्दोष पीछे खसकना भी उनके रोष को बढ़ाता ही है। शत्रुसेना के हथियार ने १४ जिन वानरों को छेद कर ऊपर फेंका है, रोषवश उनकी सटायें काँप रही हैं और ये ऊपर की दन्तपंक्ति को नीचे की दन्तपंक्ति से भींचे हुए प्रतिकार की भावना को लेकर ही मर रहे हैं। योद्धा अपने पक्ष की जय १५ के विषय में आस्थाहीन नहीं होते, प्राणों का संशय उपस्थित होने पर भी स्वामी द्वारा किये गये उपकार का स्मरण करते हैं और मृत्यु की परवाह नहीं करते; वास्तविक रूप में भय के उपस्थित होने पर भी (अपने वेश या अपने यश की) लज्जा का स्मरण करते हैं। पहले बन्दी बना कर १६ लायी गई देवबालाओं ने प्राणों का संकट उपस्थित किये जाने पर भी जिनको अस्वीकार किया था (ढकेल दिया था), रणक्षेत्र में आगे बढ़-बढ़ कर लड़ते-लड़ते मारे गये उन्हीं राक्षसवीरों के लिये देवबालाओं ने स्वयं अभिसार किया। वानरवीर के शरीर के घाव पट्टी न बँधने के १७ कारण प्रवाहित रक्त के कारण पीले-पीले से लगते हैं; पर घाव की पीड़ा की परवाह न कर ताजे प्रहार के कारण प्रतिकार भाव से प्रेरित होकर वह योद्धा (प्रहार करने वाले) राक्षस पर प्रहारार्थ लक्ष्य साध कर आगे ही बढ़ता जा रहा है। सैनिक अवसर की प्रतीक्षा नहीं करते, विपक्षी के १८ प्रताप को अपने प्रताप से अतिक्रान्त करते हैं, प्रहार के विषय में जैसा कहते हैं, वैसा ही कार्य करते हैं और शत्रुपक्षी योद्धाओं के साधुवाद को सुन कर उत्साह से आगे बढ़ते हैं। यह युद्ध बढ़ता जा रहा है। इस १९

---

१४. प्रहार आदि करने के लिये निशाना के लिए पीछे हटने से भी रोष कम नहीं होता। १५. भाव है कि दाँत पीसते हुए। १६. पहले अपमानित किये गये थे, वीरगति प्राप्त करने पर देवांगनाओं का संसर्ग सुलभ हो गया है। १९. वीर विपक्षियों की प्रशंसा भी करते हैं।

प्रकार यह वानरों तथा राक्षसों का देवबालाओं के सुरत-प्राप्ति का संकेत-गृह रूप है तथा इससे स्वर्ग का मार्ग सम्मुख प्रस्तुत हो गया है और
२० यम-लोक का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। वानरों की (दृढ़) छाती से टकरा कर हाथियों के दाँत रूपी परिघ (अस्त्र) उनके मुख में ही समा गये हैं तथा वानरों का शत्रुसेना के बीच प्रवेश मार्ग, मारे गये योद्धाओं की कामना से युद्ध-भूमि में अवतरित देवसुन्दरियों के चंचल वलयों से
२१ मुखरित हैं। इस बढ़ते हुए युद्ध में वानर वीरों ने ऊँचाई से कूद कर अपने भार से रथो को चूर कर दिया है, उन्होंने अपने ऊपर उठा कर ऊपर उछाल कर (राक्षस सेना के) महागजों को नीचे गिरा कर उनकी शरीर-संधियों को तोड़ दिया है, उनके द्वारा पकड़े जाकर घोड़े राक्षस सेना से बाहर भाग रहे हैं और उनके पीछे लगे वानर सैनिकों से राक्षस
२२ योद्धा मारे गये हैं। राक्षस योद्धाओं द्वारा अपनी छाती पर चन्दन वृक्ष का प्रहार, रस से आनन्दित होकर सहा जा रहा है और वानर वीरों का नाद, कल-कल ध्वनि के लोभवश, खुले हुए मुख से निकाले गये बाण
२३ के मार्ग से निकल रहा है। इस युद्ध में वानर सैनिकों द्वारा तोड़ी जाती गज-पंक्ति हाथीवानों से पुनः जोड़ी जा रही है, पैदल सैनिक (राक्षस) रोके जाने पर पीछे हट कर रोकने वाले दल को घेरने के विचार से चक्रबन्ध शैली में धावा बोलने में प्रयत्नशील हो रहे हैं, रथों का मार्ग रुधिर प्रवाह से अवरुद्ध हो गया है, और घोड़ों का हिनहिनाना फेन
२४ के सूख जाने के कारण धीमा पड़ गया है। विपक्षी योद्धा के अस्त्र के प्रहार के लाघव के द्वारा परितोषित मरते हुए वीर का कटा हुआ सिर 'साधुवाद' के साथ गिर रहा है और प्रहार को देखकर ही मूर्च्छित हुए

---

२०. यहाँ से १२ कुलकों में बढ़ते हुए युद्ध का वर्णन विशेषण-पदों के रूप में हुआ है। २३. राक्षस योद्धाओं की छाती प्रिय विरह से उत्तप्त है। बाण मुँह को छेद रहा था। २५. वीर अपने शत्रु के प्रहार की प्रशंसा करता

योद्धा के मुख के भीतर सिंहनाद शान्त हो गया है। पर्वत-खण्डों के प्रहार से उद्विग्न, कठिनाई के साथ युद्ध में नियोजित महागजों (राक्षस) के द्वारा योद्धा (वानर) अवरुद्ध किये जा रहे हैं, और भग्न ध्वज-चिह्न के कारण रथ सर्वस्व लुट गये के समान न पहिचाने जाते हुए भी योद्धा के आर्तनाद से पहिचाने जा रहे हैं। युद्ध भूमि पर राक्षस सेना के घोड़े, वानरों द्वारा प्रहार किये गये पर्वतों से अवरुद्ध रथों को खींचने में विह्वल हो मुख फैला कर हिनहिना (दुःखपूर्ण) रहे हैं तथा वानरों से फेंके गये पर्वतों की रजतशिलाओं के चूर्ण रज-समूह से मिल कर, राक्षस वीरों का रुधिर प्रवाह एकमा पाण्डुर-पाण्डुर सा हो गया है। वानरों द्वारा गिराये गये और टूटे-फूटे पर्वतों के कारण वहाँ नदियों और झीलों के मार्ग दिखाई पड़ते हैं, और राक्षसों के खड्ग की धार में आकर निकल गये वानरों के पश्चात् दूसरे वानर वीर आकर गिर रहे हैं। इस युद्ध में दौड़ते हुए वानरों के कन्धों पर मुक्त होकर सटा-समूह फहरा रहे हैं तथा मध्य भाग के अन्तिम हिस्से से गिरे दण्डरूप आयुध के प्रहार से योद्धा मर गये हैं। घिरे हुए तथा सिर पर राक्षसों द्वारा दाँतों से काटे गये वानर उनके हृदय में अपनी दाढ़ आधी ही घुसेड़ रहे हैं, और युद्ध की धूल आकाश में उठाये गये पर्वतों के झरनों के जलकणों से गीली हो कर (भारी हो) गिर रही है। सारथियों को चपेटों से आहत मुखवाले घोड़े गिरकर पुनः उठकर रथ को खींच रहे हैं, और वानरों द्वारा गिराये परन्तु बीच में ही राक्षस योद्धाओं के बाणों से चूर हुए पर्वतों से रुधिर की नदियाँ सोखी जा रही हैं।

(हाशिये पर श्लोक-संख्या: २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)

हुआ मर रहा है और साधारण योद्धा प्रहार को देख कर नाद करते-करते मूर्छित हो रहा है। २६. ध्वज नष्ट हो गया है, इस कारण पक्ष-विपक्ष का ज्ञान अपने पक्ष के वीर के स्वर से जाना जाता है। ३१. पर्वतों की धूल से नीचे बहता हुआ रुधिर सूख जाता है।

युद्ध का आरोह विपक्षी सेना के उत्कर्ष को न सह सकने वाले युगल दल की सेनायें एक दूसरे के ऊपर टूट रही हैं, जिनमें कुछ परपक्ष के योद्धा मारे जाकर खदेड़ दिये गये हैं, अगले दस्ते के नष्ट होने पर उस स्थान पर दूसरा आ जाता है और

३२ आहत होकर वे भी पीछे हट रहे हैं। वानर सैनिक के प्रहार से आहत होने पर अपने पक्ष के सैनिकों द्वारा मोर्चे से पीछे हटाये गये राक्षस वीर, मूर्च्छा से मुँदी आँखों से बिना दिखाई देते लक्ष्य पर प्रहार करते हुए

३३ विपक्षी से आ भिड़ते हैं। पहले भारी विपक्षी योद्धा को चूर्ण कर देता है फिर वानर वीर दूरस्थ अन्य राक्षस योद्धा द्वारा अचानक ही आहत होकर विह्वल (मूर्च्छित सा) हो जाता है; उस अवस्था में खड्ग आदि से आघात किये जाने पर पुनः युद्ध आरम्भ करता है, और फिर पीछे

३४ स्थित राक्षसों द्वारा मारा जा कर भी काँपता (क्रोध से) है। योद्धा युद्ध में अहंकार द्वारा प्रताप की, प्रहार के द्वारा अपनी वीर-कान्ति की, विक्रम के द्वारा अपने परिजन की, जीवन के द्वारा अपने अभिमान की

३५ और शरीर के द्वारा अपने महान यश की रक्षा कर रहे हैं। योद्धाओं के वक्षस्थल विपक्षियों के प्रहार से फटते हैं, किन्तु उनका हृदय नहीं, पर्वत द्वारा रथ भग्न होते हैं, किन्तु उत्साह नहीं, सिर के समूह कटते हैं

३६ किन्तु उनकी विशाल युद्ध करने की आकाँक्षा नष्ट नहीं होती। पृथ्वी से उठा हुआ आकाश व्यापी रज समूह, वानरों द्वारा प्रहारार्थ उत्तोलित पहाड़ों के निर्झरों से धरातल पर फैले हुए रक्त-कणों से तथा हाथियों

---

३२. दोनों पक्षों की सेनायें एक दूसरे पर टूट पड़ी हैं और दल के दल भिड़ रहे है। ३३. वीरता का आवेश इतना अधिक है कि मूर्च्छा की स्थिति में आकर लड़ने लगते हैं। वानर वीर की वीरता का अपूर्ववर्णन— मूर्च्छित होते हुए भी प्रहार किये जाने पर वह पुनः युद्ध शुरू कर देता है।

की घटाओं के फैले हुए मदजल से आच्छन्न हो रहा है। खड्ग प्रहार को सहन करने वाले, हाथियों के दाँतो से खरोंचे तथा अर्गला के समान पीन और लम्बे वानर सैनिकों के बाहु पर्वतों को उखाड़ने तथा घुमाकर फेंकने से विषम रूप से भग्न हो रहे हैं। मृत योद्धा के कवच के टुकड़े से युक्त घाव के मुख मे लगे रुधिर को, सन्नाह से अलग होकर घुसे लोहकण के कारण विरस होने से, बहुत दिनो से तृषित पक्षी (गीध) पीता नहीं, चख कर छोड़ देता है। विपक्षी योद्धा द्वारा कटा हुआ भी सैनिक का हाथ फड़फड़ाता है, सिर के कट कर धाराशायी हो जाने पर भी वीर का क्रोध शांत नहीं होता तथा कण्ठ से रक्त की धार को उछालता हुआ कबन्ध विपक्षी की ओर दौड़ता है। शत्रु का प्रहार वीरों को रस देता है (उत्साह), वैर की ग्रन्थि विक्रम की धुरी को वहन करता है और सिर पर आ पड़ा महान् भार रण में उत्कंठित योद्धा के दर्प को बढ़ाता है। वीरजन शत्रु की तरह यश को भी सिद्ध करता है, ललकारे गये के समान विलम्ब (युद्ध मे) नहीं सहता है, सुख के समान मृत्यु का वरण करता है और शत्रु के समान अपने प्राणो का त्याग करता है। खड्गों के आघातो को सहने से रक्त बह जाने के कारण व्याकुल तथा सामर्थ्यहीन बाहुओं वाले वानर वीर धारण किये हुए पर्वतों से आक्रान्त-से, मूर्च्छित हो-होकर झँपती आँखो वाले हो रहे हैं। वीर गण पुष्प के समान अपने मान की रक्षा करते हैं, बढ़ते हुए निर्मल यश का विश्वास नहीं करते और केवल साधारण जनों में बहुत महान समझे गये जीवन का बहुत आदर नहीं करते। विपक्षी सैनिकों के

३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४

---

३७. धूल में आर्द्रता आ गई है, इन सब वस्तुओं से। ३८. पर्वतों के उत्तालन से बाहु अनेक स्थानों पर टूट गये हैं। ४०. युद्ध का आवेश इतना अधिक है। ४१. पूर्व वैर की भावना से पराक्रम करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। ४३. निश्चेष्ट होकर वे मूर्च्छित हो रहे हैं और उनकी आँखें झँप रही हैं। ४४. यश बढ़ाने के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है।

अलक्षित विधि से स्थापित हो जाने से आगे बढ़ने का मार्ग साफ़ हो गया है, उससे समर्थ योद्धा युद्धगति को बढ़ाते हुए महान शत्रुचक्र में
४५ घुसते हैं। समर्थ वीर यश की धुरी का वहन करते हैं, विक्रम के अपमान को नहीं सहते, रोप धारण करते हैं और साहस की मात्रा को दृढ़ता
४६ पूर्वक बढ़ाते हैं। बढ़ते हुए युद्ध में प्रहार के बदले प्रहार देकर हर्ष प्राप्त किया जाता है, मूर्च्छाकाल मात्र में रणोत्साह का सुख हृदय से दूर होता है, प्राण छोड़कर वीर अप्सरायें प्राप्त करते हैं, और सिर के
४७ बदले में यश प्राप्त किया जाता है। वीर जय-पराजय के सन्देह के विषय में हँसते हैं, साहस कार्यों में अनुरक्त हो रहे हैं। संकट उपस्थित होने पर आनन्दित होते हैं, केवल मूर्च्छा के समय विश्राम करते हैं और कार्य
४८ की सम्पन्नता मर जाने पर ही मानते हैं। हाथियों, घोड़ों, पदातियों तथा वानरों के पैरों से उठा धूल समूह पृथ्वी से ऊपर इस प्रकार उठा कि सूर्यमण्डल के ग्रहण की शंका हो गई, अकस्मात् रात खिंच आई तथा
४९ उसने असमय में ही (दोपहर में) दिवस को समाप्त कर दिया। पृथ्वी की धूल मूल में घनी, मध्य में हाथियों के कानों से प्रसारित होकर विरल तथा आकाश में घनी होकर फैलती हुई दिशाओं में भारीपन के
५० साथ गिर रही है। जिसका निकास मार्ग दिखाई नहीं देता ऐसा धूल-समूह पृथ्वी को छोड़ रहा है अथवा भर रहा है, दिशाओं से निकल रहा है अथवा भर रहा है, आकाश से गिर रहा है अथवा भर रहा है,
५१ कुछ पता नहीं चलता है। वानर सैनिकों के साथ घने रज समूह से अन्तरित राक्षस सैन्य कुहरे से ढँके मणि पर्वत के समीप स्थित कान्ति-
५२ हीन गिर सा दिखाई दे रहा है। पताकाओं को धूसरित घोड़ों के मुख में
५३ लगे फेन को मलीन तथा आतप को श्यामल करता हुआ रज समूह

४८. वीर समझते हैं कि मर कर वे स्वर्गलाभ करेंगे और जय प्राप्त कर शत्रु की राजश्री। ४९. धूल के उठने से अँधेरा छा गया है। ५१. सर्वत्र धूल छाई हुई है। जिससे पता नहीं चल पाता कि क्या स्थिति है।

छोटे-छोटे काले मेघ-खण्डों के सदृश आकाश में फैल रहा है। वानर ५३ वीरों द्वारा शीघ्रता से आकाशतल से नीचे गिरे पर्वतों के मार्ग में दीर्घ-कार सूर्य का मलिन किरण-आलोक पनाले के निर्झर के समान पृथ्वी पर गिर रहा है। वानर सैनिकों के दृढ़ स्कन्धों में जिनका अग्रभाग घुस गया ५४ है ऐसी, क्रुद्ध राक्षसों द्वारा गिराई हुई रुधिर से युक्त असि-धाराओं में घनीभूत मधुकोष के समान धूल लगी हुई है। युद्धभूमि में घूमते रहने ५५ से व्याकुल, सूर्य की किरणों से तापित होकर नेत्रों को मूँदे हुए हाथी पानी से सिली धूल से पंकयुक्त मुखवाले होकर जुड़ा रहे हैं। रणभूमि ५६ के जिन भागों में खून भरा नहीं है उनसे आकाश की ओर धूल-समूह आता है, जो उठते समय मूल भाग में विरल है पर ऊपर जाकर एक-एक करके साथ मिल जाने से घनीभूत हो जाता है। महागजों के ऊपर ५७ उठते निःश्वासों से कम्पित पताकाओं के समीप उन्हीं के समान अल्प-विस्तार वाली तथा उनके ऊपर छायापथ के पृष्ठ भाग के सदृश धूसर धूलि-रेखा को पवन अलग-अलग करके जोरों से खींच रहा है। संग्राम ५८ भूमि में विपक्षी सेना की ओर धावा बोलने वाले हाथियों को दृष्टि पथ की वायु द्वारा आन्दोलित रज-पटल, मुख के समीप डाले मुखपट के समान रोक रहा है। इसके पश्चात् योद्धाओं के वक्षःप्रदेश से उछलती ५९ रक्त-नदी के द्वारा, जिसका आधार रूपी भूमितट खण्ड ढह गया है ऐसे वृक्ष के समान वह प्रबल धूल का समूह नीचे बैठा दिया गया (गिरा दिया गया)। नालदण्ड को तोड़ कर निकाले गये उसके तन्तुओं की- ६० सी आभा वाला तथा समाप्तप्राय थोड़े-थोड़े शेष हिमविन्दुओं का-सा

---

५४. गगन-चुम्बी महल के पनाले के समान। ५६. पेट में लगे हुए कीचड़ को हाथी अपनी सूंढ से निकालता है। ५७. अलग-अलग भाग से रज का पुंज उठता है, पर ऊपर मिल जाता है। ५८. हवा जैसे-जैसे बहती है, वैसे ही धूल को उड़ाती है। ६०. पृथ्वी रक्त-प्रवाह से गीली पहले ही हो चुकी है, अब रक्त के उछलने से ऊपर की धूल भी गीली होकर नीचे आ गई है।

रजःशेष (बची हुई धूल) प्रथम रुधिर धारा से कुछ-कुछ छिन्नमूल और फिर पवन द्वारा फैलाया जाकर अल्प रूप में चतुर्दिक प्रसृत हो
६१ रहा है।

जिसका प्रशस्त मार्ग अवरुद्ध हो गया है और युद्ध का आवेग पताकाएँ ऊँची-नीची हो रही हैं ऐसा सैन्य, पर्वत-श्रेणियों के अन्तराल में ऊपर-नीचे होते नदी-प्रवाह के समान, गिरे हुए हाथियों के समूह के अन्तरालों में ऊँचा-नीचा हो
६२ रहा है। जिन्होंने असहनीय प्रहार को सहन किया है, युद्ध में दुर्वह भार वहन किया है, साधारण जनों के लिए अगम्य मार्ग को पार किया है तथा दुष्कर राजाज्ञा का पालन किया है, ऐसे भी महावीर वानर मर
६३ रहे हैं। युद्ध बढ़ता जा रहा है और उसमें बन्धुजनों के वध के कारण वैर ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया है, सहस्र योद्धाओं के मारने की संख्या पूरी होने पर कबन्ध नाच (आमोद मना) रहा है, वीर उत्साहित
६४ हुए हैं और अनेक महाबाहु योद्धाओं का वध हुआ है। कन्धे से कटे राक्षस सैनिक के बोझिल हाथ को, मणिबन्ध (कलाई) में आकर एकत्र कवच के टुकड़े रूपी क्लप से आवेष्ठित होने के कारण, शृगाली ले नहीं
६५ जा पा रही है। रक्त से जिनके बाल गीले हो गये हैं और पार्श्वों में फेन लगा है, ऐसे चामर-समूह रुधिर प्रवाहों में गिरकर आवर्तों में डूब रहे
६६ हैं। मुँह ऊपर उठा कर चिग्घाड़ते हुए और अगले भाग के भार से बोझिल पिछले भाग वाले राक्षस सेना के हाथी अपने कुंभों को झटकार रहे हैं जिनमें हाथीवानों द्वारा धँसाये हुए अंकुश वानर द्वारा गिराये
६७ शिलाखण्डों के आघात से गहराई से धँस गये हैं। तब युद्ध में निष्कपट भाव से लड़ने वाले, देवों को पराजित करने में समर्थ राक्षस योद्धा वानरों के आधिक्य के कारण उद्भ्रान्त होकर, पहले-पहल होने के कारण

---

६२. सेना का मार्ग मरे हुए हाथी आदि से अवरुद्ध हो रहा है। ६५. कवच के टुकड़े कलाई पर कड़े के समान पुंजित हो गये हैं। ६६. चामर हरिण विशेष है।

कठिनाई के साथ आक्रमण से विमुख हो रहे हैं। तितर-बितर हुए हाथियों ६८
को तैयार किया गया, भागे हुए रथों को वापस ला कर नियोजित किया
गया, एकाएक पैदल सैनिक मुड़ पड़े तथा घोड़े वृत्त के आकार में खड़े
हो गये, इस प्रकार राक्षस सेना पुनः युद्ध के लिए घूम पड़ी। पहले ६९
राक्षस वीर बढ़े हुए क्रोध के कारण सामने आ डटे, बाद में निर्भीक
होकर मुकाबला करने वाले वानरों से आक्रान्त होने से उनका क्रोध नष्ट
हो गया और वे लौट पड़े, परन्तु वानरों द्वारा ढकेले गये राक्षस पीछे मुड़
कर भाग रहे हैं। रथों से घोड़े कुचल रहे हैं, घोड़ों की छाती से टकरा ७०
कर पैदल गिर रहे हैं, पैदलों से हाथी तितर-बितर हो रहे हैं और हाथियों
से रथ-समूह टूट-फूट रहा है, इस प्रकार राक्षस सैन्य तितर-बितर हो रहा
है। लम्बी तथा विशाल भुजाओं से वृक्षों को भग्न करते हुए तथा प्रतिपक्षी ७१
भटों को विह्वल करके पीछे हटाते हुए वानर सैन्य राक्षसों को मूर्च्छित
कर नीचे गिराता है और ऊँची-नीची विषम साँसें ले रहा है। जिनके ७२
सामने पहिले-पहल वानरों द्वारा मान-भंग का अवसर उपस्थित किया
गया है, ऐसे अखण्डित गर्व वाले राक्षस भाग कर पुनः लौट पड़ते हैं,
वे पूर्णरूप से भयभीत नहीं होते। राक्षस सेना में बड़े-बड़े पहियों वाले ७३
रथों का मार्ग कुछ मुड़ने के कारण चक्राकार है और रण-भूमि में डटे हुए
योद्धा दौड़-दौड़कर युद्ध के लिए भगोड़ों को आश्वासन देकर यश
अर्जित कर रहे हैं। वानरों द्वारा युद्ध से पराङ्मुख किये गये निशाचर ७४
अपने सिर को मोड़े हुए तथा सिर झुकाये हुए हैं, और शत्रु सेना के
कल-कल नाद से उद्विग्न हो कर मुड़ते हाथियों से हाथीवान् गिर पड़े हैं। ७५
राक्षस सेना के घोड़ों का पीछा चंचल वानर करते हैं और बाल पकड़
कर निश्चल स्थित करते हैं तथा वानरों के कोलाहल से भयभीत घोड़ों
के द्वारा रथ ले जाये जा रहे हैं जिनके योद्धा मारे गये हैं और सारथी गिर

---

६८. पहले-पहल पीछे हटना पड़ रहा है, इस कारण लज्जित हो रहे हैं। ७२. मारने में विश्रान्त होकर उच्छ्वास लेता है। ७५. अपमान के कारण।

७६ पड़े हैं। यह भाग खड़ी हुई राक्षस सेना संग्राम में मारे गये हाथी-घोड़ों के कारण बीच-बीच से छिन्न हो गई है जिसमें स्थान-स्थान में घुस कर वानर मार्ग का अनुमान लगाते हैं और अस्त्रों के प्रहार से सैनिकों के
७७ दोनो हाथ कट गये हैं। अनन्तर हृदय में रावण की याद आ जाने से भय त्याग कर तथा मत्सर-रहित होने से हल्के राक्षस वीर हृदय में एक दूसरे से आँख बचाने की चिन्ता करते हुए पुनः युद्ध के लिए लौट पड़े
७८ हैं। वानर सेना के लिए दुर्धर्ष राक्षस योद्धा अपने टूटे यश को जोड़ते हैं, अपसृत गर्व को पुनः स्थापित करते हैं और इस प्रकार त्याग कर
७९ भी पुनः रणभार को ग्रहण कर रहे हैं।

द्वन्द्व युद्ध

तदन्तर पलायन के कारण लज्जित तथा आगे बढ़ने के उत्साह से हर्षित राक्षस और वानरों का महान युद्ध आरम्भ हुआ। जिसमें चुने योद्धा ललकार-ललकार
८० कर लड़ रहे हैं। सुग्रीव ने बनैले हाथियों के मद से सुरभित छितौन वृक्ष के आघात से प्रजङ्घ को रणसुख प्रदान किया (मारा) और वक्षः-
८१ प्रदेश पर उछलते हुए सप्तच्छद के फूल मानो उसका अट्टहास है। रणभूमि में द्विविद नामक वानर वीर द्वारा मारा गया अशनिप्रभ हृदय पर गिरे हुए सरस चन्दन वृक्ष की गंध को सूँघ कर सुखपूर्वक अपनी
८२ आँखों को मूँदते हुए प्राणों को छोड़ रहा है। द्विविद का भ्राता मैन्य वज्रमुष्टि नामक राक्षस वीर को मार कर हँस रहा है, उसकी घूँसे की चोटों से ही वह प्राणहीन हो गया तथा क्रोधपूर्ण दृष्टि से निकली अग्नि-
८३ शिखा से उसके दोनों नेत्र लोहित होकर फूट गये हैं। सुषेण द्वारा दोनों चरणों से दाब कर तीखे नाखूनों से काट कर दूर फेंका गया, चिरयुद्ध

७४-७७ तक भाग खड़ी हुई राक्षस सैन्य का वर्णन है—विशेषण पदों से। ७८. प्रयत्न करते हैं कि कोई यह न देख ले कि मैं भाग रहा था। ८१. चन्दन वृक्ष से उसको मारा गया है। ७७. भागे हुए राक्षसों का पीछा करते हुए।

से हर्षित विधुन्माली नामक राक्षस अपने दोनों हाथों के घेरे में पड़ा है। तपन नामक राक्षस के किये प्रहार को सह कर (वानर शिल्पी) नल ८४
द्वारा किये चाँटे के प्रहार से उसका मुड़े हुए कण्ठ वाला सिर धड़ में धँस गया, आधी देह पृथ्वीतल में धँस गई। पवनपुत्र जम्बुमाली को ८५
मार कर उससे हट कर दूर चले गये, उनकी समूची हथेली के बलपूर्वक ताड़न से उसके सिर की चर्बी फूट कर उछली और दिशाओं को सिक्त किया। अनन्तर बालि-पुत्र अंगद तथा इन्द्रजित् का रण-पराक्रम तो ८६
पराकाष्ठा को ही पहुँच गया, उन्होंने एक दूसरे के पक्ष के सैनिकों को मार कर संशयरूपी तुला पर अपने हाथों द्वारा आरोहण की स्वीकृति दी है। ८७
अपने हस्तलाघव से दिशाओं को अन्धकारित करनेवाले तथा मण्डलाकार धनुष से संयुक्त इन्द्रजित् को वीर अंगद, एक साथ उखाड़ कर ले आये गये, छुटते तथा गिरते दिखाई देने वाले सहस्रों पर्वतों से आक्रान्त कर रहा है। बालिपुत्र द्वारा गिराया गया वृक्षों का समूह, जो फलों से लदा ८८
है और जिसकी डाली पर भ्रमर एक दूसरे से सटे हुए चिपके हैं, इन्द्रजित् के बाणों से उड़ाया जा कर बीच में ही पल्लवहीन होकर पृथ्वीतल पर गिरता है। इन्द्रजित् द्वारा छोड़ा हुआ बाणों का समूह आकाशतल ८९
में स्थित बालि-पुत्र तक नहीं पहुँच पाता, वरन् उसके द्वारा गिराये गये वृक्ष-समूह से तिरोहित हो जाता है और अंगद द्वारा गिराये वृक्ष भी आधे रास्ते में बाणों से खण्ड-खण्ड कर दिये जाते हैं अतः रावण-पुत्र तक नहीं पहुँच पाते। इस युद्ध के कारण आकाश में लोध्र के फूल ९०
बिखरे पड़े हैं, बाणों से दलित होकर चन्दन की गन्ध ऊपर चारों ओर फैल रही है, पारिजात की रज उड़ रही है तथा मध्य में हरी लवंगलताओं

---

८४. सुषेण सुग्रीव का ससुर तथा वानर वैद्य है। राक्षस घायल पड़ा है, और उसके चारों ओर उसकी भुजाओं की परिघा है। ८५. नल के चाँटे के बल का वर्णन। ८६. हनूमान इसलिए हट गये जिससे चर्बी उछल कर उन पर न पड़े। ८७. दोनों ने अपने-अपने पराक्रम की परीक्षा अपने-अपने हाथों द्वारा दी है।

६१ के दल बिखरे हैं। समान रूप से एक दूसरे का प्रतिकार किया जा रहा है, उभय पक्ष की सेनाएँ दोनों को साधुवाद देकर प्रोत्साहित करती हैं, इस प्रकार का इन्द्रजित् तथा बालि-पुत्र का पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ
६२ भी युद्ध बढ़ रहा है। युद्ध-व्यापार से निवृत होकर निरापद स्थान में स्थित उभय पक्ष की सेनाओं ने विस्मयपूर्वक देखा कि वृक्षों के फूलों के मध्य भाग से निकल कर भ्रमर बाणों की पूँछों में लगे हुए नीचे चले
६३ आ रहे हैं। इस युद्ध में रावण-पुत्र द्वारा छोड़े बाणों से भरे आकाश की सीमा से बालि-पुत्र ऊपर को उछल गये हैं और उनके द्वारा बरसाये हुए शाल, पर्वत की चट्टानों तथा पर्वतों से इन्द्रजित् अवरुद्ध हो गया
६४ है। शत्रु के बाणों के प्रहार से अंगद की देह विदीर्ण हो गई है और उससे उछले हुए रक्त से दिशाओं का विस्तार लाल हो उठा है और बालि-पुत्र
६५ के प्रहार से इन्द्रजित् के निकले रक्त से भूमि पर कीचड़ हो गया है। इन दोनों के युद्ध में इन्द्रजित् के शूल-प्रहार से व्याकुल होकर अंगद के गिरने से वानरों को शोक हुआ और अंगद के शैल-प्रहार से इन्द्रजित् के
६६ मूर्च्छित हो जाने पर राक्षस सैन्य भाग चला है। तारा-पुत्र द्वारा इन्द्रजित् के अतिक्रान्त होने पर वानर सेना में तुमुल कलकल नाद होने लगता है और मन्दोदरी-पुत्र द्वारा अंगद के व्याकुल कर दिये जाने
६७ पर राक्षस सेना सन्तुष्ट होकर मुखर हो जाती है। अंगद के बाहु पर गिर कर परिघास्त्र असफल हो दो खण्ड हो गया है, इस कारण वानर योद्धा उल्लास के साथ हँस रहे हैं, और वक्षःप्रदेश से टकरा कर शिला के टूक-टूक हो जाने से मेघनाद ने अट्टहास किया, जिससे आकाश प्रकाशित
६८ हो उठा है। इसके बाद बालि-पुत्र द्वारा इन्द्रजित् के रणोत्साह के भंग किये जाने पर, (मारा गया) ऐसा समझ कर वानर हँस रहे हैं, तथा
६६ (माया में छिपा है) ऐसा समझ कर राक्षस प्रसन्न हो रहे हैं।

---

६१. अंगद ऊपर से वृक्षों का प्रहार कर रहा है और इन्द्रजित् बाणों से उन्हें ध्वस्त कर रहा है। ६३. इन्द्रजित् के बाण का वर्णन है। ६८. मेघनाद के दाँतों की आभा से। ये ऊपर के कुलक एक साथ हैं। ६६. रण से निरुत्साह हो कर मेघनाद माया में अन्तर्निहित हो गया है।

चतुर्दश आश्वास

राम द्वारा राक्षस सैन्य-संहार

इसके बाद इच्छानुसार रावण को प्राप्त करना सुगम होने पर भी राम का वह सारा दिन निष्फल गया, अतएव अलस भाव से राक्षसों का वध ही किया है जिन्होंने ऐसे राम लंका की ओर मुख करके खिन्न हो रहे हैं। इन राक्षसों के कारण ही सुख से बैठा रावण समरभूमि में मेरे समक्ष नहीं आता है, ऐसा विचारते हुए राम अपने शर-समूह को धनुष पर चढ़ा कर राक्षसों पर छोड़ना चाहते हैं। राक्षस दिखाई देने पर भाग खड़े होते हैं और सामने आ जाने पर राम के बाण से धराशायी कर दिये जाते हैं, इस कारण व्यर्थ में वृक्षों को उखाड़ कर प्रहार के लिए धारण कर रखने वाले वानर खिन्न हो कर रणभूमि में घूम रहे हैं। शीघ्रता के साथ छोड़े हुए, शर की दिशा में जाने वाले शिला-समूहों को विदीर्ण करके राम के बाण वानरों के मनोरथ को असफल बनाते हुए प्रथम ही शत्रु का वध करते हैं। राक्षसों के अस्त्र उनके हाथ के साथ ही राम-बाण द्वारा छिन्न होते हैं, वानरों तक नहीं पहुँच पाते, इसी प्रकार वानरों द्वारा वेग के साथ छोड़ा गया शिला-समूह राम बाण से बिना बिंधे राक्षस तक नहीं पहुँचता। वानरों का शिला-प्रहार का पराक्रम राम-बाणों के कारण निष्फल हो गया है, वे जब रोष के साथ शिला छोड़ते हैं तो वह राम-बाण से विदीर्ण की हुई राक्षस की छाती पर पड़ती है और बाण द्वारा काट कर पृथ्वी पर गिराये हुए सिर के स्थान पर (कटे गले पर) ही पर्वत-शिखर गिरता है। राम का शर

(margin verse numbers: १ २ ३ ४ ५ ६)

---

१. रावण युद्धार्थ सामने आया ही नहीं, इस कारण राम खिन्न हैं। २. बाणों को प्रेरित करके। ३. राक्षस उनको मिलते ही नहीं हैं। ५. राम असंख्य बाणों को बहुत शीघ्रता से चला रहे हैं। ६. वानर कितनी ही शीघ्रता क्यों न करें राम-बाण का मुकाबला नहीं कर पाते।

सदैव प्रत्यञ्चा पर ही चढ़ा है और उनका धनुष सदैव चक्राकार (कानों तक खिंचा हुआ) स्थित है, फिर भी बाणों से छिदे हुए राक्षस सिरों ७ के इधर-उधर बिखरने से पृथ्वी पट रही है। राक्षस वीरों के शरीर पर, अग्नि लगे तथा साँपों द्वारा छोड़ी हुई बिलों के मुख के समान फैले हुए, ८ बाणों से किये गये भयानक घाव ही दिखाई पड़ते हैं, बाण नहीं। काट कर गिराये गये सिरों से जिनकी सूचना मिलती है ऐसे राम-बाण, धनुष खींचने वाले राक्षस के हाथ पर, मारने की कल्पना करने वाले राक्षस के हृदय पर तथा 'मारो-मारो' शब्द करने वाले राक्षस के मुख पर ९ गिरते ही दिखाई देते हैं। जो राक्षस वीर जहाँ भी दिखाई दिया, जहाँ भी उसका उच्चरित रव सुनाई दिया तथा जो जहाँ भी चला-फिरा, कि १० बस वहीं उस पर राम-बाण गिरा। राक्षस सैन्य के अग्रवर्ती भाग को पीछे तक बेधने वाले राम-बाण हाथी, घोड़ा और योद्धा का एक साथ ११ वध करते हुए दीर्घ हुए-से दिखाई देते हैं। राक्षस सैन्य ज्योंही भयभीत हो कर भागने लगा, उसी क्षण राम-बाणों से भूमि पर गिरा हुआ देखा १२ गया। इस प्रकार बाणों द्वारा काटे जाते हुए राक्षस सैन्य में एक साथ सिर-समूह गिरता हुआ देखा गया है और राम ने उसमें शुक-सारण मात्र १३ को बचा दिया है। तब तक जिसमें राक्षसों का भय नष्ट हो गया है ऐसा वह चिरकाल-सा युद्ध-दिवस, घावों से उछलते हुए रक्त के कारण तथा ढलते सूर्य की लालिमा से समान रूप से रक्ताभ राक्षस सैन्य और १४ सन्ध्या तिमिर के साथ समाप्त हुआ।

नाग-पाश का बंधन

इसके बाद रात्रि होने पर, आकाश में अंगद द्वारा तोड़े हुए रथ से उछल कर, अपने हाथ में धनुष लिये हुए केवल मात्र मेघनाद, अपनी श्याम आभा से रात्रि

---

८. बाण छेद कर पुनः राम के तुणीर में प्रवेश करते हैं। ९. बाण राम द्वारा कब ग्रहण किया गया अथवा संधाना गया, इसका पता नहीं चलता। १३. ये दोनों राक्षस राम के परिचित थे। १४. राक्षस सेना नष्ट हो चुकी है, इस कारण उनका भय शेष नहीं रह गया है।

के अंधकार को एक-सा करता हुआ घूम रहा है। तब राक्षसों १५
का नाश करने के कारण महान वैर के मूलाधार स्वरूप दशरथ
के दोनों पुत्रों को एक साथ ही, अलक्ष्य दैव के समान अन्तर्धान इन्द्रजित्
ने अपना लक्ष्य निश्चित किया। फिर उस मेघनाद ने, समस्त राक्षस १६
योद्धाओं के निधन से निश्चित तथा भुजाओं को मुक्त किये हुए उन
राम-लक्ष्मण पर ब्रह्मा द्वारा दिये हुए तथा सर्पमुख से निकलती हुई
जिह्वाओं वाले बाण छोड़े। तब मेघनाद द्वारा छोड़े हुए वे सर्प रूपी १७
बाण एक बाहु के अंगद धारण करने के स्थान को वेध कर दूसरे बाहु
में अपना मुख प्रकट करते हुए, दोनों राघवों के शरीर पर त्रिक स्थान
पर, बाहुओं को बाँधे हुए स्थित हुए। मेघनाद द्वारा धनुष संधान करके १८
छोड़े, साफ किये गये तप्त लोहे के समान नीले-नीले, विष की अग्नि
की चिनगारियों से प्रज्वलित मुख वाले तथा आग्नेय अस्त्रों के समान
प्रतीत हो रहे महासर्प रूपधारी बाण निकल रहे हैं। मेघनाद की माया १६
से अन्धकारित तथा काले-काले उमड़ते हुए बादलों वाले आकाशतल
से, बिजली-सी कड़क वाले, ताड़ों से लम्बे तथा लम्बी लोहे की
छड़ों के समान आकृति वाले बाण राम और लक्ष्मण पर गिर रहे हैं। २०
ये शस्त्र पहले सर्पमण्डल के समान जान पड़ते हैं, फिर आकाश के बीच
में गिरते समय उल्कादण्ड जैसे लगते हैं, भेदते समय बाण बन जाते
हैं, परन्तु बाहुओं को डस कर वे कुण्डलीबद्ध सर्प हो जाते हैं। राम- २१
लक्ष्मण नागपाश में बँध गये हैं, मनोरथ भग्न होने के कारण देवता
खिन्न हो रहे हैं और मेघनाद को देख न सकने के कारण वानर वीर
पर्वतों को उठाये घूम रहे हैं। आकाश में मेघनाद ललकारता हुआ २२
गर्जन कर रहा है, जिनका हृदय पराङ्मुख नहीं हुआ ऐसा वानर सैन्य

---

१५. मेघनाद माया में अन्तर्धान था। १६. नागपाश में बाँधने के लिए। १७. अपनी बाहुओं को लटकाये हुए। १८. पीछे की ओर नागपाश से उनके हाथ बँध गये। २१. बाणों की भयंकरता का वर्णन है। २२. देवताओं को राम के सर्वशक्तिमान होने में सन्देह हो गया है।

उसको खोजता हुआ छितरा गया है और शत्रु को देखने के लिए नेत्रों को लगाये हुए दशरथ-तनय नागपाश द्वारा डसे जाते हुए भी उत्साहहीन नहीं हो रहे हैं। इन नाग-बाणों ने राम के शेष समस्त अंगों में प्रसार
२३
प्राप्त कर लिया है, पर क्रोधाग्नि से धधकते प्रज्वलित बड़वानल के मुख के समान उनके हृदय से दूर हैं। उन राघव वीरों के, विकट सर्प-शरीरों
२४
से कठिनाई से घिरने योग्य नागों द्वारा आवेष्ठित बाहु, मलय पर्वत की तराई में लगे चन्दन वृक्षों के समान स्थिर और स्पन्दनहीन हो गये। नागपाश
२५
आबद्ध होने के कारण रघुपुत्र राम-लक्ष्मण के बाहु रूपी अस्त्र निश्चल हैं, पहले के समान धनुष-बाण धारण किये रहने पर भी वे असमर्थ हो गये हैं और उनके निष्फल क्रोध का अनुमान दबाए जाते हुए ओठों से लग रहा है। राम और लक्ष्मण के शरीर सर्पमय बाणों से विदीर्ण हो
२६
गये हैं, अवयव आलोक में ढूँढ़े जाने योग्य हो गये हैं तथा थोड़े-थोड़े दिखाई देते बाणमुख में रुधिर जम गया है। रघुपुत्रों की जंघाएँ बाणों
२७
से सिल-सी दी गई हैं, चरण जकड़ जाने के कारण व्याकुल हो कर स्थित हैं, तथा शरीर के हिस्से बेड़ी की कड़ियों से जैसे जकड़ दिये गए हैं, इस प्रकार उनका चलना-फिरना या हिलना-डुलना भी बन्द हो गया है।
२८
मेघनाद (अदृश्य) द्वारा छोड़े गये बाण के प्रहार से उनके बायें हाथ से, जिससे संधान किया हुआ बाण खिसक गया है ऐसा चाप गिर पड़ा है और साथ ही देवगणों का हृदय भी गिर पड़ा। और भागते हुए
२९
विमानों की भित्ति के पिछले भागों में, एक साथ ही बज उठी वीणाओं के स्वर के समान एकाएक देववधुओं का व्याकुल क्रन्दन उठा। इसके
३०
पश्चात् जैसे सिंह के नखरूपी अंकुश के प्रहार से समीपवर्ती विशाल वृक्ष को गिराता हुआ बनैला हाथी गिर पड़ता है उसी प्रकार

---

२५. यहाँ सर्पों के कारण ही भुजाओं को चन्दन वृक्ष कहा गया है। २६. बन्धन में होने के कारण वे केवल क्रोध प्रकट करने में समर्थ हैं। २८. नागपाश में वे बिल्कुल जकड़ गये हैं। २९. देवता राम की इस स्थिति को देख कर मूर्च्छित हो गये हैं। ३०. रोना-धोना सुनाई पड़ने लगा।

देवताओं के आशा रूपी वृक्ष को ध्वस्त करते हुए राम भी गिर पड़े। ३१
राम के भूमि पर गिर पड़ने पर, गिरे हुए ऊँचे वृक्ष के छाया-समूह के समान, उनके साथ ही सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण भी गिर पड़े। ३२

वानर सेना की व्याकुलता

उनके इस प्रकार भूमि पर गिर पड़ने पर, सामने की ओर झुके और पिछले भाग से ऊपर को उठे देवों के विमान बहुत देर तक निरीक्षण करते रहे और उस समय उनकी भित्ति टेढ़ी और पहिये उलटे हुए दिखाई देते रहे। ३३
जिस प्रकार हृदय के डूब जाने से व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है, सूर्य के डूबने से अन्धकार हो जाता है और सिर के कट जाने से प्राण निकल जाते हैं, इसी प्रकार राम के पतन से तीनों लोक मूर्च्छित, अचेत तथा निष्प्राण-सा हो गया। इसके बाद भी वानर सैन्य गिरे हुए राम को ३४
छोड़ नहीं रहा है, क्योंकि उसका परित्राण राम से ही है (राम से शून्य दिशाओं को देख कर उत्साहहीन तथा भयवश निश्चल तथा एकत्र)। ३५
दीन-हीन, भग्न-उत्साह, उद्विग्न तथा व्याकुल हृदय वानर सैन्य राम की ओर एकटक देखता हुआ, चित्रलिखित की भाँति निस्पन्द खड़ा है। ३६
भूमि पर पड़े राम के मुख की विषाद से अनाक्रान्त, चरम धैर्य द्वारा मर्यादित, दुर्लभ तथा सहज शोभा मानो वानर-राज से सान्त्वना की बात कर रही है। तदन्तर विभीषण द्वारा मायाहरण मंत्र से अभिमंत्रित जल ३७
से धुले नेत्रों वाले सुग्रीव ने आकाश में पिता के आदेश को पालन करने वाले मेघनाद को हाथ में धनुष लिये पास ही विचरण करते देखा। तब वानर-राज क्रुद्ध होकर पर्वत उखाड़ने के वेग के साथ सहसा ३८
दौड़े और उन्होंने भयभीत होकर भागे राक्षस मेघनाद को लंका में प्रवेश करा कर ही दम लिया। मेघनाद द्वारा राम-लक्ष्मण के निधन ३९
की वार्ता से सुखित रावण, जैसे जानकी के मिलन का उपाय-सा प्राप्त

---

३३. विमान जब नीचे झुके उस समय वे तिरछे हो गये। ३५. वीर स्वभाव तथा स्वामि-भक्ति के कारण। ३६. दुःख से अभिभूत होने के कारण। ३७. राम के मुख की श्री पूर्ववत् है।

होगया हो, इस प्रकार आनन्दोच्छ्वासित हुआ। फिर रावण के आदेश से राक्षसियों द्वारा ले आई गई सीता ने क्षणिक वैधव्य का दर्शन किया तथा मुक्त क्रन्दन के साथ व्याकुल हो कर थोड़े विलाप के बाद मूर्च्छित
४१ हो गई।

राम की निराशा, सुग्रीव का वीरदर्प और गरुड़ का प्रवेश

इधर मूर्च्छा के दूर हो जाने पर राम ने नेत्र खोले और वे लक्ष्मण को देख कर क्षण भर के लिए सीता के समस्त दुःखों को भुला कर विलाप करने
४२ लगे। 'जिसके धनुष की प्रत्यंचा के चढ़ने पर त्रिभुवन संशय में पड़ जाता था, वे सौमित्र भी मारे गये, संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसके पास
४३ भाग्य का परिणाम उपस्थित न होता हो। अथवा मेरे लिए जीवन उत्सर्ग करने वाला सफल है, व्यर्थ ही बाहुओं का भार
४४ ढोने वाला मैं अपने आप द्वारा ही तुच्छ बनाया गया हूँ।' फिर राम ने, उत्साहपूर्वक लक्ष्मण के अनुसरण के निश्चय को प्रकट करने वाले तथा अचानक उपस्थित मरणावस्था में भी व्यवस्थित और गम्भीर वचन
४५ मधुरता के साथ कहे। 'धीर, तुमने उपकार का बदला भली-भाँति चुकाया, कपि सैनिकों ने भी अपने बाहुबल को सफल बनाया तथा
४६ लोकोत्तर यश वाले हनूमान ने भी दुष्कर कार्य सम्पादित किया। मेरे लिए जिसने भाई से भी वैर बाँधा उस विभीषण के सामने मैं रावण की राजलक्ष्मी उपस्थित नहीं कर सका, इस दुःख से मेरा हृदय बाण
४७ की पीड़ा का अनुभव भी नहीं कर पाता है। तुम मोह छोड़ कर जिस सेतुमार्ग से लंका में प्रविष्ट हुए हो उसी से शीघ्र वापस लौट जाओ।

---

४१. राम के मरण का समाचार सुन कर। ४३. त्रिभुवन 'नष्ट हो जाऊँगा या रहूँगा।' इस संशय में पड़ जाता था। ४४. राम अपनी भुजाओं को व्यर्थ मानते हैं। ४६. कपि सैन्य ने सेतुपथ बनाया है, हनूमान ने लंका-दहन किया है। ४७. मरण से भी अधिक दुःख प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकने का है।

दुःख को ही काल का परिणाम समझ कर बन्धु-बान्धवों का जा कर
दर्शन करो।' इस पर सुग्रीव का मुख तीव्र रोष से उत्तेजित हो कर ४८
काँपने लगा और राम के वचनों का उत्तर दिये बिना ही, आँसू बहाते
हुए उन्होंने वानर सैनिकों से कहा।—'वानर वीरो, तुम जाओ और ४६
लक्ष्मण सहित राम को नवीन पल्लवों द्वारा निर्मित वीरजनोचित
शैया पर वानर-पुरी किष्किन्धा पहुँचाओ, जिससे उन्हें बाण-पीड़ा का
ज्ञान न हो। मैं भी बिजली गिरने से भी अधिक तीव्र आवेग के ५०
साथ रावण का विशालकाय धनुष छीन लूँगा और गदा-प्रहार करने
पर अपनी लम्बी भुजाओं से बीच में पकड़ कर उसे तोड़ कर रावण
को विह्वल कर दूँगा। मुझे मारने के लिए जब वह चन्द्रहास नामक ५१
तलवार मेरे कन्धे पर गिरायेगा तब उसे मैं अपने दोनों हाथों से
तोड़ दूँगा और मेरे आक्रमण करने पर मेरे पैर की चोट खा कर उसके
भग्न हुए रथ से शस्त्रास्त्र गिर रहे होंगे। मेरे द्वारा सामने की दोनों ५२
भुजाओं के तोड़े जा कर विह्वल किये जाने पर उसके शेष व्यर्थ बाहु भी
निष्फल हो जायँगे और मेरे वज्र सदृश हाथ के घूँसे के पड़ने से छाती का
मध्यभाग विदीर्ण हो जायगा। इस प्रकार सिरों को पकड़-पकड़ कर अलग- ५३
अलग करके खींच-खींच कर तोड़ दूँगा जो धड़ से अलग होकर पुनः उग
आयेंगे, ऐसे रावण के सीता-विषयक निष्फल आसक्ति वाले हृदय को
अपने नखों से उखाड़ लूँगा। इस प्रकार रावण के मारे जाने पर मेरे द्वारा ५४
किष्किन्धा को ले जाई गई सीता या तो राम को जीवित देखेंगी अथवा
उनके मरने के बाद मैं स्वयं भी मर जाऊँगा।' 'ये सर्प-बाण हैं' ५५
ऐसा कह कर विभीषण द्वारा सुग्रीव के मना किये जाने पर रघुनाथ
राम ने हृदय में गारुड़ मंत्र का चिन्तन आरम्भ किया। इसके बाद ५६

---

४८. मेरा मोह त्याग कर—भाव है। ५१—५४ तक एक वाक्य है—विशेषण-पद रावण को लेकर हैं। ५४. इस कुलक का संबंध ५१ से है। इन चारों के विशेषण-पद रावण के विशेषण हैं, इसी कारण मूल के अनुसार अर्थ होगा—उखाड़ लिया गया है हृदय जिसका ऐसा बना दूँगा।

अचानक पृथ्वीतल पर समुद्र के अन्त भाग तक उछलने से सुवेल कम्पित हो उठा और तीव्र हवा के आघातों से राक्षसों के शरीर इधर-
५७ उधर तितर-बितर हो गये। राम ने कनकमय पाँखों की प्रभृत प्रभा से घोर अन्धकार को दूर करने वाले गरुड़ को देखा, जिसके नये पंखों के कारण कोमल रोओं वाली स्थिर पीठ पर विष्णु के आसन का स्थान
५८ स्थापित है। इस गरुड़ का वक्षःस्थल, दुर्निवार इन्द्रायुध वज्र के आघात से एक पंख के टूट जाने के कारण स्पष्ट हो गया है और जिसके गले
५९ में पाताल लोक से पकड़ कर लाया हुआ सर्प तिरछा पड़ा हुआ है। इसके बाद पृथ्वीतल पर उतरे हुए और प्रणाम करते हुए राम के सम्मुख खड़े गरुड़ को देखने पर दोनों के शरीर को छोड़ कर बाण-
६० समूह कहाँ चले गये इसका कुछ भी पता नहीं चलता। फिर विनता-तनय के आलिंगन से सर्प-बाणों के घावों से रहित हुए राम, उसके द्वारा गारुड़ मंत्रों का उपदेश पा कर, गरुड़ के चले जाने के बाद अत्यन्त
६१ भयंकर हो उठे। अनन्तर गरुड़ से आशंकित होकर रावण ने राम लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त हुआ जान सारा युद्ध-भार अपने धूम्राक्ष नामक
६२ सैनिक पर डाल दिया। विशाल रथ के समान ही उसका क्रोध है, जैसी उसकी राक्षस सेना है वैसा उसका उत्साह है, मांसल तथा विशाल भुजा के समान ही उल्लास है तथा पराक्रम के समान ही उसका वैर-भाव
६३ है, इस प्रकार धूम्राक्ष ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया।

धूम्राक्ष तथा अन्य सेनापतियों का निधन

तब धूम्राक्ष के साथ वह राक्षस-समूह पवनपुत्र के संचरण मार्ग में बड़वामुख की अग्नि के सम्मुख सागर
६४ के अन्तर्भाग के समान, उपस्थित हुआ। इसके बाद वानर-राक्षस सेनाओं के भयानक अन्तवाले युद्ध के आरम्भ होने पर धूम्राक्ष अक्षयकुमार के निधन का
६५ स्मरण कर, हनूमान को बाणों से आच्छादित-सा कर रहा है। तब

---

५८. विष्णु के आसन का घट्ठा पीठ पर पड़ा हुआ है। ५८ तथा ५९ में गरुड़ का वर्णन है। ६०. गरुड़ सर्पों का भक्षण करता है।

जिन्होंने धूम्राक्ष के रथ को उछल कर भग्न कर दिया है तथा जो उसके छीने हुए धनुष पर खड़े हैं ऐसे हनूमान अपने रोओं में उलझे हुए निष्फल बाणों को झाड़ते हुए हँस रहे हैं। धूम्राक्ष द्वारा प्रहार किया ६६ गया परिघास्त्र हनूमान के बाहु पर दो खण्ड हो गया, उनके वक्षःस्थल से उछल कर चूर-चूर हुआ मुसल भी देखने में नहीं आता तथा हनूमान के अङ्गों पर उसके द्वारा फेंके गये अन्य अस्त्र-शस्त्रादि भी टुकड़े टुकड़े हो गये। तब हनूमान ने अपने लम्बे बायें हाथ की हथेली उसके गले में ६७ डाल कर उसे झुका दिया, इस कारण श्वासोच्छ्वास के रुँध जाने से उसके वक्षःप्रदेश में सिंहनाद गूँज कर रह गया। पहले सक्रिय फिर विह्वल ६८ और गिर रहे आयुधों वाले जिसके दोनों बाहु लटक रहे हैं ऐसे धूम्राक्ष को हनूमान ने ऊपर उठा कर प्राणहीन कर दिया। तब धूम्राक्ष के ६९ धराशायी होने तथा मरने पर और शेष राक्षस सेना के भाग जाने पर, हनूमान ने रावण की आज्ञा पाकर लंका के भीतर से निकलते हुए अकम्पन को देखा। अकम्पन द्वारा स्थिर रूप से गिराया गया आयुध-समूह जिसके ७० सामने किये गये वक्ष पर छिन्न-भिन्न हो गया ऐसे हनूमान ने जिसके शरीर के अवयव एक-एक करके खण्डित हो-होकर बिखर गये हैं ऐसे अकम्पन को भी गिरा दिया। हनूमान द्वारा किये गये आघात के समय ७१ ही, रावण की आज्ञा पाकर लंका से निकला प्रहस्त नामक राक्षस योद्धा, दैवयोग से युद्ध का सुख न प्राप्त होने से खिन्न-मन नील के सामने आया। बाद ७२ में अर्थात् सामना होने पर प्रहस्त की ओर नील के आगे बढ़ने पर, घाव से उछले रुधिर द्वारा सूचित प्रहस्त द्वारा छोड़ा हुआ लोहे का बाण नील की छाती पर गिरा। नील ने भी प्रहस्त पर, जिसकी डालें वेगवश पीछे ७३ की ओर मुड़ गई हैं, जिससे ऐरावत की रगड़ से गन्ध निकल रही है,

---

६८—तथा ६९ युग्मक हैं। दोनों में एक ही भाव है। हनूमान ने धूम्राक्ष को उठा कर पटक दिया है जिससे उसके प्राण निकल गये हैं।
७२. राक्षस सेना नष्टप्राय थी इस कारण वानर वीरों के लिए युद्धार्थ कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था।

जिसके प्रस्थान के मार्ग में भौंरे पीछा कर रहे हैं और वायु की उलटी धारा के कारण जिसके अंशुक उड़ रहे हैं ऐसे कल्पवृक्ष को छोड़ा। उस समय इस कल्पवृक्ष के गमन-मार्ग में, आकाश में विचरण करने वाले मेघ के जल-कण के गुच्छों के समान, कम्पित शाखाओं से गिरे

७५ हुए मोतियों का समूह स्थित हुआ। विशृङ्खल होती डालियों से निकले अमित वस्त्रों से जिसके घाव का रक्त सोख लिया गया है ऐसे प्रहस्त के वक्षःस्थल पर, अपने द्वारा किये गये घावों में मोतियों के समूह को भरने

७६ वाला कल्पद्रुम छिन्न-भिन्न हो गया। प्रहस्त द्वारा छोड़े बाणों को नील फौरन निष्फल कर देते हैं, उसी क्षण आकाश को वृक्षों से भर देते हैं और फिर तत्क्षण ही उनके द्वारा फेंका गया शिलाओं का समूह चारों

७७ ओर व्याप्त-सा हो जाता है। इस समय आकाश के प्रदेशों में बाणों से कट कर वृक्ष-खण्ड गिरते दिखाई दे रहे हैं, उनके आघात से विदीर्ण हो कर शिला-समूह गिर रहे हैं और खण्ड-खण्ड होते पर्वतों के निर्झर छिन्न-

७८ भिन्न होते दिखाई दे रहे हैं। पर्वत की गैरिक धूल से धूसरित जिसके कन्धों पर केसर-समूह बिखरे हैं ऐसा आकाशमार्ग में स्थित वानर-वीर

७९ नील सन्ध्या के आतप से युक्त मेघ के समान प्रतीत हो रहा है। इसके बाद आकाश के एक भाग से नीचे आकर प्रहस्त के धनुष को छीन कर फिर ऊपर अपने स्थान पर स्थित हुआ नील उसके द्वारा पहले ही छोड़े

८० गये बाणों द्वारा धारण किया गया-सा जान पड़ता है। नील के मस्तक से टकराकर वापस आया मुसल, सामने आने पर अविलम्ब निष्फल किया

८१ गया बीच में ही पकड़ लिया गया। तब अग्निपुत्र नील ने, प्रहस्त के विकट वक्षःस्थल के समान ही विस्तृत और कठोर, सुवेल पर्वत के शिखर के एक भाग पर स्थित, मेघखण्ड की-सी आभावाली काली चट्टान को

---

७६. कल्पद्रुम की पौराणिक कल्पना का निर्वाह किया गय है। ८०. प्रहस्त जब बाण छोड़ चुका है, तब नील उसका धनुष लेकर पुनः अपने स्थान पर आ जाता है, इस प्रकार उसकी शीघ्रता का वर्णन है। ८१. प्रहस्त ने उछल कर उसे बीच में पकड़ लिया।

उठाया। नील के सुदूर आकाश में उछलने पर, शिलाखण्ड के विस्तार ८२
से सूर्य के ढक जाने के कारण आकाशदल में तो दिन, पर पृथ्वीतल
पर क्षण-भर के लिए अन्धकार से युक्त रात्रि आभासित हो रही है। ८३
अनन्तर राक्षस वीर प्रहस्त ने रण-अनुराग-वश नील के गाढ़े प्रहार को सहन
किया; नील द्वारा डाली हुई शिला से अन्दर-ही-अन्दर चूर हो कर वह
प्राण-रूप रुधिर-पात के साथ ही धराशायी हो गया। ८४

---

८४. रुधिर का निकलना प्राण निकलने के समान ही था।

पंचदश आश्वास

रावण रण-भूमि प्रवेश

प्रहस्त के मारे जाने के अनन्तर, बन्धुजनों के वध के क्रोध के कारण जिसके नेत्रों से अश्रुप्रवाह निकल रहा है तथा क्रोधाग्नि से उद्गत हुंकार से दसों दिशाओं को जिसने गुँजा दिया है, ऐसा रावण

१ युद्ध-भूमि को चला। उस क्रुद्ध रावण ने, कराल मुख रूपी कन्दराओं की प्रतिध्वनि से दस दिशाओं को भरते हुए ऐसा अट्टहास किया, जिससे उसका सेवक-वर्ग भी भय से मूक होकर भवनों के खम्भों में

२ छिप गया। इसके पश्चात् रावण सारथि द्वारा रोके जाते तथा राक्षसों से घिरे रथ पर आरूढ़ हुआ, जिसकी पीछे की भित्ति उसके चरणों के

३ भार से अवनत हो गई है तथा जिसके घोड़े और पताका चंचल हैं। वानर सैनिकों ने रावण की क्रोधजनित हुंकार से समझा कि 'वह सभा में है', नागरिकों के कोलाहल से समझा कि वह नगर के मध्य में आया है और बाद में पूरी सेना के कलकल नाद से समझा कि उसने रण-

४ स्थल के लिए प्रस्थान किया है। तब जिसके मुख-समूह के ऊपर धवल आतपत्र की छाया कठिनाई से पर्याप्त हो सकी है ऐसे रावण ने नगर से बाहर निकल कर वानर सैन्य की, रण-सम्बन्धी स्पर्द्धा को भग्न कर

५ पराङ्मुख कर दिया। फिर भागते हुए वानर सैनिक के पीछे लगे अन्य वानर सैनिक, जिनके पीछे के आयाल कन्धों के अगले हिस्से से

६ रगड़ रहे हैं, केवल मुख मात्र से मुड़ कर रावण की ओर देखते हैं। पहले तो वानर सैनिक रण के भय से भागे, पुनः अपयश के कारण डटे, रावण के द्वारा आक्रान्त होने पर उनके पैर उखड़ गये और युद्ध

---

५. रावण के दस सिरों पर छतरी कठिनाई से पर्याप्त हो सकी है।
६. वे चरणों से वापस नहीं लौट रहे हैं, केवल यह मुड़ कर देखते हैं कि कहीं हम पर ही रावण बाण-वर्षा न करे।

सम्बन्धी अपनी प्रतिज्ञा भूल-से गये, इस प्रकार युद्ध से भयभीत वानर सैनिकों से अग्निपुत्र नील कह रहे हैं।—'वानर वीरो, आप युद्ध की धुरी (मर्यादा) का त्याग न करें। जिस प्राण के लिए तुम भाग रहे हो उसी को वानरराज सुग्रीव मलय-शिखर के एक भाग को हाथ में लिये हरने जा रहे हैं।' तब सीता की ओर ध्यान लगाये हुए रावण ने सारथी द्वारा निर्दिष्ट राम को इसलिए नहीं कि वे 'राम' हैं वरन् इसलिए कि वे सीता के प्रिय हैं, बहुत देर तक देखा। फिर जिसके भागे हुए रथ को वानर हँसी कर रहे हैं तथा पताका गिर पड़ी है, ऐसा रावण राम के बाणों से आहत हो कर लंका की ओर चला गया। इसके बाद जिसका विनाश उपस्थित है ऐसे रावण ने सुखपूर्वक सोये हुए कुम्भकर्ण को असम यही जगा दिया, इस जागरण में रावण का यश क्षीण हो गया है तथा अहंकार नष्ट हो चुका है। ७ ८ ९ १० ११

कुम्भकर्ण की रण-यात्रा

असमय जागरण से कुम्भकर्ण के सिर का एक भाग भारी हो गया है, वह जम्हाई लेता हुआ 'रामवध' के सन्देश को हल्का मान, हँस कर लंका से निकला। १२ सूर्य-रथ का अवरोध करने वाला लंका का सोने का प्राकार, इस कुम्भकर्ण के देह के उरु-प्रदेश तक भी न पहुँच कर, उसके कुछ खिसके हुए सोने के करधन की भाँति प्रतीत हो रहा है। फिर इस नगरकोट से बाहर होने पर लंका दुर्ग की खाई में मगर तथा घड़ियाल आदि इधर-उधर होने लगे और उसमें प्रविष्ट सागर का जल कुम्भकर्ण के केवल घुटने तक ही आ सका। उसको देखते ही, युद्धकार्य से निवृत्त हुए तथा हाथ से फिसलते पर्वतों से बुरी तरह आक्रान्त वानर-समूह उल्टो १३ १४

---

८. अगर तुम भागोगे तो सुग्रीव तुमको मार डालेंगे। ९. राम के अन्य गुणों के कारण। ११. मूल में—इस प्रकार का प्रतिबोध किया है। रावण ने विवश होकर कुम्भकर्ण को जगाया है। १२. सिर में हल्की पीड़ा थी। राम का वध करना है, इस सन्देश से यहाँ मतलब है।

१५ पीठ करके भाग चला। इसके बाद कुम्भकर्ण ने पर्वतों, वृक्षों, परिघों, मुद्गरों, कठोर दण्डों, बाणों तथा मुसल आदि के द्वारा सारी वानर
१६ सेना को भली भाँति नष्ट किया। तदनन्तर राम के शराघात से क्रुद्ध हुए तथा रुधिरास्वादन में मत्त हुए कुम्भकर्ण ने अपनी तथा पराई सेना
१७ के हाथी, घोड़े, राक्षसों तथा वानरों को खाना आरम्भ किया। कुम्भकर्ण के बहुत समय तक युद्ध करने के बाद, राम के चाप से निकले बाणों से घायल उसके दोनो ही पहले तथा बाद के घावों से निकले हुए रक्त के
१८ झरने पृथ्वी पर गिरे। उसकी एक बाहु समुद्र में गिरनेवाली नदियों के मार्ग का अवरोध करते हुए सुमेरु पर्वत के समान सागर-तट पर स्थित हुई और दूसरी बाहु सागर पर स्थिर हुए दूसरे सेतुबन्ध के समान
१९ स्थित हुई। उसी समय राम ने कान तक खींचे हुए तथा रणभूमि में चक्र के आकार की अग्नि-ज्वाला को प्रसारित करते हुए बाण से चक्र द्वारा काटे गये राहु के सिर के सदृश कुम्भकर्ण के सिर को काट
२० कर गिरा दिया। सुदूर आकाश तक व्याप्त, गुंजारित पवन से मुख-रूपी कन्दरा के कारण मुखरित, छिन्न हो कर गिरे कुम्भकर्ण के सिर से त्रिकूट
२१ पर्वत ऐसा जान पड़ा मानो चौथी चोटी निकल आई हो।

मेघनाद का प्रवेश

कुम्भकर्ण के गिरने पर सागर की गोद भर गई है, जलसिंह आहत-से होकर दूर भाग रहे हैं और इस प्रकार वह बड़वानल के मुख को प्लावित कर रहा
२२ है। इसके बाद अपने प्रिय प्रहस्त से भी अधिक (दुःखप्रद) कुम्भकर्ण के निधन को सुन कर रावण रोष रूपी आतप से
२३ लाल हुए अपने मुख-समूह को हँस कर धुन रहा है। उस समय रण के

१५. डर के मारे वानरों के हाथ के पाषाण-खण्ड छूट पड़े, और वे स्वयं उन्हीं के नीचे दबने लगे। १६. व्याकुलता तथा उत्तेजना के कारण वह अपने-पराये का भेद भूल गया। १८. विशालकाय होने के कारण। २१. त्रिकूट पर लंका बसी है। २२. अन्तर्वर्तिनी बड़वानल को सागर-का पानी अस्थिर होने के कारण पूरित कर रहा है।

लिए प्रस्थान करते हुए रावण के क्रोध से विस्तृत वक्षस्थल के लिए राजभवन के खम्भों के मध्यवर्ती पहले विस्तार पर्याप्त नहीं हुए। रावण २४ के कुछ हो दूर जाने पर, अपनी मुक्त छाती से राजभवन के विस्तार को भरते हुए तथा घुटनों के बल बैठ कर उसके पुत्र मेघनाद ने कहा। २५ 'यदि साहस-साक्षेप होने के कारण महत्वपूर्ण कार्य को पिता स्वयं पूरा करले तो वह अपने पुत्र के स्पर्श का सुख कुपुत्र के समान नहीं पाता! २६ हे पिता! मेरे जीते जी, मनुष्य मात्र दशरथ-पुत्र राम के लिए इस प्रकार मेरे राक्षस-वंश के यश को नष्ट करते हुए आप क्यों प्रस्थान कर रहे हैं! अथवा शेष की मणि को उखाड़ने वाले, नन्दनवन को छिन्न- २७ भिन्न करने वाले तथा कैलाश को धारण करने वाले स्वयं आपको ही आप भूल गये हैं। क्या आज मैं रण-भूमि में एक बाण से सागर को २८ शोषित करने वाले राम को मार गिराऊँ अथवा चंचल बड़वामुखों वाले सातों ही समुद्रों को व्याकुल कर दूँ?' इस प्रकार रावण से निवेदन करने २९ के बाद, राम के धनुष की टंकार को सुन कर मेघनाद बगल में बैठे हुए सारथी के हाथ में अपना शिरस्त्राण रखते हुए शीघ्रता के साथ रथ पर आरूढ़ हुआ। जैसे-तैसे बाँधे गये कवच के कारण उसके मन्थर चरणों के ३० पराक्रम से रथ की पिछली भित्ति झुक गई और उसकी पताका के ऊपर स्थित मेघों से निकलते हुए वज्रों से सूर्य-किरणें प्रतिफलित हो रही हैं। ३१ इसके बाद रावण को रोक कर तथा उसी की आज्ञा से युद्ध के भार को वहन करते हुए रावण-पुत्र मेघनाद ने रथ पर आरुढ़ हो कर राक्षस सेना से घिरे हुए युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान किया। राजभवन के ३२ द्वार पर तथा नगरी के मुख-द्वार पर दौड़ते हुए रावण के रथ का जो वेग था, वानर सैन्य को व्याकुल करने में तथा उसमें हड़बड़ाहट उत्पन्न

---

२४. जिन खम्भों के बीच से वह आता-जाता रहा था। २५. जानु के बल गिर कर पुनः उठकर। २६. अर्थात् उस कुपुत्र से पिता को तोष नहीं मिलता। २७. साधारण मनुष्य मात्र के लिए आपका युद्ध पर जाना हमरे वंश के लिए लज्जाजनक है। ३१. पताका अत्यधिक ऊचो है।

३३ करने में मेघनाद के रथ का वेग भी वैसा का वैसा ही है। दौड़ पड़े वानर योद्धाओं द्वारा उसका सैन्य पहले ही ध्वस्त कर दिया गया, फिर वानर वीरों के साथ अग्निपुत्र नील द्वारा राम पर लक्ष्य बाँधे हुए मेघनाद
३४ (युद्ध के लिए प्रचारित किया) प्रतिषिद्ध किया गया। उस वीर ने नील द्वारा छोड़ी गई विशाल चट्टान, द्विविद द्वार मुक्त वृक्ष, हनूमान द्वारा छोड़े गये शिलातल और नल द्वारा डाले गये मलय-शिखर को एक साथ
३५ अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर डाला।

मेघनाद-वध तथा रावण का रण-प्रवेश

अनन्तर 'वानर सेना को तितर-बितर कर निकुम्भ नामक स्थान की ओर जाने का निश्चय किये मेघनाद को आप रोकें' ऐसा सुमित्रा-तनय लक्ष्मण से विभीषण
३६ ने कहा। तब राक्षस के अनुरूप विविध मायाजनित बाणों तथा शल्यों के द्वारा युद्ध करने वाले मेघनाद के
३७ सिर को लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से गिरा दिया। उस क्षण मेघनाद के वध को सुन कर रोषवश रावण अश्रु-बिन्दुओं को इस प्रकार गिरा रहा है, जिस प्रकार उत्तेजित दीपकों से ज्वालयुक्त अर्थात् संतप्त घृत-विन्दु गिरते
३८ हैं। मेघनाद के मरते ही, मानो उसी क्षण दैव ने रावण की ओर से विमुख हो कर अपने दोनों चपेटों रूपी रोष-विषाद से उसे आहत-सा कर
३९ दिया। फिर जिसके समस्त बान्धव मारे जा चुके हैं तथा अनेक बाहुओं के कारण देखने में कठोर लगने वाला रावण भयानक मुख-समूह वाले
४० राक्षस लोक के समान रणभूमि के लिए निकला। इसके बाद रावण जिस रथ पर आरूढ़ हुआ उसकी कृष्णवर्ण की पताका ने पवन द्वारा परिचालित हो कर सूर्य को छिपा कर किंचित् अंधकार कर दिया है और जिसके

---

३४. मेघनाद को घेर लिया गया—वरिओ। ३६. निकुम्भ में जा कर मेघनाद व्रत-यज्ञादि द्वारा सिद्धि प्राप्त करना चाहता था, और विभीषण ने यह लक्ष्मण को बता दिया। ३७. काट कर धड़ से अलग कर दिया। ३८. दीपक जब भभक उठता है, उस समय उसकी बत्ती से घी के जलते हुए बूँद चूते हैं। ४०. अकेला भी समूह जान पड़ता है।

घोड़ों के कन्धे के अयाल आक्रान्त हुए मतवाले ऐरावत के मद से गीले हो गये हैं। इस रथ का ध्वजपट जिसका मध्यभाग पहियों की मैल से ४१ मैला हो गया है, चन्द्रबिम्ब के पिछले भाग को पोंछ रहा है तथा यह कुबेर की तोड़ी गई गदा से उत्पन्न अग्नि-शिखा से झुलस गया है। ४२ युद्ध के लिए प्रस्थान करते हुए रावण को देख कर मंगल कामना करने वाली राक्षस नारियों ने अपनी आँखों से निकले अश्रुसमूह को आँखों में ही पी लिया। तब उस रावण ने, अपने हाथ में लिये हुए पर्वतों के ४३ झरने के जल से शीतल वक्षस्थल वाले वानर सैन्य को दृष्टि तथा बाणों से अन्दाज़ लगा कर तुच्छ ही समझा। वानर सेना से घिरे हुए ४४ रावण का, बगल में आ पड़े भी विभीषण के ऊपर क्रोध से संधाना हुआ बाण' भाई है, सहोदर है' इस भाव के कारण अस्थिर हो रहा है। ४५ लक्ष्मण ने उसके प्रथम प्रहार को सह लिया और क्रुद्ध हो कर कराल बाण संधान लिया, पर इन्द्र के वज्र से आहत वृक्ष की भाँति उनके वक्षस्थल पर 'शक्ति' का प्रहार किया गया। तब पवन-पुत्र द्वारा लाई गई ४६ पर्वत की औषधि से चेतना लाभ कर पहले से अधिक उत्साह के साथ उन्होंने धनुष पर बाण संधान कर राक्षसों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। ४७

अनन्तर राम ने स्वर्ग से पृथ्वी की ओर आते हुए इन्द्र की सहायता गरुड़ सदृश रथ को देखा—जिसके घोड़ों की टापों के आघात से मेघों के पृष्ठभाग छिन्न-भिन्न हो गये हैं, तथा जिसमें बैठे हुए इन्द्र द्वारा धारण किये गये स्वर्णिम ध्वजस्तम्भ से

---

४१. रावण ने इन्द्र पर इसी रथ पर बैठ कर आक्रमण किया था, इस कारण उसके घोड़ों के बालों में ऐरावत का मद लगा हुआ है। ४३. इस अवसर पर रोना अशुभ है। ४४. रावण ने देख कर अपने बाणों की शक्ति से उनकी तुलना की, और इस प्रकार वानर सेना तुच्छता को प्राप्त हुई। ४६. शत्रु के पक्ष में जाने से भी अवध्य है। रावण क्रोध के कारण बाण संधान लेता है, पर लक्ष्य बना नहीं पाता।

४८ सौरभ्म फैल रहा है। बायें हाथ से लगाम पकड़े हुए मातलि द्वारा इस रथ का धुरा-दण्ड झुका दिया गया है और दो भागों में बाँटे गये बादलों के जल-कणों से गीले हो कर उसके चामर के बाल झुक कर स्थिर हो
४६ गये हैं। इसके ध्वजपट का बिल्कुल अगला भाग चन्द्रमा से रगड़ कर गीला, पुनः सूर्य की किरणों से सूख गया है तथा इसका पिछला भाग
५० ऊँचा उठ गया है—इस प्रकार के रथ को राम ने उतरते देखा। तब पिछले कुशल प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करते हुए तथा प्रसन्न मुख राम को, देवताओं की अपेक्षा अधिक आदर के साथ मातलि ने दूर से
५१ ही झुक कर प्रणाम किया। फिर रथ पर सिकुड़ कर रखा किन्तु दोनों हाथों पर उठाये जाने से फैल कर विस्तृत हुआ और जिसके अन्दर से सुगन्ध निकल रही है ऐसे कवच को मातलि त्रिभुवनपति राम को
५२ देता है। इन्द्र के समस्त शरीर में अनेक नेत्र होने के कारण स्पर्श में सुखद भी वह कवच सीता के विरह में दुर्बल हुए राम के वक्षस्थल पर
५३ कुछ ढीला-सा हो गया है। रथ पर चढ़े हुए इन्द्र के हाथों के स्पर्श से सैकड़ों बार दुलराये गये उस कवच को, भूमि पर उतर कर मातलि ने
५४ राम के सम्पूर्ण अंगों पर पहनाया।

लक्ष्मण का निवेदन

उसी समय नील तथा सुग्रीव के साथ लक्ष्मण ने धनुष धारण किये हुए अपने हाथ को ज़मीन पर टेक
५५ कर राम से कहा। 'अपनी कोटियों से उतरा हुआ तथा ढीली हुई प्रत्यंचा वाला आपका धनुष विश्राम करे; मेरे, नील या सुग्रीव के रहते आप शीघ्र ही रावण को खण्डित अंगों
५६ वाला देखें। आप किसी महान् शत्रु पर कोप करें, तुच्छ रावण पर क्रोध (जन्य उत्साह) न करें, जंगल का हाथी पहाड़ी ऊँचे तटों को ढहाता है,

---

४८-५० तक रथ का वर्णन है—एक वाक्य के रूप में। ५३. इन्द्र का कवच उसके नेत्रों के कारण कोमल बनाया गया है। ५४. इन्द्र ने अपना कवच अनेक बार झाड़ा-पोंछा होगा अथवा शरीर पर धारण किये हुए उस पर अनेक बार स्नेह से हाथ फेरा होगा।

नदी के तटों अथवा समभूमि को नहीं। हे रघुपति, समस्त त्रैलोक्य को ५७
अपने अर्द्धदृष्टिनिक्षेप-मात्र से भस्मसात् करने में समर्थ त्रिनेत्र शंकर
की आज्ञा का पालन देवताओं ने किया था, क्या आप (इस कथा को)
नहीं जानते।' इस पर रावण को देखने से उत्पन्न क्रोध के कारण ५८
झलकते हुए स्वेद बिन्दुओं से पूरित ललाट वाले राम ने नील
तथा सुग्रीव की ओर देखते हुए झुके हुए लक्ष्मण से कहा।—'कहे ५६
का निर्वाह करने वाले आप लोगों के पराक्रम से मेरा हृदय भली-भाँति
परिचित है, किन्तु रावण का वध बिना स्वयं किये क्या मेरा यह बाहु
भारस्वरूप नहीं हो जायगा। आप लोग युद्ध में कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा ६०
मेघनाद के वध द्वारा सन्तुष्ट हैं, अब सिंह के सामने आये बनैले हाथी
के समान इस रावण को आप मुझसे न छीनें।' ६१

युद्ध का अन्तिम आरम्भ

उसी समय उन सब के वार्तालाप को समाप्त करते हुए रावण के बाण-समूह ने कपि सेना के स्कन्धावार को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। बाणों की पहुँच के ६२
बाहर रुके देवों से देखा जाता हुआ तथा एक के
मरण के निश्चय के कारण भयंकर, राम और रावण का समान प्रति-
द्वन्द्विता वाला युद्ध आरम्भ हुआ। तब जिसके पुत्र तथा भाई आदि ६३
मारे जा चुके हैं ऐसे रावण ने, कुण्डल की मणिकिरणों से बनी प्रत्यंचा
वाले धनुष को तान कर राम के वक्षःस्थल पर पहले ही प्रहार किया। ६४
प्रबल वेग से गिरे उस बाण से धीर राम भी इस प्रकार काँप गये कि उससे
उन्होंने अपने ही समान त्रिभुवन को कम्पित कर दिया। राम का बाण ६५
भी, तालवन की शाखाओं (तनों) पर किये गये अभ्यास के कारण, क्रम से

---

५८. त्रिपुरवध के अवसर पर। ६०. रावण को मार कर प्रतिशोध बिना लिये सन्तोष नहीं मिल सकेगा। ६१. अर्थात् रावण का वध करना मेरे भाग में रहने दें। ६२. वार्तालाप में बाधा उपस्थित करते हुए। ६४. जब रावण ने धनुष ताना तो उसके कुण्डल की मणिकिरणों से मानो उसकी प्रत्यंचा नब गई हो। ६५. त्रिभुवन और राम अभिन्न हैं।

गुँथे हुए छिन्न-भिन्न केयूरों वाले रावण के भुज-समूह को छेद कर पार
६६ हो गया। राक्षस राज रावण के धनुष पर एक साथ ही बाण का संधान
हुआ, वेगपूर्वक खींचे जाने से पिछला भाग ऊँचा उठा, तथा साथ ही
६७ बाण छोड़ देने पर मध्यभाग झुक गया। और उधर राम का धनुष सदा
संधानित, बाणों को मुक्त करते हुए अपांग प्रदेश से लगी प्रत्यंचा वाला,
आरोपित बाणों वाला तथा झुके हुए मध्यभाग वाला दिखाई दे रहा
६८ है। राम और रावण का बायाँ हाथ सदा फैला हुआ तथा दाहिना हाथ
सदा कनपटी से लगा हुआ दिखाई देता है और उन दोनों के चापों पर
६९ संधानित बाण उन दोनों के मध्य में ही दिखाई देते हैं। रावण के
चलाये गये बाण से तीक्ष्णता के साथ बिंधा हुआ, सीता के वियोग से
७० निरन्तर पीड़ित फिर भी धैर्यशाली हृदय राम के द्वारा जाना नहीं गया।
राम द्वारा चलाये गये बाण से सामने आये रावण का मस्तक विदीर्ण
७१ हो गया, किन्तु क्रोधवश भौंहें नहीं सिकुड़ीं।

युद्ध का अन्तिम प्रकोप

अनन्तर मूर्च्छा से विह्वल तथा रुधिर-प्रवाह से भरे नेत्र-समूह वाला रावण का सिर-समूह उसके कन्धों
७२ पर बार-बार गिर कर उठ-उठ कर नाचने लगा।

मूर्च्छा दूर हो जाने पर उन्मीलित नेत्रों से रावण नयन
की क्रोधाग्नि से उसके पंखों को झुलसाता हुआ रोषपूर्वक खींचे हुए
प्रत्यंचा पर आरोपित बाण को छोड़ रहा है, जिसका पंख दूसरे मुख की

---

६६. किष्किन्धा में राम ने सप्त-ताल एक बाण में बेधे थे। ६७. रावण का हस्तलाघव ६८. राम भी उसी तत्परता से उत्तर दे रहे हैं। ६९. दोनों ओर से तेज़ बाण बर्षा हो रही है। ७० वस्तुतः हृदय की पीड़ा का अनुभव नहीं किया गया—ऐसा अर्थ है—हृदय धैर्यशाली है तथा वियोग के कष्ट से जड़ है, ऐसा भाव लिया जा सकता है। ७१. भौंहे तनी की तनी रहीं। ७१ राम के बाणों से कट-कट कर पुनः उग आते हैं।

कनपटी से सटा हुआ है। फिर रावण द्वारा चलाया गया, प्रलयाग्नि के ७३
समान अपने किरणजाल से दसों दिशाओं को भरने वाला वह बाण
अपने मार्ग (लक्ष्य) के बीच में ही राम द्वारा छोड़े गये बाण रूपी राहु
के मुख में सूर्यमण्डल के समान निमग्न-सा हो गया। राम ने धैर्य के साथ ७४
अपनी अँगुलियों में बाण निकाल कर समीप स्थित लवन (काटने) करने
योग्य फूले हुए कमलाकर की भाँति दशमुख रावण को देखा। राम बाण ७५
का सन्धान कर रहे हैं, राक्षसों की राजलक्ष्मी विभीषण की ओर मुड़
रही है और उसी क्षण रावण के विनाश की सूचना देने वाली सीता की
बायीं आँख फड़क रही है। रावण का बायाँ और राम का दाहिना नेत्र ७६
स्पन्दित है (फड़क रहा है) और बन्धु-वध तथा राज्यलाभ दोनों बातों
की सूचना देने वाले विभीषण के बायें तथा दाहिने दोनों ही नेत्र फड़क
रहे हैं। जिसका उत्संग वक्षस्थल से भर गया है और जिस पर बाण चढ़ाया ७७
जा चुका है ऐसे धनुष के खींचे जाने के साथ, राम के शर के पंखों ने
मानों दुःखी सुरवधुओं के अश्रु-समूह को पोंछ-सा दिया है। अनन्तर ७८
चन्द्रहास से बार-बार काटा गया रावण का मुख-समूह, राम द्वारा एक
बार के प्रयत्न से एक बाण द्वारा काट दिया गया। भूमि पर गिरे हुए ७९
रावण का कटा हुआ भी मुख-समूह अपने कटे स्थानों से पुनः प्रकट होता
हुआ गले से अलग न होने के कारण अधिक भयंकर जान पड़ रहा है। ८०
रणभूमि में मारे गये राक्षसराज की आत्मा दसों मुखों से अपनी लौ से

---

७३. रोष के साथ रावण तुणीर से जब बाण खींचता है, उस समय उसके पंख दूसरे मुख की कनपटी का स्पर्श करते हैं। ७५. लाइसव्व का अर्थ है कटनी योग्य : खेत के तैयार हो जाने के बाद कटनी करते हैं। ७७. आँख फड़कने के लिए फुरइ, फुन्दइ तथा पप्फुरइ तीन क्रियाएँ आई हैं। ७८. उत्साहवश राम का वक्ष चौड़ा हो गया है और उससे धनुष की बीच की गोलाई भर गई है। ७९. रावण ने अपनी चन्द्रहास तलवार से शंकर के सामने अनेक बार सिर काटे हैं।

८१ स्फुटित अग्नि के सदृश एक बार में ही बाहर निकली। इसके बाद रावण के मारे जाने पर तथा तीनों लोकों के आनन्दोच्छ्वासित होने पर राम ने अपने मुख पर चढ़ी हुई भृकुटी तथा धनुष पर चढ़ी प्रत्यंचा
८२ को उतार लिया। पर राज-लक्ष्मी राक्षसराज के पराक्रम को जानती है, इस कारण उसके मरण की बात को माया समझ कर उसका त्याग नहीं
८३ कर रही है।

विभीषण की वेदना

उस समय राम के सम्मुख ही विभीषण के नेत्रों से, हृदय के भीतर आविर्भूत बन्धु-स्नेह से उत्पन्न आँसू
८४ निकल पड़े। रावण के मारे जाने पर 'अमरत्व' शब्द की निन्दा करता हुआ विभीषण अपने मरण से भी
८५ अधिक दुःखित होकर विलाप करने लगा।—'हे रावण, यम को पराजित कर जिस यम-लोक को तुमने अपनी इच्छानुसार देखा था उसी को इस
८६ समय साधारण मनुष्य की तरह तुम कैसे देखोगे। हे राक्षसराज, पहले कभी आज्ञा का उल्लंघन न करने वाले एक मात्र कुम्भकर्ण ने, रणभूमि
८७ में तुम्हारे साथ प्राण त्याग कर अपने कर्त्तव्य से मुक्ति प्राप्त की है। हे सम्राट, सुख-दुःख में तुम्हारा साथ देने वाले बन्धु-बान्धवों द्वारा छोड़े (मरने के बाद) जाने पर भी तुम्हारा पक्ष न ग्रहण करने वाला मैं यदि धार्मिकों में प्रमुख गिना जाऊँगा तो भला अधार्मिकों में प्रमुख कौन
८८ गिना जायगा।' मरणाधिक क्लेश से अवरुद्ध अश्रु-प्रवाह वाले तथा जिसके हृदय में सघन दुःख आविर्भूत हुआ है ऐसे विभीषण ने, ग्रीष्म में ताप
८९ के कारण सूखे हुए निर्झरों वाले महीधर के समान, राम से कहा।—

---

८२. उच्छ्वास से साँसें चलने अर्थात् पुनः जीवित हो जाने का अर्थ भी लिया जा सकता है। राम का क्रोध उतर गया और युद्ध भी समाप्त हो गया। ८४. रावण अपने को अमर समझने लगा था। ८७. यहाँ भ्रातृत्व के दायित्व की व्यंजना है, क्योंकि विभीषण को अपने पर अनुताप हो रहा है। ८९. अत्यधिक क्लेश के कारण विभीषण का अश्रु-प्रवाह भी बन्द हो गया है।

'प्रभो, मुझे जाने की आज्ञा दें, जिससे मैं पहले रावण, तथा कुम्भकर्ण के चरणों को छू कर फिर परलोकगत पुत्र मेघनाद का सिर स्पर्श करूँ।' ६०

भूमि पर गिरे-पड़े और छटपटाते विभीषण के विलाप पर दया कर राम ने राक्षसराज के अन्तिम संस्कार के लिए हनूमान को आज्ञा दी। ६१

राम-सीता मिलन तथा अयोध्या आगमन

रावण के मारे जाने पर, सीता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील सुग्रीव ने भी दुस्तर सागर को पार करने के समान प्रत्युपकार का अन्त देखा। ६२ देवताओं का कार्य सम्पन्न कर कपिजनों के सामने राम द्वारा विदा किये गये मातलि ने बादलों में ध्वजा को उलझाते हुए रथ को स्वर्ग की ओर हाँका। ६३ इधर अग्नि में विशुद्ध हुई सोने की शलाका-सी जनकपुत्री सीता को लेकर राम भरत के अनुराग को सफल करने के लिए अयोध्या पुरी पहुँचे। जिसमें सीता-प्राप्ति के द्वारा राम का अभ्युदय प्रकट किया गया है तथा जिसका केन्द्र बिन्दु प्रेम है ऐसा सभी लोगों का ६४ प्रिय यह 'रावण-वध' नामक काव्य अब समाप्त किया जाता है।

---

६२. प्रत्युपकार करके उसे चुका दिया। ६५. राम ने सीता के प्रेम की प्रेरणा से यह समस्त युद्ध किया है।